भूमिका

संत श्री पलटू साहेब का जन्मस्थान अवध क्षेत्र में नगजलालपुर कहा जाता है जो फैजाबाद जिला में पड़ता है। गाजीपुर जिला के भुड़कुड़ा गांव में बुल्ला साहेब नाम के संत रहते थे। उनके मुख्य शिष्य गुलाल साहेब थे और गुलाल साहेब के मुख्य शिष्य भीखा साहेब थे। भीखा साहेब के मुख्य शिष्य गोविन्द साहेब थे और गोविन्द साहेब के शिष्य पलटू साहेब हुए। गोविन्द साहेब का आश्रम फैजाबाद जिले के अहरौला गांव में था। जिसे पीछे 'गोविन्द साहेब' ही कहा जाने लगा। इसका विवरण 'कबीर दर्शन' अध्याय छह में सातवां संदर्भ बावरी पंथ देखें। पलटू साहेब वैश्य परिवार में जन्मे थे। इनका जीवनकाल विक्रम संवत् अठारह-उन्नीस सौ के बीच लगता है। इनकी बानी में आता है—

संवत अठारह सौ छब्बीस गुरुसब्द जन्मपत्र है।
अरे हां पलटू हुलास को दिया सिंहासन अटल छत्र है॥

अर्थात संवत् अठारह सौ छब्बीस (1826) में पलटू साहेब ने अपने शिष्य हुलासदास को गुरुगद्दी दी।

उक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि श्री पलटू साहेब अठारहवें-उन्नीसवें विक्रमी संवत में विद्यमान थे।

श्री पलटू साहेब ने अपने वैराग्य के लिए लिखा है—

शहर जलालपुर मूँड़ मुँड़ाइनि, अवध तोरिनि करधनियां।
पलटू दास सतगुरु बलिहारी, पाइनि भक्ति अमनियां॥

(इस पुस्तक में, खण्ड 3, शब्द 80)

श्री पलटू साहेब ने घर-गृहस्थी का त्याग कर अयोध्या में हनुमानगढ़ी के उत्तर अपनी साधना और सत्संग का स्थान बनाया जो आज तक 'पलटू साहेब का अखाड़ा' नाम से प्रसिद्ध है, और वहां आज तक विरक्त संतों का क्रम चल रहा है।

श्री पलटू साहेब अखंड वैराग्यवान संत थे। उनके वैराग्य और फक्कड़ानापन की मस्ती उनकी बानी में सर्वत्र व्याप्त है। उनका मन भक्ति और आत्मलीन से सराबोर था। उनकी बानी इतनी चोखी और विदग्धात्मक है कि हाथ में लेकर पढ़ते समय छोड़ने का मन नहीं करता। अतएव शांति-इच्छुक को इसका अध्ययन अवश्य करना चाहिए।

बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद के मालिकों को कोटिशः धन्यवाद है कि वे निर्गुणी धारा के प्रमुख संतों की मूल बानी सौ वर्ष पूर्व से छापते आ रहे हैं। इस प्रेस में पलटू साहेब की मूल बानी तीन खण्डों में छपी है। वहीं से लेकर टीका करने का काम किया गया है। आश्चर्य है कि ऐसी महत्त्वपूर्ण बानी की आज तक कोई टीका-व्याख्या नहीं की गयी थी।

इस संकलन में उपर्युक्त तीनों खण्डों से चुनाव करके बानियां ली गयी हैं और अधिकतम ली गयी हैं और उन पर शब्दार्थ, भावार्थ तथा कहीं-कहीं विशेष में बानियों का अर्थ स्पष्ट करने की चेष्टा की गयी है। सारी विषय-वस्तुएं अनेक बार आयी हैं। इसलिए इस संकलन में पलटू साहेब के दिये हुए ज्ञान का पूरा अभ्यास हो जाता है।

कबीर आश्रम, कबीर नगर, इलाहाबाद —**अभिलाष दास**

15 अगस्त, 2012

सद्गुरवे नमः

पलटू साहेब की बानी

खंड–एक

कुंडलिया

1. सद्गुरु का महत्त्व

कुंडलिया–1

पूरा सतगुरु मिलै जो पूजै मन की आस॥
पूजै मन की आस पिया को देय मिलाई।
छूटा सब जंजाल बहुत सुख हमने पाई॥
देखा पिय का रूप फिरा अहिबात हमारा।
बहुत दिनन की राँड़ माँग भर सेंदुर धारा॥
सासु ननद को मारि अदल मैं दिहा चलाई।
उनकै चलै न जोर पिया को मैं हि सुहाई॥
पिय जो बस में भये पिया को जादू कीन्हा।
ऐसी लागी नेह पिया तब मोको चीन्हा॥
प्रसाद पिया को पाय के मिले गुरु पलटू दास।
पूरा सतगुरु मिलै जो पूजै मन की आस॥

शब्दार्थ—अहिबात= सुहाग। राँड़= पतिविहीन। अदल= न्याय। जादू= प्रेम कर अपना बना लेना।

भावार्थ—यदि मुमुक्षु शिष्य को पूर्ण सद्गुरु मिल जाय, तो उसकी परम शांति पाने की आशा पूरी हो जाती है। मनोवृत्ति रूपी दूल्हन आत्मा रूपी पति के बिना दुख में तड़पती है। सद्गुरु उसे उपदेश देकर आत्मा–पति से मिला देता है इसलिए मनोवृत्ति की आशा पूरी हो जाती है। आत्म–पति में लीन

होकर मनोवृत्ति कहती है कि अब सब जंजाल टूट गया और मुझे आत्मशांति का आत्यंतिक सुख मिल गया। जब मैंने अपने आत्मा रूपी पति को पहचान लिया तो मेरा सुहाग लौट आया। मैं अनादिकाल से पति-विहीन रांड़ थी, इसलिए दुखी थी। अब मैंने आत्मा-पति का बोध पाकर मानो मांग भर सेंदुर लगाया। अब मैंने संशय रूपी सासु और मोह रूपी ननद को मारकर हृदय-घर में अपना आत्मज्ञान का न्याय चलाया। अब संशय और मोह रूपी सासु-ननद का बल मेरे हृदय-घर में नहीं चलता है। अब मैं आत्मा-पति की प्यारी हो गयी। मेरा आत्मा-पति जब मेरे वश में हो गये तब मैंने उन पर ऐसा प्रेम का जादू किया कि उनका भी प्रेम मुझ शांतिवृत्ति-पत्नी में लग गया और उन्होंने मुझे पहचान लिया कि शांतिवृत्ति में ही दुखों का अंत है। श्री पलटू साहेब कहते हैं कि जब सद्गुरु मिले तब उनके उपदेश-प्रसाद से मनोवृत्ति-दुल्हन आत्मा-पति से एकमेक होकर कृतार्थ हो गयी। अतएव यह सिद्ध हुआ कि जब पूर्ण सद्गुरु मिलते हैं तब मन की आशा पूरी होती है, वह है शाश्वत शांति को उपलब्ध होना।

विशेष—चेतन आत्मा पति है, मनोवृत्ति पत्नी है। दोनों का वियोग दुख का कारण है। जब मनुष्य की मनोवृत्ति सब संशय से छूटकर केवल आत्मा-पति में लीन होती है, तब वह परम शांति पाती है। आत्मा ही परमात्मा है। जब मनोवृत्ति आत्मलीन हुई तब यही परमात्मा से मिलन हुआ। अंततः तो मनोवृत्ति शून्य हो जाने पर चेतन आत्मा केवल रह गया। पति-पत्नी का भाव परोक्ष ईश्वर और जीव हो सकता है जो कल्पित अवधारणा होने से भावनात्मक है, तथ्यात्मक नहीं।

कुंडलिया-2

सतगुरु सिकलीगर मिलैं तब छुटै पुराना दाग॥
छुटै पुराना दाग गड़ा मन मुरचा माहीं।
सतगुरु पूरे बिना दाग यह छूटै नाहीं॥
झाँवाँ लेवै जोग तेग को मलै बनाई।
जौहर देय निकार सुरत को रंद चलाई॥
सब्द मस्कला करै ज्ञान का कुरँड लगावै।
जोग जुगत से मलै दाग तब मन का जावै॥
पलटू सैफ को साफ करि बाढ़ धरै बैराग।
सतगुरु सिकलीगर मिलैं तब छुटै पुराना दाग॥

शब्दार्थ—सिकलीगर=सान पर लोह के औजार को चढ़ाकर तेज करने वाला। झाँवाँ= गलकर कठोर हो जाने वाली ईंट। तेग= तलवार। जौहर-रत्न, चमक। रंद=रंदा, लोह का वह औजार जिससे लकड़ी की सतह छीलकर चिकनी की जाती है। मस्कला= मांजना। कुरंड= एक तरह का पत्थर जिससे लोह का औजार घिस कर साफ किया जाता है। सैफ= सैफ़, तलवार। बाढ़= धार।

भावार्थ—मन को मांजकर साफ कर देने वाले सद्गुरु सिकलीगर जब मिलते हैं, तब विषय-वासना के अनादिकालीन दाग छूटते हैं। मन में अनादि अभ्यस्त विषय-वासना का मुरचा जमा है। बोध और रहनी संपन्न पूर्ण सद्गुरु के बिना यह दाग नहीं छूट सकता। योगाभ्यास का झांवा लेकर ज्ञान की तलवार को अच्छी तरह रगड़कर साफ करें। आत्मज्ञान संबलित मनोवृत्ति का रंदा चलाकर ज्ञान की तलवार की चमक उद्घाटित कर दे। निर्णय शब्दों का मस्कला देकर स्वरूपज्ञान के पत्थर से मन के मैल को रगड़कर साफ कर दे। ध्यानाभ्यास विधि से मन को निरंतर मांजे तब मन की विषयासक्ति का मल दूर होता है। पलटू साहेब कहते हैं कि आत्मज्ञान की तलवार साफ करके उस पर वैराग्य की धार करे। इस प्रकार जब सद्गुरु रूपी सिकलीगर मिलते हैं तब शिष्य के मन का पुराना दाग दूर होता है।

विशेष—जिनको अपरोक्ष स्वरूपज्ञान है और पवित्र रहनी में जो स्थित हैं, वे पूर्ण सदगुरु हैं। वे जब मिलते हैं और संसार से उपराम शिष्य जब ऐसे सद्गुरु की शरण में पूर्ण समर्पित होकर उनके उपदेश के अनुसार अभ्यास करता है, तब धीरे-धीरे वह मन के विकारों से मुक्त होकर अपने आप में पूर्ण शांति पाता है।

कुंडलिया-3

सरबंगी कोउ एक है राखै सबकी लाज॥
राखै सबकी लाज काज वो सबके आवैं।
अंधा पंगुल लूल सबन को डगर बतावैं॥
मारि पीटि संसार सभन को राह चलावैं।
उनकी मारी खाइ भेष सब रोटी पावैं॥
बड़े बहादुर मर्द भेष का परदा राखैं।
सुनि कै बचन कठोर संत जन जनि कोऊ भाखैं॥

पलटू जो कोउ संत है सब हमरे सिरताज।
सरबंगी कोउ एक है राखै सबकी लाज॥

शब्दार्थ—सरबंगी= पूर्ण निष्काम, उदार तथा समतालु।

भावार्थ—संसार में ऐसे बिरले पूर्ण समतज्ञ और निष्काम संत होते हैं जो सबकी मर्यादा रखते हैं। वे सबका कल्याण करते हैं; अंधे, पंगुले, लूले—उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ सबको सन्मार्ग का उपदेश करते हैं। वे प्रेमियों को मार-पीटकर-स्नेहमय ताड़ना देकर कल्याण का रास्ता दिखाते हैं। उनकी ताड़ना जो सह लेता है उसका कल्याण हो जाता है। सद्गुरु के दिये हुए साधुवेष के प्रभाव से ही तो सब साधुवेषधारी गृहस्थ भक्तों के द्वारा आदरपूर्वक भोजन पाते हैं। वे संत बड़े वीर और साहसी होते हैं। वे साधु-वेष की मर्यादा में चलते हैं। ऐसे संत कठोर वचन सुनकर भी कटु नहीं बोलते, अपितु निर्मानतापूर्वक मीठे वचन ही बोलते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि सभी संत हमारे सिर के ऊपर हैं, परन्तु उनमें जो पूर्ण निष्काम और समतालु हैं वे कोई इक्के-दुक्के होते हैं जो सबकी मर्यादा रखते हैं।

कुंडलिया-4

पर स्वारथ के कारने संत लिया औतार॥
संत लिया औतार जगत को राह चलावैं।
भक्ति करैं उपदेस ज्ञान दे नाम सुनावैं॥
प्रीति बढ़ावैं जक्त में धरनी पर डोलैं।
कितनौ कहै कठोर बचन वे अमृत बोलैं॥
उनको क्या है चाह सहत हैं दुःख घनेरा।
जिव तारन के हेतु मुलुक फिरते बहुतेरा॥
पलटू सतगुरु पाय के दास भया निरवार।
पर स्वारथ के कारने संत लिया औतार॥

शब्दार्थ—निरवार= निर्णय, बंधनमुक्त।

भावार्थ—संतजन लोककल्याण करने के लिए भ्रमण करते हैं। वे संसार के लोगों को सन्मार्ग पर चलने के लिए रास्ता बताते हैं। वे भक्ति-भाव से चलने का उपदेश देते हैं, आत्मज्ञान देकर मंत्र-दीक्षा भी देते हैं जिसमें सत्य का नाम सुनाते हैं। वे सभी मनुष्यों में पारस्परिक प्रेम बढ़ाने की राय देते हैं और इन सबके लिए पृथ्वी पर भ्रमण करते हैं। उनको कोई चाहे कितना ही

कटु वचन कहे, परंतु वे निर्मानतापूर्वक मीठे वचन ही बोलते हैं जो सुनने में अमृत के समान लगते हैं। आत्मसंतुष्ट संत पुरुष को संसार से क्या चाहना है? वे लोक-कल्याण के लिए ही नाना दुख सहकर जगत के लोगों को बोध देते हैं। वे जीवों का उद्धार करने के लिए ही अनेक देशों में घूमते रहते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि सद्गुरु की शरण पाकर इस दास का बंधन कट गया। संत जगज्जीवों के कल्याण के लिए ही संसार में घूमते हैं।

कुंडलिया-5

धुन आनै जो गगन की सो मेरा गुरुदेव॥
सो मेरा गुरुदेव सेवा मैं करिहौं वाकी।
सब्द में है गलतान अवस्था ऐसी जाकी॥
निस दिन दसा अरूढ़ लगै ना भूख पियासा।
ज्ञान भूमि के बीच चलत है उलटी स्वासा॥
तुरिया सेती अतीत सोधि फिर सहज समाधी।
भजन तेल की धार साधना निर्मल साधी॥
पलटू तन मन वारिये मिलै जो ऐसा कोउ।
धुन आनै जो गगन की सो मेरा गुरुदेव॥

शब्दार्थ—धुन= ध्वनि, नाद, अनाहतनाद। गगन= गगनगुफा, सिर के भीतर। गलतान= लवलीन, रत।

भावार्थ—गगनगुफा में उठते हुए अनाहतनाद की जो साधना करता है, वह मेरा गुरुदेव है। मैं उसकी सेवा करूंगा। अनाहतनाद सुनने में जो लीन है, जिसकी उसमें तदगत अवस्था है, वह उसी में रात-दिन दृढ़ रहता है। उसे भूख-प्यास मिटाने की चिंता नहीं रहती। जो आत्मज्ञान की भूमिका में ठहरकर श्वास का अनुलोम-विलोम-रेचक-पूरक करके प्राणायाम करता है और ब्रह्मज्ञान की तुर्यगा अवस्था को भी शोधकर उसके ऊपर स्वरूपस्थिति की सहज समाधि में स्थित हो गया और इस साधना में निरंतरता ऐसी हुई कि तेल-धारावत अटूट निर्मल दशा की स्थिति हो गयी। पलटू साहेब कहते हैं कि यदि ऐसा कोई समाधिलीन संत मिल जाय, तो उसके चरणों में अपना तन-मन निछावर कर दीजिए। जो गगनगुफा की ध्वनि में लीन है वह मेरा गुरुदेव है।

विशेष—कुछ लोगों की यह कल्पना है कि पहले केवल एक शब्द ही था। उसी से फूटकर संसार की सृष्टि हुई। वह सिर के भीतर निरन्तर गूंजता है। उसे ही अनाहतनाद कहते हैं। उसे निरंतर सुनना जीवन की सफलता है। परन्तु ध्यान देने योग्य है कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध पांचों विषयों से भरा संसार नित्य प्रवहमान है। शब्द एक जड़ विषय है। मन को एकाग्र करने के लिए अनाहतनाद सुनना एक आरंभिक साधना है। इसको छोड़कर सहज समाधि में जाना चाहिए जो स्मरणों के शांत होने पर स्वरूपस्थिति मात्र है। इसको पलटू साहेब ने ऊपर तुरिया से भी अतीत एवं ऊपर कहा है।

कुंडलिया-6

नाव मिली केवट नहीं कैसे उतरै पार॥
कैसे उतरै पार पथिक बिस्वास न आवै।
लगै नहीं बैराग यार कैसे कै पावै॥
मन में धरै न ज्ञान नहीं सतसंगति रहनी।
बात करै नहिं कान प्रीति बिन जैसे कहनी॥
छूटि डगमगी नाहिं संत को बचन न मानै।
मूरख तजै बिबेक चतुरई अपनी आनै॥
पलटू सतगुरु सब्द का तनिक न करै बिचार।
नाव मिली केवट नहीं कैसे उतरै पार॥

शब्दार्थ—नाव= मनुष्य शरीर। केवट= सद्गुरु।

भावार्थ—मानव शरीर रूपी नाव भवसागर से पार जाने के लिए तो मिली है, परन्तु सद्गुरु रूपी केवट नहीं है, तो संसार-सागर से कैसे पार होओगे? संसार के पथिक मनुष्य को यह विश्वास नहीं होता कि सद्गुरु के उपदेश से ही संसार-सागर से तर सकते हैं। जब तक विषयों से वैराग्य नहीं होगा, तब तक आत्मबोध रूपी मित्र नहीं मिलेगा—आत्मतृप्ति नहीं मिलेगी। न मन में आत्मज्ञान धारण करता है, न सत्संग करता है और न दया, क्षमा, शील, संतोष आदि सद्गुणों का आचरण करता है। संतों के उपदेशों को सुनता नहीं है। श्रोता के मन में श्रद्धा न हो तो जैसे उपदेशक का ज्ञान-कथन व्यर्थ जाता है, वैसे उसकी दशा है। न संतों के वचन पर ध्यान देता है और न मन की दुविधा जाती है। मूर्ख मनुष्य विवेक छोड़कर अपनी बुद्धिमत्ता का बखान करता है। पलटू साहेब कहते हैं कि ऐसे लोग सद्गुरु के शब्दों पर

थोड़ा भी विचार नहीं करते। मानव-शरीर नाव तो मिली है, परन्तु सद्गुरु केवट न होने से संसार-सागर से कैसे पार होगा?

कुंडलिया-7

धुबिया फिर मर जायगा चादर लीजै धोय॥
चादर लीजै धोय मैल है बहुत समानी।
चल सतगुरु के घाट भरा जहँ निर्मल पानी॥
चादर भई पुरानि दिनों दिन बार न कीजै।
सतसंगत में सौंद ज्ञान का साबुन दीजै॥
छूटै कलमल दाग नाम का कलप लगावै।
चलिये चादर ओढ़ि बहुरि नहिं भवजल आवै॥
पलटू ऐसा कीजिये मन नहिं मैला होय।
धुबिया फिर मर जायगा चादर लीजै धोय॥

शब्दार्थ—धुबिया= धोबी, साधक, मनुष्य। बार= देर, विलंब। सौंद= भिगाना, सानना। कलप= कलफ़, मांड़ी।

भावार्थ—जो अपनी मन-चादर के वासना-मल को धो सकता है, वह मनुष्य पहले के समान पुनः मर जायगा; इसलिए हे साधक ! अपने मन की चादर को धो ले। मल-विषयासक्ति अनादि अभ्यस्त होने से मन-चादर में परत-पर-परत जमा है। हे साधक ! इसे धोने के लिए सद्गुरु के सत्संग-घाट पर चल, जहां ज्ञान का निर्मल जल भरा है। यह शरीर-मन की चादर पुरानी हो गयी है और दिन प्रतिदिन पुरानी हो रही है, इसलिए इसको धोने में देरी न कर। ज्ञान का साबुन लेकर सत्संग में इसे भिगाकर साबुन लगाओ और धोओ। जब इसके मोह का दाग छूट जाय तब इस पर सत जिसका नाम है, उस आत्मज्ञान की मांड़ी चढ़ाकर इसको सुंदर बना लो, और इसको ओढ़कर पूरे जीवन की दिव्य रहनी में चलो, फिर भवसागर में नहीं आना होगा। पलटू साहेब कहते हैं कि ऐसी दिव्य रहनी में जीवनपर्यन्त रहो जिससे मन मैला न हो। ध्यान रखो, यह मनुष्य-धोबी पहले की तरह पुनः मर जायेगा, इसलिए जीवन की चादर शीघ्र धो लो।

विशेष—सद्गुरु केवल उपदेश देता है, अपने मन की चादर मनुष्य को स्वयं धोना पड़ता है। इसलिए ग्रंथकार कहते हैं कि हे साधक मनुष्य ! तू जैसे अनादिकाल से शरीर छोड़ता आ रहा है, वैसे इस बार भी आज-कल में मर जायगा। अतएव शीघ्र सत्संग में अपनी मन-चादर को धो ले।

कुंडलिया–8

साहिब वही फकीर है जो कोइ पहुँचा होय॥
जो कोई पहुँचा होय नर का छत्र बिराजै।
सबर तखत पर बैठि तूर अठपहरा बाजै॥
तम्बू है असमान जमीं का फरस बिछाया।
छिमा किया छिड़काव खुसी का मुस्क लगाया॥
नाम खजाना भरा जिकिर का नेजा चलता।
साहिब चौकीदार देखि इबलीसहुँ डरता॥
पलटू दुनिया दीन में उनसे बड़ा न कोय।
साहिब वही फकीर है जो कोइ पहुँचा होय॥

शब्दार्थ—नर का छत्र=विवेक का छत्र। सबर=सब्र, संतोष। तूर=तुरही नाम का बाजा जो फूंककर बजाया जाता है। फरस=फ़र्श, बिछावन, धरती। मुस्क=मुश्क, कस्तूरी। जिकर=जिक्र, चर्चा, सत्संग। नेजा=भाला, बरछा। इबलीसहुं=इबलीस भी, शैतान भी। इबलीस इस्लाम में वह शैतान है जो मनुष्यों को ईश्वर से विमुख करता है।

भावार्थ—वही फकीर सर्वश्रेष्ठ है जो अपने आत्मधाम की शांति में पहुंच गया है। जो पहुंच गया है उसके ऊपर विवेक का छत्र विराजता है। वह सदैव संतोष के तख्त पर विराजमान रहता है और उसके सामने चौबीसों घंटे स्थिर सुख की तुरही बजती है। उसने आसमान को तंबू बनाया, जमीन को फर्श, क्षमा का छिड़काव किया और प्रसन्नता की सुगंधित कस्तूरी लगाया। सत्य जिसका नाम है उस आत्मज्ञान का वहां खजाना भरा है और वहां निरंतर सत्संग का भाला चलता है जिसमें मन के सारे विकार–शत्रु मारे जाते हैं। सद्गुरु स्वयं रखवाला चौकीदार है जिसे देखकर इबलीस शैतान भी डरता है। पलटू साहेब कहते हैं कि संसार और धर्म में उनसे बड़ा कोई नहीं है जो फकीर आत्मशांति–धाम में निरंतर निवास करता है।

कुंडलिया–9

रैयत कौन कहावै घर घर हाकिम होय॥
घर घर हाकिम होय अदल फिर कौन चलावै।
सब नायक होइ जाय बैल फिर कौन लदावै॥
गदहा चलै हर बैल कौन फिर बेसहै तुरकी।
मिलै कूप में मुक्ति गंग को देवै बुड़की॥

काँच छुए होइ कनक पारस की रहै न इच्छा।
घर घर सम्पत्ति होइ कौन फिर माँगै भिच्छा॥
पलटू तैसे संत हैं भेष बनावै कोय।
रैयत कौन कहावै घर घर हाकिम होय॥

शब्दार्थ—हाकिम= हुकूमत करने वाला, शासक। रैयत= रियाया, प्रजा। अदल= न्याय, इंसाफ। नायक= अगुआ, लोगों को लेकर चलने वाला, पथ-प्रदर्शक। तुरकी= तेज घोड़ा।

भावार्थ—यदि घर-घर शासक हों तो प्रजा कौन कहलायेगी? न्याय कौन करेगा? यदि सब अगुआ एवं पथ-प्रदर्शक हो जायं तो बैल पर सामान लाद कर व्यापार कौन करे? यदि गधे हल खींचने लगें तो बैल कौन खरीदेगा और तेज तुर्की घोड़ा कौन खरीदेगा? यदि कुएं के जल में स्नान करने से मुक्ति मिले तो गंगा नदी में नहाने कौन जायेगा? यदि कांच के स्पर्श से लोहा सोना बन जाय तो पारस के स्पर्श से लोहा को सोना बनाने की इच्छा ही नहीं रह जायगी। यदि हर घर में संपत्ति भरी हो तो भिक्षा कौन मांगेगा? पलटू साहेब कहते हैं कि इसी प्रकार संत का वेष बनाने वाले तो बहुत हैं, किन्तु सच्चे संत बिरले होते हैं। अतएव यदि घर-घर शासक हों तो प्रजा कौन कहलायेगी?

विशेष—पूज्य संत पलटू साहेब का यह विचार नहीं है कि घर-घर संपत्ति न हो तथा कुछ लोग भिक्षा मांगते रहें, और वे न गंगा में नहाने से मुक्ति मानते हैं। पारस पत्थर भी काल्पनिक ही है। उसकी कहावत केवल बात समझाने के लिए चलती है। ग्रंथकार निर्मल संत हैं। वे सच्चे संत की विरलता पर बल देने के लिए कई उदाहरण देते हैं, क्योंकि वे कवि-हृदय तथा प्रत्युत्पन्न प्रगल्भ बुद्धि वाले भी हैं।

कुंडलिया-10

जग खीझै तो का भया रीझै सतगुरु संत॥
रीझै सतगुरु संत आस कुछ जग की नाहीं।
एक द्वार को छोड़ और ना माँगन जाही॥
जिउ मेरो बरु जाय जन्म बरु जाय नसाई।
करों न दूसर आस संत की करों दुहाई॥
तीन लोक रिसियाय सकल सुर नर और नारी।
मोर न बांकै बार पठंगा पाया भारी॥

पलटू सब रोवै पड़ा मोर भया सलतंत।
जग खीझै तो का भया रीझै सतगुरु संत॥

शब्दार्थ—खीझै= खीजे, क्रुद्ध हो। रीझै= प्रसन्न हो। दोहाई= दुहाई, पुकार, गोहार। रिसियाय= क्रोधित हो, नाखुश हो। बांकै बार= बाल बांका होना, बाल कटना। पठंगा= बल, शक्ति। सलतंत= सल्तनत, राज्य, बादशाहत।

भावार्थ—संसार के लोग मेरे ऊपर क्रोध करते हैं तो मेरा क्या बिगड़ेगा? मेरी लालसा है कि सद्गुरु-संत मेरे ऊपर कृपादृष्टि रखकर प्रसन्न रहें। मुझे सांसारिक भोगों की कोई आशा-कामना नहीं है। एक संत-गुरु का द्वार छोड़कर अलग कहीं मैं कुछ मांगने नहीं जाता हूं। मेरा जीना और जन्म भले नष्ट हो जाय, मैं दूसरे की आशा नहीं करता हूं। मैं संतों के सामने ही गोहार करके उनसे अपनी रक्षा चाहता हूं। तीनों लोक के लोग—सारे संसार के मनुष्य हम पर क्रोध करें; सारे सुर, नर, मुनि, नर और नारी हमसे नाखुश हो जायं, इससे मेरा बाल भी बांका नहीं होगा—मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ेगा। क्योंकि मैंने गुरु-संतों द्वारा आत्मज्ञान का भारी बल पा लिया है। पलटू साहेब कहते हैं कि मेरे ऊपर क्रुद्ध होकर सभी लोग रोते पड़े रहें, मैं इसकी परवाह नहीं करता। मेरा तो स्वरूपस्थिति का साम्राज्य हो गया हूं, मैं परमानन्द में हूं। अतएव जगत के लोग मुझसे खीझते हैं तो खीझते रहें। सद्गुरु-संत हम पर प्रसन्न हैं तो हमारा बेड़ा पार है।

2. नाम का महत्त्व

कुंडलिया-11

नाम नाम सब कहत है नाम न पाया कोय॥
नाम न पाया कोय नाम की गति है न्यारी।
वही सकस को मिलै जिन्होंने आसा मारी॥
हौं को करै खमोस होस ना तन को राखै।
गगन गुफा के बीच पियाला प्रेम का चाखै॥
बिसरै भूख पियास जाय मन रँग में लागै।
पाँच पचीस रहै वार संग में सोऊ भागै॥
आपुइ रहै अकेल बोलै बहु मीठी बानी।
सुनतै अब वह बनै कहा मैं कहौं बखानी॥

पलटू गुरु परताप तें रहै जगत में सोय।
नाम नाम सब कहत है नाम न पाया कोय॥

शब्दार्थ—सकस= शख्स, मनुष्य। हौं= अहंकार। खमोस= खामोश, चुप, मौन, शांत। वार= आघात, प्रहार।

भावार्थ—सभी धार्मिक लोग नाम-जप का महत्त्व बताते हैं और कहते हैं कि नाम के मिल जाने पर बेड़ा पार हो जाता है, परन्तु इन लोगों ने उस आत्मस्थिति को नहीं पाया, जिसका नाम सत्य है। नाम की दशा तो विलक्षण है। सत्य जिसका नाम है उसे उस मनुष्य ने पाया जिसने सारी सांसारिक आशाओं और इच्छाओं को समाप्त कर दिया। वह अपने मन के अहंकार को शांत कर देता है और शरीर के अभिमान को मिटा देता है। वह आत्मशांति की प्रपंचशून्य गगन-गुफा में बैठा निरंतर आत्माराम का प्रेम-प्याला पीता है। वह भूख-प्यास की परवाह नहीं करता, अपितु यथाप्राप्त में संतुष्ट रहकर और भौतिक धरातल से उठकर अपने मन को स्वरूपस्थिति के भाव में डुबा देता है। वह पांच ज्ञानेन्द्रियां और पचीस प्रकृतियों के विषय-वासनात्मक संस्कारों पर प्रहार करता है। अतएव वे एक साथ भाग जाते हैं। वह बोधवान अपने स्वरूपबोध में रहने से सदैव अकेला एवं असंग रहता है। वह जगत व्यवहार में आने पर विनम्रतापूर्वक अत्यंत मीठी वाणी बोलता है। उसकी बात सुनते ही बनती है। मैं उसकी बड़ाई करके कहां तक कहूं? पलटू साहेब कहते हैं कि सद्गुरु की कृपा से वही संसार में मुक्त होकर रहता है। केवल नाम-नाम चिल्लाने से कुछ नहीं होता है।

विशेष—एक नाम, तीन नाम, पांच नाम, सात नाम आदि सब शब्दों के जोड़ हैं जो गुरु द्वारा दीक्षा के समय शिष्यों को सुनाये जाते हैं। वे प्रतीकात्मक हैं। असली बात है स्वरूपज्ञान, स्वरूपस्थिति और स्वरूपस्थिति की दिव्य रहनी, जिनका वर्णन ग्रंथकार ने उक्त कुंडलिया में कर दिया है और पूरे ग्रंथ में है।

कुंडलिया-12

लहना है सतनाम का जो चाहै सो लेय॥
जो चाहै सो लेय जायगी लूट ओराई।
तुम का लुटिहौ यार गाँव जब दहिहै लाई॥
ताकै कहाँ गँवार मोट भर बाँध सिताबी।
लूट में देरी करै ताहि की होय खराबी॥

बहुरि न ऐसा दावँ नहीं फिर मानुष होना।
क्या ताकै तू ठाढ़ हाथ से जाता सोना॥
पलटू मैं उतृन भया मोर दोस जिन देय।
लहना है सतनाम का जो चाहै सो लेय॥

शब्दार्थ—लहना= पाना, लेना। लूट= प्राप्ति। ओराई= समाप्त। दहिहै= जलावेगा। लाई= लाइ, अग्नि। मोट भर= बड़ा गट्ठर। सिताबी= शिताबी, शीघ्रता। उतृन= उऋण, मुक्त, उत्तरदायित्वरहित।

भावार्थ—सत्य जिसका नाम है उस आत्मा का ज्ञान पाना ही जीवन का मुख्य प्राप्तव्य है। जिसकी इच्छा हो, वह इसे प्राप्त करे। आत्मबोध की प्राप्ति का समय देखते-देखते समाप्त हो जायेगा। हे मित्र! तुम आत्मबोध क्या प्राप्त करोगे जब तुम्हारे शरीर रूपी गांव को मौत आकर काल की आग से जलायेगी। हे अनाड़ी! तू दुविधा में क्या पड़ा है? जल्दी से आत्मज्ञान का भारी मोट बांध ले। जो आत्मज्ञान की प्राप्ति में देरी करता है उसकी बरबादी होना है। ऐसा सुनहला अवसर फिर से मिलना कठिन है। तत्काल मनुष्य शरीर पुनः मिलना भी सहज नहीं है। हे असावधान! तू खड़ा होकर क्या देखता है? तेरे हाथ से सोना जैसा समय भागा जा रहा है। पलटू साहेब कहते हैं कि मैंने उचित सलाह देकर अपना कर्तव्य निभा दिया। अब मैं उत्तरदायित्व रहित हो गया हूं। अब मुझे दोष मत देना। जो चाहे सत्य आत्मज्ञान लेकर अपना कल्याण कर ले।

कुंडलिया-13

मीठ बहुत सतनाम है पियत निकारै जान॥
पियत निकारै जान मरै की करै तयारी।
सो वह प्याला पियै सीस को धरै उतारी॥
आँख मूँदि कै पियै जियन की आसा त्यागै।
फिरि वह होवै अमर मुए पर उठि कै जागै॥
हरि से वे हैं बड़े पियो जिन हरि रस जाई।
ब्रह्मा बिस्नु महेश पियत कै रहे डेराई॥
पलटू मेरे बचन को ले जिज्ञासू मान।
मीठ बहुत सतनाम है पियत निकारै जान॥

शब्दार्थ—सतनाम= जो सतनाम से जाना जाय वह आत्मा है। जान= अहंकार।

भावार्थ—जो सतनाम से जाना जाता है वह आत्मा है। जब जिसको आत्मबोध हो जाता है तब आत्मबोध साधक का अहंकार मार देता है। आत्मबोध का रस पीते ही साधक मरने की तैयारी करता है—सारा अहंकार छोड़कर प्रपंच-शून्य केवल दशा में रहना चाहता है। आत्मबोध का प्याला वह पीता है जो अपने सिर को उतारकर रख देता है—देहाभिमान सर्वथा दूर कर देता है। मुमुक्षु को चाहिए कि वह अपने सत्स्वरूप आत्मा के बोध का प्याला आंख मूंदकर पिये, जीने-भोगने-जानने की आशा छोड़ दे। फिर तो वह अपने अभिन्न अमृत आत्मस्वरूप में स्थित होकर शाश्वत एवं अमर हो जाता है। वह अहंकारशून्य हो जाने पर अपने आप में जाग जाता है और मोह-नींद से उठ खड़ा होता है। हरि-रस पीने वाला हरि से श्रेष्ठ है—जो आत्मलीन हो गया, उसका परोक्ष परमात्मा खो जाता है। वह स्वयं परमात्मा है। ब्रह्मा, विष्णु और महादेव आत्मरस पीने से डरते हैं, क्योंकि वे जगत प्रपंच में उलझे हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि जिज्ञासु मेरी बात को मान जाय। आत्मबोध का परिचय कराने वाले वचन ग्रहण करते ही साधक अहंकार-शून्य होकर आत्मतृप्त हो जाता है।

विशेष—ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर रज, सत तथा तम गुण के प्रतिनिधित्व करने वाले काल्पनिक पौराणिक देवता हैं।

सत क्या है? प्रश्न करने वाला आत्मा ही सत है। जिस नाम, संज्ञा, शब्द एवं वाणी से उसका बोध हो वही सतनाम है। आत्मबोधपरक वाणी ही सतनाम है। सतनाम-सतनाम जपना तो एक साधारण धार्मिक क्रिया है। अपने आपको पहचानकर अपने आप में ही लीन और मस्त रहना सतनाम की सार्थकता है। इसी भाव की मस्तानगी संतप्रवर पलटू साहेब की वाणी में सर्वथा गूंजती है।

कुंडलिया-14

संत सनेही नाम है नाम सनेही संत॥
नाम सनेही संत नाम को वही मिलावैं।
वे हैं वाकिफकार मिलन की राह बतावैं॥
जप तप तीरथ बरत करै बहुतेरा कोई।
बिना वसीला संत नाम से भेंट न होई॥

कोटिन करै उपाय भटक सगरौ से आवै।
संत दुवारे जाय नाम को घर तब पावै॥
पलटू यह है प्रान पर आदि सेती औ अंत।
संत सनेही नाम है नाम सनेही संत॥

शब्दार्थ—वाकिफकार= जानकार।वसीला= सहायता,जरिया,द्वार, संबंध। सगरौ= सर्वत्र। प्रान पर= प्राण से ऊपर।

भावार्थ—सतनाम मानो संतों का प्रेमी है, क्योंकि संत सतनाम के प्रेमी हैं। संत ही सतनाम के अर्थस्वरूप आत्मा का बोध कराते हैं। आत्मबोध में स्थित संत आत्मबोध और आत्मस्थिति के अनुभवी होते हैं। वे ही आत्मबोध का रास्ता दिखा सकते हैं। कोई चाहे जितने जप, तप, तीर्थ, व्रत करे, बिना संत का सहारा लिये आत्मबोध नहीं होगा। आदमी सब तरफ भटककर तथा सारे उपाय करके थक जाय, परंतु आत्मबोध नहीं पायेगा। जब वह संत के पास जायेगा तभी सतनाम के अर्थस्वरूप में आत्मस्थिति रूपी घर पायेगा। पलटू साहेब कहते हैं कि आत्मज्ञान भौतिक प्राण से ऊपर है और बोध होने के शुरू से लेकर जीवन के अंत के लिए आनन्दमय है। जीवन के अंत तक आनन्द है तो शरीरपात पश्चात अनंतकाल के लिए आनन्द है। जीवन्मुक्ति ही विदेहमुक्ति में पहुंचाती है। आत्मज्ञान के प्रेमी संत से इसका भेद मिलता है।

कुंडलिया–15

दीपक बारा नाम का महल भया उजियार॥
महल भया उजियार नाम का तेज बिराजा।
सब्द किया परकास मानसर ऊपर छाजा॥
दसों दिसा भई सुद्ध बुद्ध भई निर्मल साची।
छुटी कुमति की गाँठि सुमति परगट होय नाची॥
होत छतीसों राग दाग तिरगुन का छूटा।
पूरन प्रगटे भाग करम का कलसा फूटा॥
पलटू अंधियारी मिटी बाती दीन्ही टार।
दीपक बारा नाम का महल भया उजियार॥

शब्दार्थ—मानसर= हिमालय की प्रसिद्ध झील, निर्मल मन। दसों दिसा= पूर्ण जीवन।

भावार्थ—सतनाम के अर्थस्वरूप आत्मज्ञान का दीपक जलाया और हृदय-भवन प्रकाशित हो गया। जीवन ज्योतित हो जाने पर आत्मज्ञान की गरिमा जीवन में छा गयी। आत्मज्ञानपरक निर्णय शब्द का प्रकाश होने पर जीवन के ऊपर निर्मल-मन रूपी मानसरोवर शोभायमान हो गया। जीवन की दसों दिशाएं निर्मल हो गयीं और बुद्धि का बरताव सत्यतापूर्ण और पवित्र हो गया; कुबुद्धि की गांठ कट गयी और सुंदर मति जीवन में सर्वत्र व्यवहृत होने लगी। अब तो जीवन में आनन्द के छत्तीसों राग बजने लगे और रजोगुण, सतोगुण तथा तमोगुण के दाग धुल गये। इन सबके परिणाम में जब रागात्मक कर्मों का घड़ा फूट गया तब साधक का पूर्ण भाग्योदय हो गया। संत पलटू साहेब कहते हैं कि आत्मज्ञान की बत्ती उद्‌गार देने पर अंतःकरण की अविद्या-अंधियारी नष्ट हो गयी। इस प्रकार आत्मज्ञान का दीपक जला देने पर जीवन-मंदिर में पूर्ण ज्ञानप्रकाश हो गया।

विशेष—आत्मज्ञान हो जाने पर जब पूर्ण आत्मलीनता हो जाती है, तब सारा भय मिट जाता है और जीवन में अखंड आनन्द एवं शाश्वत शांति का साम्राज्य स्थिर हो जाता है। यही सतनाम का प्रकाश है।

कुंडलिया-16

नाम केरे परताप से भये आन कै आन॥
भये आन कै आन बड़े के पाँव पड़ूँगा।
का बपुरा तिल तेल फूल संग बिकता महँगा॥
संत हैं बड़े दयाल आप सम मोको कीन्हा।
जैसे भृंगी कीट सिच्छा कुछ ऐसी दीन्हा॥
राई किहा सुमेर अजया गजराज चढ़ाई।
तुलसी होइगा रेंड़ सरन की पैज बड़ाई॥
पलटू जातिन नीच मैं सब औगुन की खान।
नाम केरे परताप से भये आन कै आन॥

शब्दार्थ—आन कै आन= अन्य का अन्य, कुछ का कुछ। बपुरा= बेचारा, दीन-हीन। पैज= टेक, आधार।

भावार्थ—मैं आत्मज्ञान के प्रभाव से कुछ का कुछ हो गया। तुच्छ से महान हो गया। इसलिए मैं बड़ों के चरणों में झुकता हूं। बेचारे तिल के तेल का क्या महत्त्व है? परन्तु वह सुगंधित फूलों के रस में मिलकर महंगा बिकने

लगता है। संत बड़े दयालु होते हैं। उन्होंने मुझे अपने समान उत्तम बना लिया। जैसे भृंग (भंवरा) कीड़े को अपना शब्द सुनाकर उसे अपने समान बना लेता है, वैसे विवेकवान संतों ने मुझे कुछ ऐसी ही शिक्षा देकर अपने समान बना लिया। उन्होंने मुझे राई के दाने से उच्च सुमेरु पर्वत बना दिया और बकरी को हाथी पर बैठा दिया। सद्गुरु-संतों की शरण का आधार लेने पर मैं तुच्छ वैसे ही महान हो गया जैसे एरंड का पेड़ सुगंधित तथा गुण प्रद तुलसी का पौधा बन जाय। संत पलटू साहेब कहते हैं कि मैं जातियों में नीच बनिया जाति का आदमी और सारे दुर्गुणों की खान हूं, परन्तु सद्गुरु के उपदेश-प्रभाव से तुच्छ से महान हो गया।

विशेष—भंवरा अपने शब्द सुनाकर कीड़े को अपने समान भंवरा बना लेता है, यह कहावत है। सद्गुरु अपना ज्ञान सुनाकर शिष्य को अपने समान बना लेते हैं, यह यथार्थ है।

विनम्रता के लिए अपने को तुच्छ मानना उत्तम है। ध्यान रहे, मानव की एक जाति है। उसमें उत्तम, मध्यम तथा अधम नहीं हैं। अपने कर्मों से मनुष्य उत्तम, मध्यम तथा अधम बनते हैं। इसलिए काल्पनिक जाति की मान्यता को मन में रखकर कोई अहम और हीनत्व की भावना न रखे। पलटू साहेब ने अपने को नीच जाति का कहा, यह सामाजिक गलत प्रभाव का परिणाम था। उनके सामने तो कबीर साहेब का गरिमामय मानव-उच्चता का प्रभाव था। चलो, यह भी पलटू साहेब की विनम्रता थी।

कुंडलिया-17

हाथी घोड़ा खाक है कहै सुनै सो खाक॥
कहै सुनै सो खाक खाक है मुलुक खजाना।
जोरू बेटा खाक खाक जो साचै माना॥
महल अटारी खाक खाक है बाग बगैचा।
सेत सपेदी खाक खाक है हुक्का नैचा॥
साल दुसाला खाक खाक मोतिन कै माला।
नौबतखाना खाक खाक है ससुरा साला॥
पलटू नाम खुदाय का यही सदा है पाक।
हाथी घोड़ा खाक है कहै सुनै सो खाक॥

शब्दार्थ—खाक= मिट्टी। सेत सपेदी= चमक-दमक। नैचा= हुक्का की नली। नौबतखाना= राजद्वार के ऊपर शहनाई-नगाड़ा बजाये जाने का बना स्थान; नौबत= मंगलसूचक बाजा।

भावार्थ—अंततः हाथी-घोड़े मिट्टी हैं। इनकी बड़ाई करने-सुनने वाले मिट्टी हो जाते हैं। देश और खजाना मिट्टी हैं। पत्नी-पुत्र जो सत माने जाते हैं, अंततः खाक हो जाते हैं। महल-अटारी, बाग-बगीचे, सारी चमक-दमक, हुक्के तथा हुक्के की नलियां, शाल-दुशाले, मोतियों की मालाएं, नौबतखाने और श्वसुर-साले मिट्टी हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि एक खुदा का नाम ही सदैव पवित्र है। जड़ दृश्य तो सब खाक मिट्टी है।

विशेष—ईश्वर की कल्पना पवित्र है, इसके लिए कल्पित नाम खुदा, अल्लाह, ईश्वर, गॉड भी पवित्र भाव उत्पन्न करने वाले हैं, परन्तु सच्चा बोध तो तब होगा जब मन की कल्पनाओं से मुक्त होकर खुद खुदा में स्थिति होगी।

कुंडलिया-18

हाथ जोरि आगे मिलै लै लै भेंट अमीर॥
लै लै भेंट अमीर नाम का तेज बिराजा।
सब कोउ रगरै नाक आइ कै परजा राजा॥
सकलदार मैं नहीं नीच फिर जाति हमारी।
गोड़ धोय षट करम बरन पीवै लै चारी॥
बिन लसकर बिन फौज मुलुक में फिरी दुहाई।
जन महिमा सतनाम आपु में सरस बड़ाई॥
सतनाम के लिहे से पलटू भया गँभीर।
हाथ जोरि आगे मिलै लै लै भेंट अमीर॥

शब्दार्थ—सकलदार= सुंदर। दुहाई= वाहवाही।

भावार्थ—पलटू साहेब कहते हैं कि मुझमें सतनाम के फलस्वरूप आत्मशांति का तेज आ गया है। इससे प्रभावित होकर बड़े-बड़े अमीर भेंट ले-ले कर और हाथ जोड़कर सामने आकर मिलते हैं। प्रजा से राजा तक सब मनुष्य आकर सामने नतमस्तक होकर नाक रगड़ते हैं। मैं देह से सुंदर नहीं हूं। मेरी जाति भी नीच बनिया की है। लेकिन षटकर्म करने वाले ब्राह्मण से लेकर चारों वर्ण मेरे पैर धोकर पीते हैं। मेरे पास सेना नहीं है, किन्तु देश में

मेरी जयजयकार हो रही है। वस्तुतः यह सतनाम के अर्थस्वरूप आत्मज्ञान और आत्मशांति की महिमा और मीठी विशेषता है। सतनाम की परिभाषा स्वरूप आत्मज्ञान और आत्मस्थिति प्राप्त होने पर पलटू दास गंभीर हो गया। इसलिए छोटे-बड़े सब करबद्ध हो भेंट लेकर मुझसे मिलते हैं।

3. साधु-संत

कुंडलिया-19

बड़ा होय तेहि पूजिये संतन किया बिचार॥
संतन किया बिचार ज्ञान का दीपक लीन्हा।
देवता तैंतिस कोट नजर में सब को चीन्हा॥
सब का खंडन किया खोजि के तीनि निकारा।
तीनों में दुइ सही मुक्ति का एकै द्वारा॥
हरि को लिया निकारि बहुर तिन मंत्र बिचारा।
हरि हैं गुन के बीच संत हैं गुन से न्यारा॥
पलटू प्रथमै संत जन दूजे हैं करतार।
बड़ा होय तेहि पूजिये संतन किया बिचार॥

शब्दार्थ—तीन= ब्रह्मा, विष्णु, शंकर। हरि= विष्णु, ईश्वर।

भावार्थ—संतों ने विचार किया कि जो बड़ा हो उसकी पूजा की जाय। उन्होंने ज्ञान का दीपक लिया और उसके प्रकाश में तैंतीस करोड़ देवताओं की अपनी ज्ञान दृष्टि से पहचान कर और उन्हें निरर्थक समझकर उनका त्याग कर दिया। उन देवताओं में से खोजकर तीन को निकाल लिया—ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर। उनमें भी ब्रह्मा और शंकर को रज-तम गुण जानकर उन्हें भी छोड़ दिया। इसके बाद संतों ने हरि पर भी विचार किया कि ये भी सतगुण युक्त भले हैं, परन्तु गुण के भीतर ही हैं; किन्तु आत्मलीन संत सभी गुणों—त्रिगुणों से परे हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि इसलिए प्रथम श्रेणी में संत हैं, ईश्वर तो दूसरे नंबर में है। अतएव संतों ने विचार किया कि आत्मलीन मनुष्य सर्वश्रेष्ठ और पूज्य है।

विशेष—वस्तुतः सारे देवता और ईश्वर मनुष्य के मन के खिलौने हैं। मनुष्य सर्वोच्च ज्ञान-निधान है। मनुष्यों में जो भौतिक धरातल से ऊपर उठकर आत्मलीन है, वह सर्वोच्च पूज्य है। उसी की उपासना से कल्याण है।

कुंडलिया-20

सीतल चंदन चंद्रमा तैसे सीतल संत॥
तैसे सीतल संत जगत की ताप बुझावैं।
जो कोइ आवै जरत मधुर मुख बचन सुनावैं॥
धीरज सील सुभाव छिमा ना जात बखानी।
कोमल अति मदु बैन बज्र को करते पानी॥
रहन चलन मुसकान ज्ञान को सुगंध लगावैं।
तीन ताप मिटि जाय संत के दर्सन पावैं॥
पलटू ज्वाला उदर की रहै न मिटै तुरंत।
सीतल चंदन चंद्रमा तैसे सीतल संत॥

शब्दार्थ—ज्वाला उदर की= मन का संताप।

भावार्थ—जैसे चंदन और चन्द्रमा शीतल होते हैं वैसे संत शीतल होते हैं। वे जगत जीवों के मन के ताप को अपने सत्योपदेश से शीतल करते हैं। मन की ज्वाला में जलते हुए जो मनुष्य संत के पास आता है, संत अपने मुख से मीठे वचन सुनाकर उसे शांत करते हैं। संत में धैर्य, क्षमा और शील स्वभाव होता है जो वर्णन करके नहीं बताया जा सकता। संत कोमल एवं विनम्र होते हैं। वे अत्यंत मीठे वचन सुनाकर वज्र जैसे कठोर स्वभाव वाले व्यक्ति को पानी के समान कोमल कर देते हैं। वे अपनी पवित्र रहनी और आचरण से तथा पवित्र मुस्कान से ज्ञान की सुगंधी बिखेरते हैं। यदि ऐसे पवित्र संत के दर्शन सत्पात्र व्यक्ति पा जाय तो उसके तीनों ताप मिट जायंगे। पलटू साहेब कहते हैं कि उस मुमुक्षु के मन की जलन तुरंत मिट जायगी। फिर वह नहीं जलेगा, क्योंकि संत शीतल होते हैं।

कुंडलिया-21

संत बराबर कोमल दूसर को चित नाहिं॥
दूसर को चित नाहिं करैं सब ही पर दाया।
हित अनहित सब एक असुभ सुभ हाथ बनाया॥
कोमल कुसुमी चाह नहीं सुपने में दूषन।
देखैं परहित लागि प्रेम रस चूखैं ऊखन॥
मिलनसार मुसकान बचन मृदु बोली मीठी।
पुलकित सीतल गात सुभग रतनारी दीठी॥

पलटू कौनो कछु कहै तनिको ना अकुताहिं।
संत बराबर कोमल दूसर को चित नाहिं॥

शब्दार्थ—कुसुमी चाह= फूल जैसी कोमल मनोवृत्ति। ऊखन= ऊख, गन्ना। दीठी= दृष्टि। अकुताहिं= बेचैन होना।

भावार्थ—संत के समान कोमल चित्त दूसरे का नहीं होता है। वे सब पर दया करते हैं। संत अपने हित करने वाले तथा अहित करने वाले सब पर समता का बरताव करते हैं। पाप और पुण्य अपने हाथों के बनाये होते हैं। संत उन दोनों से ऊपर उठ जाते हैं। संत विनम्र होते हैं। उनकी मनोवृत्ति फूल जैसी कोमल और सद्‌गुण सुगंध से भरी होती है। उनके मन में स्वप्न में भी दोष नहीं आते। वे दूसरों के कल्याण के लिए उसे देखते हैं। वे प्रेमरस के मीठे गन्ने चूसते हैं। वे सबसे हिल-मिलकर रहने वाले स्वभाव के होते हैं। वे मुस्कराते हुए विनम्र और मीठी बोली बोलते हैं। उनका शरीर प्रफुल्ल और शीतल होने से दर्शनीय होता है। उनकी प्रेम भरी रतनारी दृष्टि होती है। पलटू साहेब कहते हैं कि उन संत को कोई कुछ भी भला-बुरा कहे वे उससे थोड़ा भी उद्विग्न नहीं होते। संत के समान कोमल मन दूसरे का नहीं होता है।

कुंडलिया-22

राम समीपी संत हैं वे जो करैं सो होय॥
वे जो करैं सो होय हुकुम में उनके साहिब।
संत कहैं सोइ करैं राम ना करते बायब॥
राम के घर के बीच काम सब संतै करते।
देवता तैंतिस कोट संत से सबही डरते॥
राई पर्बत करैं करैं पर्बत को राई।
राम के घर के बीच फिरत है संत दुहाई॥
पलटू घर में राम के और न करता कोय।
राम समीपी संत हैं वे जो करैं सो होय॥

शब्दार्थ—बायब= विरुद्ध। दुहाई= प्रभाव।

भावार्थ—संत राम के निकट रहने वाले होते हैं। वे आत्माराम में लीन होते हैं। अतएव संत जो करते हैं वही होता है। संत की ही आज्ञा में राम चलते हैं। संत जो आज्ञा देते हैं राम वही करते हैं। वे संत के विरुद्ध कुछ

नहीं करते। राम के घर में सारा काम संत ही करते हैं। तैंतीस कोटि के सारे देवता संत से भय करते हैं। संत विषयासक्ति में पड़े दीन-हीन जीवों को आत्मज्ञान के उपदेश देकर महान बना देते हैं और पर्वत के समान महान मोह-बंधन को राई के समान तुच्छ कर देते हैं। अतएव राम के घर में संत का ही प्रभाव व्याप्त रहता है। पलटू साहेब कहते हैं कि राम के घर में अन्य कोई कर्ता-धर्ता नहीं है। राम के निकट निवास करने वाले संत जो कुछ करते हैं वही होता है।

विशेष—ऊपर का कथन काव्यात्मक है। राम, ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, गॉड, परमात्मा, अल्लाह आदि केवल शब्द हैं। इनकी चरितार्थता आत्मज्ञान और आत्मशांति में ही है। सब कुछ का ज्ञाता, बोद्धा और स्थापक चेतन आत्मा है। आत्मज्ञान आत्मस्थिति मानव जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य है। इसमें रमने वाले संत कहलाते हैं। इसलिए उक्त पदों में संत की बड़ाई की गयी है। राम या ईश्वर कोई अलग नहीं है जिसके घर में संत रहते हैं। आत्मा ही परमात्मा है और उसमें संत स्थित होते हैं, इसलिए वे परमात्मा के घर में रहते हैं। ईश्वर तथा तैंतीस कोटि के देवता सब काल्पनिक हैं। कल्पना करने वाला मनुष्य है। जो मनुष्य अपने आप में लीन है वह संत है।

कुंडलिया-23

संत सासना सहत हैं जैसे सहत कपास॥
जैसे सहत कपास नाय चरखा में ओटै।
रुई धर जब तुमै हाथ से दोऊ निभोटै॥
रोम रोम अलगाय पकरि कै धुनिया धूनी।
पिउनी नँह दै कात सूत ले जुलहा बूनी॥
धोबी भट्ठी पर धरी कुन्दीगर मुंगरी मारी।
दरजी टुक टुक फारि जोर कै किया तयारी॥
परस्वारथ के कारने दुख सहै पलटू दास।
संत सासना सहत हैं जैसे सहत कपास॥

शब्दार्थ—सासना= कष्ट। तुमै= अंगुलियों से नोचकर रुई को साफ करना।निभोटै= नोचना। पिउनी= रुई का पिंड। नह= नख, नाखून। कुन्दीगर= कपड़े की सिलवट दूरकर उसे सुंदर बनाने के लिए लकड़ी की मुंगरी (कुंदा) से कूटने वाला। टुक-टुक= टूक-टूक।

भावार्थ—संत आत्म-सुधार तथा दूसरों को कल्याण मार्ग में लगाने के लिए वैसे ही कष्ट सहते हैं जैसे कपास सहता है। रुई को चरखे में डालकर उसे ओटा जाता है। दोनों हाथों से नोच-नोच कर उसे साफ किया जाता है। धुनिया रुई को धुनता है और उसके रोयें-रोयें को अलग कर साफ कर देता है। कपास की पिउनी में नख लगाकर सूत काता जाता है। फिर उससे जोलाहा चरखे में ताना-बाना करके कपड़ा बुनता है। उस कपड़े को धोबी भट्ठी पर चढ़ाता है। कुन्दीगर उस कपड़े की सिलवट दूर कर उसे सुंदर बनाने के लिए कुन्दी (मुंगरी) से पीटता है। दरजी उस कपड़े को टूक-टूक फाड़कर सिलता है और पहनने का वस्त्र तैयार करता है। इतना कष्ट सहकर कपास दूसरे का शरीर ढांकता है। पलटू साहेब कहते हैं कि इसी प्रकार संत आत्मकल्याण और दूसरे के कल्याण के लिए नाना कष्ट सहते हैं।

कुंडलिया-24

संतन के सिर ताज है सोई संत होइ जाय॥
सोई संत होइ जाय रहै जो ऐसी रहनी।
मुख से बोलै साच करै कछु उज्जल करनी॥
एक भरोसा करै नहीं काहू से माँगै।
मन में करै संतोष तनिक ना कबहूँ लागै॥
भली बुरी कोउ कहै ताहि सुनि नहिं मन माखै।
आठ पहर दिन रात नाम की चरचा राखै॥
पलटू रहै गरीब होय भूखे को दे खाय।
संतन के सिर ताज है सोई संत होइ जाय॥

शब्दार्थ—माखै= क्रोध या उद्वेग होना।

भावार्थ—वही सर्वश्रेष्ठ संत है जो इस प्रकार की रहनी में रहता है—मुख से सदैव सत्य बोले, पवित्र कार्य करे, एक प्रारब्ध एवं अपने कर्तव्य पर विश्वास रखे, किसी से कभी कुछ न मांगे, मन में सदैव संतोष रखे, कभी थोड़ी भी तृष्णा न रखे, कोई के भला-बुरा कहने पर मन में उद्वेग न लावे, आठों पहर तथा रात-दिन आत्मस्मरण एवं आत्मलीनता में रहे। पलटू साहेब कहते हैं कि थोड़ी वस्तुओं में सादगी से निर्वाह ले और सामने मिले हुए भूखे को खिलाकर खाय, ऐसे संत सर्वश्रेष्ठ होते हैं।

कुंडलिया-25

तीन लोक से जुदा है उन संतन की चाल॥
उन संतन की चाल करम से रहते न्यारे।
लोभ मोह हंकार ताहि की गरदन मारे॥
काम क्रोध कछु नाहिं लगै न भूख पियासा।
जियतै मिर्तक रहैं करैं ना जग की आसा॥
ऋद्धि सिद्धि को देख देत हैं खाक चलाई।
माया से निर्विर्त भजन की करैं बड़ाई॥
सभै चबैना काल का पलटू उन्हैं न काल।
तीन लोक से जुदा है उन संतन की चाल॥

शब्दार्थ—मिर्तक= मृतक, अहंकार-शून्य। ऋद्धि-सिद्धि= संपत्ति, स्वामित्व और प्रतिष्ठा। निर्विर्त= निवृत्त, परे।

भावार्थ—उन संतों का आचरण सारी दुनिया से परे है। वे रागात्मक कर्म-प्रपंच से दूर रहते हैं; लोभ, मोह तथा अहंकार को जड़ मूल से नष्ट कर देते हैं। उनके मन में काम-क्रोधादि मनोविकार नहीं होते। उनको सांसारिक भोगों की तृष्णा नहीं रहती। वे जीते जी संसार से मरे हुए के समान अहंकार शून्य होते हैं। वे जगत की आशा नहीं रखते। वे संपत्ति, स्वामित्व एवं प्रतिष्ठा पर धूल चला देते हैं। वे माया-मोह से परे रहकर आत्मलीनता की महत्ता में जीते हैं। सारा संसार काल का चबैना है। पलटू साहेब कहते हैं कि उन संतों के लिए काल नहीं है, क्योंकि वे कालातीत अमर आत्मा में स्थित हैं। अतएव उच्च संतों की रहनी सारी दुनिया से परे है।

कुंडलिया-26

फाका जिकर किनात ये तीनों बात जगीर॥
तीनों बात जगीर खुसी की कफनी डारै।
दिल को करै कुसाद आई भी रोजी टारै॥
इबादत दिन रात याद में अपनी रहना।
खुदी खूब को खोइ जनाजा जियतै करना॥
सीकन्दर और गदा दोऊ को एकै जानै।
तब पावै टुक नसा फना का प्याला छानै॥

पलटू मस्त जो हाल में तिसका नाम फकीर।
फाका जिकर किनात ये तीनों बात जगीर॥

शब्दार्थ—फाका—फ़ाक़ा, निराहार रहना, उपवास। जिकर=जिक्र, चर्चा, सत्संग। किनात=संतोष। जगीर=जागीर, राज्य से मिला भूमिखण्ड, धन। कुसाद=उदार। इबादत=उपासना। खुदी=अहंकार। जनाजा=जनाज़ा, शव, लाश, अर्थी, लाश रखने की संदूक। सीकन्दर=सिकंदर महान, राजा। गदा=भिखारी, भिखमंगा। टुक नसा=थोड़ी मस्ती। फना=नाश, मृत्यु। हाल=दशा, वर्तमान, उपस्थित, आत्मलीनता। फकीर=फ़क़ीर, त्यागी।

भावार्थ—समय से भूखे रह जाना, सत्संग करना तथा संतोष रखना ये तीनों त्यागी की संपत्ति हैं। वह प्रसन्नता का कफन पहन लेता है, दिल को उदार रखता है, आयी हुई द्वंद्वात्मक संपत्ति भी हटा देता है। जो आत्मचिंतन में रहता है वह मानो रात-दिन उपासना करता है। अहंकार को पूर्णतया मिटा देता है और जीवित अवस्था में ही अपने माने हुए शरीर को मुरदा रूप में देखता है। वह बादशाह और भिखारी को समान समझता है। वह सब कुछ की नश्वरता सब समय देखता है और मृत्यु-स्मरण का प्याला सब क्षण पीता है। ऐसी रहनी में ही आत्मलीनता का थोड़ा नशा चढ़ता है। पलटू साहेब कहते हैं कि जो वर्तमान में पूर्ण निश्चिंतता की मस्ती में रहता है, वह फकीर है। उसका समय से भूखा रह जाना, सत्संग एवं आत्मस्मरण और संतोष ही अचल संपत्ति है।

कुंडलिया-27

कबही फाका फकर है कबही लाख करोर॥
कबही लाख करोर गमी सादी कछु नाहीं।
ज्यों खाली त्यों भरा सबुर है मन के माहीं॥
कबही फूलन सेज हाथी की है असवारी।
कबही सोवै भुईं पियादे मंजिल गुजारी॥
कबहीं मलमल जरी ओढ़ते साल दुसाला।
कबही तापै आग ओढ़ि रहते मृगछाला॥
पलटू वह यह एक है परालब्ध नहिं जोर।
कबही फाका फकर है कबही लाख करोर॥

शब्दार्थ—फाका= भूखा। फकर= फ़क्र, दरिद्रता। गमी= ग़मी, शोक का समय। सादी= शादी, ख़ुशी, आनंदोत्सव, विवाह। सबुर= सब्र, संतोष, सहनशीलता। जरी= ज़री, स्वर्णिम।

भावार्थ—कभी भूखे रह जाना होता है और दरिद्रता रहती है और कभी पास में लाख-करोड़ की संपत्ति हो जाती है। विवेकवान के मन में न शोक है और न आनन्द का उत्सव। उनके लिए जैसे खाली है वैसे भरा है। उन्हें संपन्नता और विपन्नता दोनों दशाओं में मन में संतोष और सहनशीलता है। कभी फूलों से सजी शय्या है और हाथी की सवारी है तो कभी जमीन पर सोते हैं और पैदल ही रास्ता तय करते हैं। कभी मलमल तथा स्वर्णिम वस्त्र पहनते हैं और शाल-दुशाले ओढ़ते हैं। कभी आग तापकर और मृगछाला ओढ़कर दिन काटते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि विवेकवान उसे और इसे—अनुकूल और प्रतिकूल एक मानते हैं। प्रारब्ध पर किसी की जबर्दस्ती नहीं चल सकती। कभी भूखे और दरिद्रता में दिन कटते हैं और कभी-कभी करोड़ द्रव्य आ जाता है।

विशेष—अनुकूल तथा प्रतिकूल स्थिति में समता-संतोष में जीना ज्ञान का फल है और इसी में शांति है।

कुंडलिया-28

साध महातम बड़ा है जैसो हरि यस होय॥
जैसो हरि यस होय ताहि को गरहन कीजै।
तन मन धन सब वारि चरज पर तेकरे दीजै॥
नाम से उत्पत्ति राम संत आनाम समाने।
सबसे बड़ा अनाम नाम की महिमा जाने॥
संत बोलते ब्रह्म चरन कै पियै पखारन।
बड़ा महापरसाद सीत संतन कर छाड़न॥
पलटू संत न होवते नाम न जानत कोय।
साध महातम बड़ा है जैसो हरि यस होय॥

शब्दार्थ—आनाम= अनाम, नाम से परे शुद्ध आत्मस्थिति।

भावार्थ—हरि-यश के समान साधु का माहात्म्य श्रेष्ठ है। इसलिए उसे ग्रहण करना चाहिए। साधु-संतों के चरणों पर अपने तन, मन और धन न्योछावर कर दो। राम, अल्लाह, ईश्वर आदि सारे नाम शब्द से उत्पन्न

होते हैं, परन्तु संत नाम-रूप से परे आत्मस्थिति में लीन होते हैं। नाम-रूप से परे अनाम पद—स्वरूपस्थिति सर्वोच्च है। नाम-रूप की महिमा जानने-कहने वाला चेतन आत्मा ही है। संत बोलते हुए ब्रह्म हैं। उनके चरण धोकर पीयो और उनके खाये हुए से छुटा हुआ महाप्रसाद खाओ। पलटू साहेब कहते हैं कि संत न होते तो राम, ईश्वर, अल्लाह आदि नाम कौन कहता? कोई नाम का भेद भी नहीं जानता। अतएव हरियश के समान संत की महिमा बड़ी है।

विशेष—सारे अज्ञान को हरण करने वाले सद्गुरु ही हरि हैं, और अंततः अपना आत्मस्वरूप चेतन ही हरि है जिसके बोध और स्थिति से सारे दुखों का अंत होता है। परोक्ष हरि तो मन की अवधारणा है।

कुंडलिया-29

हरि हरिजन को दुइ कहै सो नर नरकै जाय॥
सो नर नरकै जाय हरिजन हरि अंतर नाहीं।
फूलन में ज्यों बास रहैं हरि हरिजन माहीं॥
संत रूप अवतार आप हरि धरि कै आये।
भक्ति करे उपदेस जगत को राह चलाये॥
और धरै अवतार रहै सर्गुन संजुक्ता।
संत रूप जब धरै रहै सर्गुन से मुक्ता॥
पलटू हरि नारद सेती बहुत कहा समुझाय।
हरि हरिजन को दुइ कहै सो नर नरकै जाय॥

शब्दार्थ—हरि= परमात्मा, ज्ञान, आत्मा। हरिजन= परमात्मलीन, आत्मलीन, संत।

भावार्थ—जो मनुष्य हरि और हरिजन को दो कहता है वह देहाभिमान की गंदगी में ही पड़ा रहता है। वस्तुतः हरि और हरिजन में भेद नहीं है। जैसे फूलों में सुगंधी होती है, वैसे हरि हरिजन में रहते हैं। हरि स्वयं संत का अवतार लेकर आते हैं और भक्ति का उपदेश देकर जगत जीवों को सन्मार्ग में चलने की प्रेरणा देते हैं। अन्य अवतार तीनों गुणों से संयुक्त होते हैं किन्तु संत अवतार तीनों गुणों से मुक्त होते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि श्री विष्णु ने नारद से अच्छी तरह समझाकर कहा है कि हरि और हरिजन, परमात्मा और संत को जो दो कहता है वह भवधारा में ही भटकता है।

कुंडलिया-30

हरि अपनो अपमान सह जन की सही न जाय॥
जन की सही न जाय दुर्बासा की क्या गत कीन्हा।
भुवन चतुर्दस फिरे सभै दुरियाय जो दीन्हा॥
पाहि पाहि करि परै जबै हरि चरनन जाई।
तब हरि दीन्ह जवाब मोर बस नाहिं गुसाँईं॥
मोर द्रोह करि बचै करौं जन द्रोहक नासा।
माफ करै अंबरीक बचौगे तब दुर्बासा॥
पलटू द्रोही संत कर तिन्हैं सुदर्सन खाय।
हरि अपनो अपमान सह जन की सही न जाय॥

शब्दार्थ—दुरियाय= दुर-दुर कह कर हटा दिया। पाहि-पाहि= शरण-शरण, रक्षा करो-रक्षा करो।

भावार्थ—विष्णु अपना अपमान सह लेते हैं, किन्तु हरिजन का अपमान नहीं सह सकते। विष्णु ने दुर्वासा की क्या गति की, यह सब जानते हैं। दुर्वासा चौदह भुवनों में सुदर्शन चक्र की मार से बचने के लिए भागते रहे, परन्तु सभी ने उनको दुत्कार कर भगा दिया, किसी ने उनकी रक्षा नहीं की। जब दुर्वासा विष्णु के पास जाकर "रक्षा करो-रक्षा करो, मैं आपकी शरण में हूं।" कहकर गोहार मचाये, तब विष्णु ने उनको उत्तर दिया कि हे गोस्वामी ! यह मेरे वश की बात नहीं है। उन्होंने कहा कि मुझसे वैर करके कोई बच सकता है, परन्तु जो हरिजन का द्रोह करेगा, मैं उसको अवश्य दंड दूंगा। हे दुर्वासा ! जब भक्त अंबरीष तुम्हें क्षमा कर देंगे तब तुम बच सकोगे। पलटू साहेब कहते हैं कि संत से वैर करने वाले को सुदर्शन खा जायेगा। अतएव हरि अपना अपमान सह सकते हैं, किन्तु हरिजन का अपमान नहीं सह सकते।

विशेष—एक पौराणिक काल्पनिक कहानी है कि राजा अंबरीष एकादशी व्रत उपवास रहे और द्वादशी को पारण के समय के लिए उन्होंने दुर्वासा को भोजन के लिए निमंत्रित किया। द्वादशी के प्रातः थोड़े समय तक पारण का मुहूर्त था। दुर्वासा को न आते देखकर अंबरीष ने सालग्राम का धोवन-जल पारण के रूप में मुख में डाल लिया। इतने में दुर्वासा आ गये और उन्होंने यह देख लिया। दुर्वासा तो दुर्वासा, तुरंत क्रुद्ध हो गये और उन्होंने अंबरीष को शाप देना चाहा, तो विष्णु का सुदर्शन चक्र दुर्वासा को मारने के लिए उनके पीछे चल पड़ा। दुर्वासा सभी लोकों में भागते फिरे कि कोई देवी-

देवता या राजा-महाराजा मुझे सुदर्शन की मार से बचा ले, किन्तु किसी ने उनको शरण नहीं दी। अंततः दुर्वासा हारकर विष्णु की शरण में गये और उन्होंने उनसे कहा कि भगवान, मुझे बचाइये। तब विष्णु ने कहा कि मेरा द्रोह करके तो कोई बच सकता है, परन्तु संत-भक्त का द्रोह करके नहीं बच सकता। यदि आप बचना चाहते हैं, तो अंबरीष की शरण में ही जाइए। अंततः अंबरीष की शरण में ही जाकर दुर्वासा का बचाव हुआ।

इसका सार अभिप्राय यह है कि गलत काम करके कोई उसके फल से बच नहीं सकता। निरपराध और सज्जन-संत को संताप देकर कोई उसके बुरे परिणाम से उबर नहीं सकता।

कुंडलिया-31

काम क्रोध जिनके नहीं लगै न भूख पियास॥
लगै न भूख पियास रहै तिरगुन से न्यारा।
लोभ मोह हंकार नींद की गरदन मारा॥
सत्रु मित्र सब एक एक है राजा रंका।
दुख सुख जीवन मरन तनिक ना ब्यापै संका॥
कंचन लोहा एक एक है गरमी पाला।
अस्तुति निन्दा एक एक है नगन दुसाला॥
पलटू उनके दरस से होत पाप को नास।
काम क्रोध जिनके नहीं लगै न भूख पियास॥

शब्दार्थ—भूख पियास= भोगों की आशा-तृष्णा। नींद= असावधानी, मोह-नींद।

भावार्थ—जिनके मन में काम-क्रोध नहीं है और जिन्हें सांसारिक भोगों तथा ऐश्वर्य की आशा-तृष्णा नहीं है; वे सत, रज तथा तम तीनों गुणों को जीतकर गुणातीत आत्म स्वरूप में स्थित रहते हैं। वे लोभ, मोह और अहंकार को समूल नष्ट किये रहते हैं। उनकी दृष्टि में शत्रु और मित्र तथा राजा और दरिद्र समान रहते हैं। दुख-सुख और जीवन-मृत्यु के विषय में उनके मन में शंका, संदेह, लालसा और भय नहीं होते। उनकी दृष्टि में सोना-लोहा और गरमी-ठंडी समान है। वे अपने ऊपर आयी हुई प्रशंसा और निन्दा को समान समझते हैं। समय से नंगे शरीर रहना पड़े, अथवा शाल-दुशाले ओढ़ने को मिले, दोनों में वे हर्ष-शोक से रहित रहते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि ऐसे

निर्मल मन के समता प्राप्त संत के दर्शन से मन के मैल धुलते हैं। वे काम-क्रोधादि मनोविकारों तथा आशा-तृष्णा से मुक्त होते हैं।

कुंडलिया-32

ना काहू से दुष्टता ना काहू से रोच॥
ना काहू से रोच दोऊ को इकरस जाना।
बैर भाव सब तजा रूप अपना पहचाना॥
जो कंचन सो काँच दोऊ की आसा त्यागी।
हारि जीत कछु नाहिं प्रीति इक हरि से लागी॥
सुख दुख सम्पत्ति बिपति भाव ना यहु से दूजा।
जो बाम्हन सो सुपच दृष्टि सम की पूजा॥
ना जियने की खुसी है पलटू मुए न सोच।
ना काहू से दुष्टता ना काहू से रोच॥

शब्दार्थ—दुष्टता= दुर्व्यवहार। रोच= मोह। सुपच= भंगी। सम= समान।

भावार्थ—मेरा न किसी के प्रति दुर्व्यवहार है और न किसी से मोह है। मैं शत्रु और मित्र को एक समान समझता हूं। मैंने सारे वैर और मोह को त्यागकर अपने आत्म-स्वरूप को पहचान लिया है और उसमें स्थित हो गया हूं। मेरे लिए जैसे सोना है वैसे कांच है। मैंने दोनों को पाने की आशा त्याग दी है। न मुझे कभी कहीं अपनी हार लगती है और न जीत। मेरा प्रेम तो आत्मस्वरूप हरि से लग गया है। दुख में, सुख में, संपत्ति में और विपत्ति में मेरा द्वैत भाव नहीं है। मेरे लिए सब समान है। मेरी दृष्टि में ब्राह्मण कहलाने वाले और भंगी कहलाने वाले समान हैं। मैं सारे मानव को समान मानकर सबका सत्कार करता हूं। पलटू साहेब कहते हैं कि मुझे न जीने में प्रसन्नता है और न मरने की याद कर चिंता है। मुझे किसी से दोस्ती-दुश्मनी नहीं है।

4. पाखंडी

कुंडलिया-33

पिसना पीसै राँड़ री पिउ पिउ करै पुकार॥
पिउ पिउ करै पुकार जगत को प्रेम दिखावै।
कहवै कथा पुरान पिया को तनिक न भावै॥

खिन रोवै खिन हँसै ज्ञान की बात बतावै।
आप न रीझै भाँड़ और को बैठि रिझावै॥
सुनै न वाकी बात तनिक जो अन्तर जानी।
चाहै भेटा पीव चलै न सुपथ रहानी॥
पलटू ऊपर से कहै भीतर भरा बिकार।
पिसना पीसै राँड़ री पिउ पिउ करै पुकार॥

शब्दार्थ—राँड़ = विधवा, पाखंडी। भाँड़ = मसखरा। रहानी = रहनी, आचरण।

भावार्थ—विधवा चक्की से आटा पीसते हुए पीउ-पीउ पुकारती है। अर्थात आत्मा रूपी परमात्मा का बोध हुए बिना पाखंडी मनुष्य राग-द्वेष की चक्की चलाता है और बाहर परमात्मा की चर्चा करता है और संसार के लोगों में यह प्रदर्शित करता है कि मैं परमात्मा का बड़ा प्रेमी हूं। वह परमात्मा के गुणानुवाद में पुराणों की कथा करता है, परंतु उसकी बात परमात्मा को तनिक भी अच्छी नहीं लगती—अंतरात्मा प्रसन्न नहीं होता। ऐसे लोग अपनी भगवत भक्ति दिखाने के लिए झूठी विरह भावना का प्रदर्शन करते हैं। वे क्षण में रोते हैं, क्षण में हंसते हैं और क्षण में ज्ञान की बातें करते हैं। नाच-नाटक का मस्खरा स्वयं तो नहीं रीझता है, अन्य को हावभाव करके रिझाता है। जो अंतरात्मा की बात जानते और कहते हैं उनके निर्णय वचन ऐसे लोग थोड़ा भी नहीं सुनना चाहते। वे चाहते तो हैं कि प्रियतम परमात्मा में लीन हो जायं, किन्तु सदाचार के पथ पर न चलते हैं और न अंतर्मुख रहनी अपनाते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि ऐसे लोग भक्ति-ज्ञान की बातें केवल दिखावे के लिए करते हैं, किन्तु उनके मन में विषय-वासना के विकार भरे रहते हैं। विवेकहीन मनुष्य राग-द्वेष में डूबा रहता है और ऊपर-ऊपर आत्मा-परमात्मा का प्रेम प्रदर्शित करता है।

कुंडलिया-34

पर दुख कारन दुख सहै सन असंत हैं एक॥
सन असंत हैं एक काट के जल में सारै।
कूँचै खैंचै खाल ऊपर से मुँगरा मारै॥
तेकर बटि कै भाँजि भाँजि के बरतै रसरा।
नर की बाँधे मुसुक बाँधते गउ और बछरा॥

अमरजाल फिर होय बझावै जलचर जाई।
खग मृग जीवा जंतु तेही में बहुत बझाई॥
जिव दे जीव संतावते पलटू उनकी टेक।
पर दुख कारन दुख सहै सन असंत हैं एक॥

शब्दार्थ—असंत=दुष्ट। सन=जिसकी रस्सी बनती है वह पौधा। भुसुक=बंधन।

भावार्थ—दुष्ट और सन, ये दोनों दूसरों को दुख देने के लिए स्वयं दुख सहने में एक समान हैं। सन को काटकर और जल में डालकर सड़ाया जाता है। उसकी खाल खींची जाती है, फिर मुंगरी मारकर उसे कूटा जाता है। फिर उसे बटते हैं, ऐंठते हैं और उसकी रस्सी बनाते हैं। उस रस्सी से मनुष्य का मुसुक बांधते हैं; गाय, बछड़े आदि जानवरों को बांधते हैं। सन का मजबूत जाल बनाकर उसमें मछली आदि अनेक जल-जंतु को फंसाते हैं। आकाश में उड़ने वाले तथा वन में विचरने वाले बहुत जीवों को सन से बनी रस्सी तथा जाल में फंसाते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि दुष्ट लोग इसी प्रकार अपने जीव को कष्ट देकर भी दूसरे जीव को दुख देते हैं। उनका ऐसा ही हठ होता है। इस प्रकार दूसरों को देख देने के लिए सन और दुष्ट स्वयं दुख सहते हैं।

कुंडलिया-35

बिस्वा किये सिंगार है बैठी बीच बजार॥
बैठी बीच बजार नजारा सब से मारै।
बातैं मीठी करै सभन की गाँठि निहारै॥
चोवा चंदन लाइ पहिरि के मलमल खासा।
पंचभतारी भई करै औरन की आसा॥
लेइ खसम को नाँव खसम से परिचै नाहीं।
बेचि बड़न को नाँव सभन को ठगि-ठगि खाही॥
पलटू तेकर बात है जेकरे एक भतार।
बिस्वा किये सिंगार है बैठी बीच बजार॥

शब्दार्थ—बिस्वा=वेश्या। गांठि=पैसे-रुपये। खसम=पति।

भावार्थ—वेश्या शृंगार करके बीच बाजार में बैठती है और पुरुषों को मोहित करने के लिए सब पर नजारा मारती है। वह सभी पुरुषों से मीठी-

मीठी बातें करती है, किन्तु वह सबकी गांठ के रुपये-पैसे पर ध्यान रखती है। चोवा-चंदन का लेपन कर तथा खासा मलमल एवं कीमती वस्त्र पहनकर सबको लुभाती है और पंचों को—सबको अपना भतार बनाती है। इसके आगे भी वह अन्य-अन्य पुरुषों की आशा करती है। इसी प्रकार पाखंडी लोग पति परमात्मा का नाम तो लेते हैं, परन्तु उन्हें असली पति आत्मा से परिचय नहीं है। ऐसे लोग बड़े प्रसिद्ध पुरुषों के नाम लेकर उनके भक्त बनते हैं और लोगों को अपने जाल में फंसाकर उनको ठग-ठग कर भोग-विलास करते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि उनकी प्रतिष्ठा होती है जिसका प्रियतम निज स्वरूप आत्मा है। वेश्या के समान नाना देवी-देवताओं में उलझे हुए लोगों का महत्त्व नहीं है।

कुंडलिया-36

हवा हिरिस पलटू लगी नाहक भये फकीर॥
नाहक भये फकीर पीर की सेवा नाहीं।
अपने मुँह से बड़े कहावैं सब से जाहीं॥
धमधूसर होइ रहे बात में सबसे लड़ते।
लाम काफ वो कहैं इमान को नाहीं डरते॥
हमहीं हैं दुरवेस और ना दूसर कोई।
सब को देहिं मुराद यकीन से ओकरे होई॥
मन मुरीद होवै नहीं आप कहावैं पीर।
हवा हिरिस पलटू लगी नाहक भये फकीर॥

शब्दार्थ—हिरिस= हिर्स, लालच, तृष्णा, लोभ, इच्छा का वेग। पीर= गुरु, सद्गुरु। धमधूसर= मोटे तगड़े, लड़ाकू। लाम काफ= फारसी वर्णमाला के अक्षर लाम और काफ़; गालीगलौज, दुर्वचन। दुरवेस= दरवेश=फकीर, त्यागी। यकीन= यक़ीन, विश्वास। ओकरे= उसके। मुराद= कामना, अभिलाषा। मुरीद= शिष्य, चेला।

भावार्थ—जिनके मन में भोग-सम्मान के लोभ-लालच की आंधी चलती है, वे व्यर्थ में साधु का वेष धारण करते हैं। ऐसे लोग सद्गुरु की सेवा नहीं करते। वे सबके पास पहुंचकर अपने मुंह से अपनी बड़ाई करते हैं। वे खा-पीकर मुस्टंड बने सबसे लड़ने में आगे रहते हैं। वे लोगों को कटु वचन कहते, गाली-गलौज देते हैं। उन्हें सत्यपथ पर चलने का कोई ध्यान

नहीं रहता और बुराई से भय नहीं करते। वे कहते हैं कि हम ही सच्चे त्यागी संत हैं। हमारे सामने दूसरा कोई नहीं है। वे सिद्ध बने अपने आशीर्वाद से सबकी कामनाएं पूरी करने का ढोंग करते हैं और उनके विश्वास का दुरुपयोग करते हैं। ऐसे लोग अपने मन को अपना शिष्य नहीं बनाये, उसे अपने वश में नहीं किये और स्वयं सद्गुरु बनकर दूसरों को तारने का दिखावा करने लगे। पलटू साहेब कहते हैं कि ऐसे लोगों के मन में सांसारिक कामनाओं की आंधी चलती रहती है। वे व्यर्थ ही साधु का बाना पहन लिये।

कुंडलिया-37

जौं लगि फाटै फिकिर ना गई फकीरी खोय॥
गई फकीरी खोय लगी है मान बड़ाई।
मोर तोर में परा नाहिं छूटी दुचिताई॥
दुख सुख संपति बिपति सोच दोऊ की लागी।
जीवन की है चाह मरन की डेर नहिं त्यागी॥
कौड़ी जिव के संग रैन दिन करै कल्पना।
दुष्ट कँहैं दुख देइ मित्र को जानै अपना॥
पलटू चिंता लगी है जनम गँवाये रोय।
जौं लगि फाटै फिकिर ना गई फकीरी खोय॥

शब्दार्थ—फिकिर= फिक्र, चिंता। दुचिताई= दुविधा, खींचतान। डेर= डर, भय। दुष्ट= दुश्मन।

भावार्थ—जब तक फिक्र फटी नहीं—मन की चिंता पूर्णतया मिटी नहीं, तब तक फकीरी व्यर्थ है। मन में मान-बड़ाई का लोभ लगा है। अहंता-ममता में उलझा है और मन दोनों तरफ भाग रहा है। दुख-सुख, संपत्ति और विपत्ति दोनों तरफ चिंता लगी है। जीने की लालसा लगी है, मरने का भय त्याग नहीं सका है। मन में कामना है कि पैसे कैसे आवें। रात-दिन धन-दौलत पाने की ही कल्पना मन में चलती रहती है। शत्रु को दुख देने का प्रयत्न करता है और मित्र में ममता करता है। पलटू साहेब कहते हैं कि मन में दुनियादारी की चिंता लगी है और जीवन रो-रोकर बिता रहे हैं। अतएव जब तक मन से चिंता दूर नहीं हुई, साधुता खोयी हुई है।

5. चेतावनी

कुंडलिया–38

क्या सोवै तू बावरी चाला जात बसंत॥
चाला जात बसंत कंत ना घर में आये।
धृग जीवन है तोर कंत बिन दिवस गँवाये॥
गर्ब गुमानी नारि फिरै जोवन की माती।
खसम रहा है रूठि नहीं तू पठवै पाती॥
लगै न तेरो चित्त कंत को नाहिं मनावै।
का पर करै सिंगार फूल की सेज बिछावै॥
पलटू ऋतु भरि खेलि ले फिर पछितैहै अंत।
क्या सोवै तू बावरी चाला जात बसंत॥

शब्दार्थ—चाला जात= चला जा रहा है। खसम= पति। पाती= पत्र, चिट्ठी।

भावार्थ—हे पगली ! तू असावधानी में पड़ी क्यों सोती है? वसंत ऋतु की बहार बीती जा रही है, किन्तु तुम्हारा पति तुम्हारे घर में नहीं आ सका। तेरे जीवन को धिक्कार है जो तू पति-विहीन होकर दिन खो रही है। नारी तो गर्व में मतवाली है और जवानी की मस्ती में मस्त है। तेरा पति तेरे से अप्रसन्न है। तू उसके पास चिट्ठी-पत्र भी नहीं भेजती है। तेरा मन अपने पति में नहीं लग रहा है। तू अपने प्रियतम को मनाने का प्रयत्न नहीं करती है। तू किसको मन में रखकर श्रृंगार करती है और फूलों की शय्या बिछाती है? पलटू साहेब कहते हैं कि पूरी वसंत ऋतु फाग खेल लो, अन्यथा अंत में पश्चाताप करना पड़ेगा। हे पगली ! तू क्यों गफलत में पड़ी है, वसंत ऋतु भागी जा रही है।

विशेष—मनोवृत्ति-युवती मोहमाया में उन्मत्त है। आत्मा रूपी पति का स्वागत करने का उसे ध्यान नहीं है। स्वस्थ जीवन का वसंत भागा जा रहा है। इसी सुनहले अवसर पर मनोवृत्ति आत्मलीन हो तो जीवन सफल है, अन्यथा रोना है।

कुंडलिया–39

खेलु सिताबी फाग तू बीती जात बहार॥
बीती जात बहार सम्बत लगने पर आया।
लीजै डफ्फ बजाय सुभग मानुष तन पाया॥

खेलो घूँघट खोलि लाज फागुन में नाहीं।
जे कोउ करिहैं लाज काज ना सपनेहुँ माहीं॥
प्रेम की माट भराय सुरति की करु पिचुकारी।
ज्ञान अबीर बनाय नाम की दीजै गारी॥
पलटू रहना है नहीं सुपना यह संसार।
खेलु सिताबी फाग तू बीती जात बहार॥

शब्दार्थ—सिताबी= शिताबी= शीघ्रता, जल्दी। बहार= वसंत ऋतु, आनंद, यौवन का आनंद, सुहावनापन। डफ्फ= डफ बाजा। माट= मटकी, घड़ा।

भावार्थ—जल्दी फाग खेल, वसंत ऋतु बीती जा रही है। नया वसंत लगने का समय निकट आ गया है—शरीर छूटने का समय समीप आ रहा है। यह कल्याणप्रद मानव शरीर मिला है। अपना नौबत-नगाड़ा बजा लो—साधना करके कल्याण कर लो। घूंघट खोलकर खेलो। फागुन में लज्जा करने का नियम नहीं है—लोकलाज छोड़कर भक्ति एवं साधना करो। जो कुलकानि की लज्जा एवं झूठी मर्यादा में फंसा रहेगा उसका स्वप्न में भी कल्याण नहीं होगा। प्रेम की मटकी में वैराग्य का रंग भरकर मनोवृत्ति की पिचकारी में उसे भरो और छोड़ो; और ज्ञान का अबीर उड़ाओ तथा जिससे आत्मज्ञान हो उस सतनाम की गारी दो—आत्माराम की चर्चा करो। पलटू साहेब कहते हैं कि इस संसार में रहना नहीं है। यह संसार सपना है। इसलिए शीघ्र आत्मज्ञान की साधना का खेल खेल लो, सुनहले समय की वसंत ऋतु बीती जा रही है।

विशेष—जीवन का समय बहार है, वसंत ऋतु है। इसमें भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य का फाग खेल लो। आज-कल में यह सुनहला समय बीत जायेगा। इस दुनिया को आज-कल में सदा के लिए छोड़ देना है। यह जीवन और संसार सपना है। इसमें न उलझो, अपितु इससे निर्मोह होकर शांति लो।

कुंडलिया-40

तू क्यों गफलत में फिरै सिर पर बैठा काल॥
सिर पर बैठा काल दिनो दिन वादा पूजै।
आज काल में कूच मुरख नहिं तोकहँ सूझै॥

कौड़ी कौड़ी जोरि ब्याज दे करते बट्टा।
सुखी रहै परिवार मुक्ति में होवत ठट्ठा॥
तू जानै मैं ठग्यो आप को तुही ठगावै।
नाम सजीवन मूर छोरि के माहुर खावै॥
पलटू सेखी ना रही चेत करौ अब लाल।
तू क्यों गफलत में फिरै सिर पर बैठा काल॥

शब्दार्थ—बट्टा= दलाली का धन, ब्याज बट्टा, ब्याज के नाम पर दूसरों को ठगना। ठट्ठा= हंसी मजाक, तिरस्कार। माहुर= विष, जहर। सेखी= घमंड, अहंकार।

भावार्थ—तू क्यों असावधान होकर घूम रहा है? तेरे सिर काल मड़ला रहा है। दिन-दिन यहां से जाने का वादा पूरा हो रहा है। आज-कल में यहां से चल देना है। मूर्ख! तुझे काल का जलवा दिखाई नहीं देता है। कौड़ी-कौड़ी धन इकट्ठा करता है। ब्याज पर रुपये देकर गरीबों को ठगता है। तेरी आशा है कि जायज-नाजायज धन बटोरने से तेरा परिवार सुखी रहेगा; परन्तु तू समझ ले कि तू अपनी मोक्ष साधना के साथ मजाक कर रहा है। तू समझता है कि मैं लोगों को ठग-ठग कर सम्पन्न हो रहा हूं। परन्तु ध्यान दे, तू स्वयं अपने दुष्कर्मों द्वारा ठगा जा रहा है। आत्मज्ञान जो संजीवनी बूटी है जिसमें स्थित होने से अमृत पद की प्राप्ति होती है, उसको छोड़कर तू विषय-वासना रूपी विष खा रहा है। पलटू साहेब कहते हैं कि हे लाल, हे प्यारे मुन्ना! तू चेत कर, तेरी दुनियादारी का घमंड रहने वाला नहीं है। सब थोड़े दिनों में उड़ जाने वाला है। तू असावधानी में क्यों भटकता है? तेरे सिर पर काल बैठा है।

कुंडलिया-41

गरमै गरमै हेलुवा गंफा लीजै मारि॥
गंफा लीजै मारि मनुष तन जात सिराना।
भजि लीजै भगवान काल सिर पर नियराना॥
मीठा है हरि नाम जियन का नाहिं भरोसा।
खाय लेहु भरिपेट आगे से जात परोसा॥
लीजै लाहा लूटि दिना दुइ संतन पासा।
अजहूँ चेत गंवार जात है खाली स्वासा॥

पलटू अटक न कीजिये कूच है साँझ सकारि।
गरमै गरमै हेलुवा गंफा लीजै मारि॥

शब्दार्थ—गंफा= गफ्फा, ग्रास। लाहा= लाभ। अटक= रुकना, अड़चन, अटकना।

भावार्थ—गरमागरम हलुआ परोसा है। जल्दी-जल्दी खा लो—उत्तम मानव शरीर मिला है, इसमें रहकर तीव्रता से अपनी कल्याण-साधना कर लो। मनुष्य शरीर का समय समाप्त होता जा रहा है। संत भगवान की सेवा कर लो और आत्मचिंतन में रम जाओ। मृत्यु सिर पर है। उसका समय निरंतर निकट आ रहा है। हरिनाम मीठा है—आत्माराम में रमना अमृत है। शरीर रखने का भरोसा मत रखो। तुम्हारे सामने व्यंजन परोसा जा रहा है, उसे पेट भर खा लो—संतों से आत्मज्ञान मिल रहा है उसका आचरण कर लो। दो दिन का जीवन है। विवेकवान संतों के सत्संग में जाकर आत्मकल्याण का लाभ लूट लो। हे भोले ! आज भी सावधान हो जा। तेरे श्वास भजन बिना निरर्थक जा रहे हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि आलस्य करके रुको मत, अपितु, शीघ्र कल्याण-साधना कर लो। सांझ-सकारे—देखते-देखते यहां से चल देना है। अतएव सावधान।

कुंडलिया-42

सुर नर मुनि जोगी जती सभै काल बसि होय॥
सभै काल बसि होय मौत कालौ की होती।
पारब्रह्म भगवान मरै ना अबिगत जोती॥
जाको काल डेराय ओट ताही की लीजै।
काल की कहा बसाय भक्ति जो गुरु की कीजै॥
जरा मरन मिटि जाय सहज में औना जाना।
जपि कै नाम अनाम संत जन तत्व समाना॥
बेद धनंतर मरि गया पलटू अमर न कोय।
सुर नर मुनि जोगी जती सभै काल बसि होय॥

शब्दार्थ—जती= यती, त्यागी। अबिगत= अविगत, मन-इन्द्रियों से परे। औना जाना= आना-जाना, जन्म-मरण। बेद धनंतर= वैद्य धन्वंतरि।

भावार्थ—देवता, मनुष्य, योगी, त्यागी सबके शरीर को काल खा जाता है। काल की भी मृत्यु हो जाती है जैसे विगत कल का काल (समय) आज

नहीं है परन्तु जो मन-इन्द्रियों से परे आत्मा है जिसे परब्रह्म, भगवान, ज्ञान ज्योति आदि कह सकते हैं, वह नहीं मरता। हे कल्याणार्थी! जिसका भय काल भी करता है उसका आधार लो। आत्मलीन सद्गुरु काल से ऊपर है। यदि उसकी भक्ति करके आत्मा को समझ लिया और निरंतर आत्मलीन है, तो उसका काल क्या बिगाड़ सकता है? आत्मलीन मनुष्य का इस देह के पात-पश्चात आना-जाना, जन्म लेना और मरना सब मिट जाता है। संतजन नाम रूप से परे आत्मा में स्थित होकर सत्स्वरूप अपने आप में लीन हो जाते हैं। देह किसी की अमर नहीं है। धन्वंतरि वैद्य तक मर गये। पलटू साहेब कहते हैं कि कोई देहधारी अमर नहीं है। देवता, मनुष्य, योगी, त्यागी, सबकी देह नाशवान है।

विशेष—नाम-रूप से परे अमर आत्मा में लीन संत अमर पद में स्थित हो जाते हैं। चेतन आत्मा अमर होने से काल से परे है; अतएव जो मनुष्य आत्मलीन हुआ, वह काल से परे हो गया।

कुंडलिया-43

चोला भया पुराना आज फटै कि काल॥
आज फटै कि काल तेहु पै है ललचाना।
तीनों पन गे बीत भजन का मरम न जाना॥
नख सिख भये सपेद तेहू पै नाहीं चेतै।
जोरि जोरि धन धरै गला औरन का रेतै॥
अब का करिहौ यार काल ने किहा तगादा।
चलै न एकौ जोर आय जब पहुँचा वादा॥
पलटू तैहु पै लेत है माया मोह जँजाल।
चोला भया पुराना आज फटै कि काल॥

शब्दार्थ—चोला=शरीर। तगादा=लौटाने का वादा। वादा=इकरार, प्रतिज्ञा।

भावार्थ—शरीर पुराना हो गया है। यह आज नष्ट हो या कल। इतने पर भी मनुष्य भोग और सम्मान पाने के लोभ में पड़ा है। बालपन, जवानी और बुढ़ापा तीनों पन बीतकर जरजरता आ गयी, इतने पर आत्मशोधन की साधना नहीं सीखी। सिर से पैर तक के बाल सफेद हो गये। तब पर भी सावधान

नहीं होता है। प्रत्युत दूसरे का गला काट-काट कर धन जोड़कर जमा करता है। हे मित्र! अब क्या उपाय करोगे? काल ने चलने की नोटिसें दे दी हैं। जब मौत का वारंट आ जायेगा तब बचने का तुम्हारा एक भी बल नहीं चलेगा। पलटू साहेब कहते हैं कि इतने पर भी मनुष्य माया-मोह के जंजाल को अपने ऊपर ओढ़े रहता है। सावधान! शरीर पुराना हो गया है। यह आज-कल में नष्ट हो जायेगा।

कुंडलिया-44

धूआँ का धौरेहरा ज्यों बालू की भीत॥
ज्यों बालू की भीत ताहि को कौन भरोसा।
ज्यों पक्का फल डारि गिरत से लगै न दोसा॥
कच्चे घड़े ज्यों नीर पानी के बीच बतासा।
दारू भीतर अगिनि जिवन की ऐसी आसा॥
पलटू नर तन जात है घास के ऊपर सीत।
धूआँ का धौरेहरा ज्यों बालू की भीत॥

शब्दार्थ—धौरेहरा= धरहरा, लाट। दोसा= दूसरी बार। दारू= दारु, लकड़ी।

भावार्थ—जैसे धुआ की ऊंची लाट और रेत की दीवार क्षणिक और दुर्बल है। उनका क्या भरोसा करना? जैसे फल डाल से गिरकर उसमें दूसरी बार नहीं लगता; जैसे मिट्टी के कच्चे घड़े में पानी बहुत समय तक नहीं टिकता; जैसे पानी के बीच बताशा गलने में देरी नहीं लगती वैसे क्षणिक जीवन पर भरोसा करने योग्य नहीं है। जैसे लकड़ी में आग रहती है, वैसे शरीर में काल रहता है। घास के ऊपर पड़े ओस-बूंद के समान शरीर के नष्ट होने में देरी नहीं लगती। यह शरीर तो धुआं की लाट और बालू की दीवार की तरह देखने भर का है। यह क्षण में नष्ट हो जायगा।

कुंडलिया-45

यही दिदारी दार है सुनहु मुसाफिर लोग॥
सुनहु मुसाफिर लोग भेट फिर बहुरि न होना।
को तुम को हम आय मिले सपने में सोना॥

हिल मिल दिन दस रहे ताहि को सोच न कीजै।
कोऊ है थिर नाहिं दोस ना हमको दीजै॥
अहिर बाँधि के गाय एक लेहड़े में आनी।
कूवाँ की पनिहारि गई ले घर घर पानी॥
पलटू मछरी आब ज्यों नदी नाव संयोग।
यही दिदारी दार है सुनहु मुसाफिर लोग॥

शब्दार्थ—दिदारी= दीदार, दर्शन, देखना। दार= स्थान, मकान, सराय। अहिर= ग्वाला। आब= पानी॥

भावार्थ—हे मुसाफिरो ! सुनो, इस मुसाफिरखाने में हम एक-दूसरे के दर्शन कर लें। आगे हम लोगों की भेंट होने वाली नहीं है। तुम कौन हो, मैं कौन हूं? सोते समय जैसे सपने में बहुत लोग मिले, किन्तु जागने पर कुछ नहीं, वैसे हम लोगों का परस्पर मिलना है। हम लोग इस दस दिन के जीवन में हिल-मिलकर रहें। दुनियादारी चीजों के लिए चिंता न करें। न किसी का जीवन स्थिर है और न किसी की प्रभुता स्थिर है। अतएव एक दूसरे को दोष न देकर समता से रहें। ग्वाला गाय को बांधकर अपने गायों के झुंड में लाता है। पानी भरने वाली पनिहारिन घर-घर पानी भरती है। जैसे मछली नदी-नाले के पानी में रह लेती है और जैसे नदी की नाव में अनेक दिशा के लोग बैठकर नदी पार होते हैं और सब अपना-अपना रास्ता अपनाते हैं, वैसे हम-आप सब थोड़े समय के लिए इकट्ठे हुए हैं और देखते-देखते सदा के लिए बिछुड़ जायंगे। बस, इस संसार-सराय में हम थोड़े समय के लिए मिले हैं। यही दर्शन से दर्शन है, फिर न मिल सकेंगे।

कुंडलिया-46

भजन आतुरी कीजिये और बात में देर॥
और बात में देर जगत में जीवन थोरा।
मानुष तन धन जात गोड़ धरि करौ निहोरा॥
काँचे महल के बीच पवन इक पंछी रहता।
दस दरवाजा खुला उड़न को नित उठि चहता॥
भजि लीजै भगवान एही में भल है अपना।
आवागौन छुटि जाय जनम की मिटै कलपना॥
पलटू अटक न कीजिए चौरासी घर फेर।
भजन आतुरी कीजिये और बात में देर॥

शब्दार्थ—आतुरी= शीघ्र। निहोरा= प्रार्थना। दस दरवाजा= दो आंख, दो नाक, दो कान, मुख, गुदा, लिंग तथा कपाल कुहर का तालुमूल। अटक= देर, विलंब, आलस्य।

भावार्थ—आत्मशोधन का काम शीघ्र कर लीजिए। अन्य काम करने में भले ही विलम्ब करें। संसार में थोड़े दिन का जीवन है। मैं तुम्हारे पैर पकड़कर तुमसे प्रार्थना करता हूं। मनुष्य शरीर ही महा धन है और वह बीता जा रहा है। इस कच्ची काया रूपी महल के बीच में एक प्राण पखेरू रहता है। इस महल के दसों द्वार हर क्षण खुले हैं। इसमें से पक्षी के उड़ जाने में क्या देर है? सद्गुरु भगवान की सेवा करो और अपने आत्माराम में विश्राम। इसी में अपना कल्याण है। इस साधना के फल में जन्म-जन्मांतर की विषय-कल्पना नष्ट हो जायेगी और जीव का जन्म-मरण बंधन कट जायगा। पलटू साहेब कहते हैं कि देरी तथा आलस्य मत करो और पुनः चौरासी के घर में न पड़ो। आत्मशोधन में शीघ्रता करो, भले अन्य काम में विलम्ब करो।

कुंडलिया-47

यही समय गुरु पाँय में गोता लीजै खाय॥
गोता लीजै खाय नाम के सरवर माहीं।
अवधि आइ नगिचान दावँ फिर ऐसा नाहीं॥
मानुष तन सकराँत महोदधि जात सिरानी।
ऐसी परबी पाइ नहीं तुम महिमा जानी॥
सतसंगत के घाट पैठि कै कर असनाना।
तन मन दीजै दान बहुरि नहिं औना जाना॥
पलटू बिलम न कीजिये ऐसा औसर पाय।
यही समय गुरु पाँय में गोता लीजै खाय॥

शब्दार्थ—सरवर= सरोवर, तालाब। सकराँत= घटता जा रहा है। महोदधि= समुद्र, जीवन का विस्तार। सिरानी= समाप्त। परबी= पर्व, शुभ अवसर। औना जाना= जन्म-मरण।

भावार्थ—हे कल्याणार्थी! आज का समय सुनहला है। सद्गुरु की चरण-शरण में रहकर सत्संग-सरोवर में गोता लगा लो। जीवन की समय-सीमा पूरी होती जा रही है। ऐसा सुनहला समय मिलना दुर्लभ है।

मनुष्य शरीर का समय घटता जा रहा है और जीवन-समुद्र का जल सूखता जा रहा है। ऐसा पर्व का दिन पाकर तुमने इसके महत्त्व को नहीं समझा। सत्संग के घाट पर बैठकर आत्मज्ञान-सरोवर में स्नान कर लो। आत्मज्ञान की साधना में अपने तन-मन को समर्पित कर दो, फिर तो जन्म-मरण का बंधन कट जायगा। पलटू साहेब कहते हैं कि ऐसा सुनहला समय पाकर विलम्ब मत करो। इसी समय में सद्गुरु के सत्संग-सरोवर में गोता लगा लो।

कुंडलिया-48

भया तगादा साहु का गया बहाना भूल॥
गया बहाना भूल नफा में मूर गँवाया।
भया साहु से झूठ बैठि के पूँजी खाया॥
नहीं लिहा हरि नाम करी नहिं संतन सेवा।
तीनों पन गये बीत पूजते देबी देवा॥
सारी सरहज सास धाइ के लूटि मजा री।
तुम्हरे सीस बिसान कोऊ ना संग तुम्हारी॥
पलटू मानै काल ना कठिन चलावै सूल।
भया तगादा साहु का गया बहाना भूल॥

शब्दार्थ—तगादा= तक़ाज़ा, अधिकारपूर्वक मांग। साहु= पूंजीपति, प्रकृति, मृत्यु। मूर= मूलधन। धाइ= धाय, सेविका। बिसान= आ पड़ा, ऊपर आ पड़ा।

भावार्थ—जब पूंजी वाले की मांग हुई तब बहाना करने की आदत भूल गयी। जब प्रकृति ने शरीर को लौटाने की मांग की तब सब बहानेबाजी गुम हो गयी। मनुष्य ने लाभ खाने के चक्कर में अपना मूल धन खो दिया—विषय-भोग और सम्मान पाने के चक्कर में अपना विवेक-धन खो दिया। बिना कमाई किये साहु से उधारी में पाया धन खा लिया—आत्मसुधार न कर जीवन को भोग-विलास में बिता दिया। न हरि का नाम लिया और न संतों की सेवा की—न सद्गुरु से आत्मज्ञान का उपदेश लिया न बड़ों की सेवा की। काल्पनिक जड़ देवी-देवता पूजते-पूजते जीवन के तीनों पन—कौमार्य, जवानी तथा बुढ़ापा बीत गये। बालपन में धाय की सेवा में आनन्द माना और जवानी में साली, सरहज, सासु आदि से सेवा-सम्मान पाने में आनंद माना।

परंतु ध्यान रखो, अपने सारे कर्म फल भोगों का बोझ तुम्हारे ही सिर पर आकर पड़ेगा। तुम्हारे कर्मफल भोगों में कोई अंगीकार न होगा। पलटू साहेब कहते हैं कि काल-चक्र तुम्हारे ऊपर दया-मया नहीं करेगा, अपितु विनाश का कठिन शूल चलाकर तुम्हारा सब कुछ छीन लेगा। जब प्रकृति तुम्हारी देह को लौटाना चाहेगी तब तुम्हारी सारी बहानेबाजी भूल जायगी।

कुंडलिया-49

काल महासिल साहु का सिर पर पहुँचा आय॥
सिर पर पहुँचा आय उजुर कछु एकौ नाहीं।
पहुँचा धै अगुआय लिहे धरि मारत जाही॥
मार परे भा चेत लगा तब करन बिचारा।
मूरख के परसंग बैठि कै बात बिगारा॥
चलै न एकौ जोर बहाना काको लेवै।
नहीं ब्याज नहिं मूर साहु को का लै देवै॥
पलटू वादा टरि गया पूँजी गई वराय।
काल महासिल साहु का सिर पर पहुँचा आय॥

शब्दार्थ—महासिल= महसूल (टैक्स) वसूलने वाला सिपाही। उजुर= उज्र, बहाना, प्रार्थना। धै= पकड़कर। अगुआय= आगे। वराय= समाप्त।

भावार्थ—प्रकृति रूपी साहू का तहसीलदार सिपाही मृत्यु है, वह आकर सिर पर पहुंच गया। उसके सामने कोई बहाना, प्रार्थना चलने वाला नहीं है। मौत आ पहुंची और प्राणी को पकड़ लिया और आगे मारते हुए ले चली। जब मौत की मार पड़ी, चलने का समय आया, तब मनुष्य को होश और पश्चाताप हुआ और विचार करने लगा कि मैं जीवनपर्यन्त मूर्खों के बीच में बैठकर अपना कल्याण करने का समय व्यर्थ खो दिया। अब समय बीत गया है। मौत से अपना जोर चलनेवाला नहीं है। बहाना भी किसका लिया जावे। मूल धन ही नहीं बचा है, तो ब्याज कैसे दिया जाय-विवेक ही खो गया, तो कल्याण कहां से हो? अब प्रसन्नतापूर्वक प्रकृति को शरीर कैसे लौटाया जाय? पलटू साहेब कहते हैं कि मूल पूंजी खो जाने से ब्याज सहित धन लौटाने की प्रतिज्ञा टल गयी—विवेक द्वारा आत्मकल्याण करके प्रसन्नता पूर्वक प्रकृति को शरीर लौटने की बात खटाई में पड़ गयी। प्रकृति का तहसीलदार सिपाही काल सिर पर आ धमका।

कुंडलिया-50

ज्यों ज्यों सूखै ताल है त्यों त्यों मीन मलीन॥
त्यों त्यों मीन मलीन जेठ में सूख्यो पानी।
तीनों पन गये बीति भजन का मरम न जानी॥
कँवल गये कुम्हिलाय हंस ने किया पयाना।
मीन लिया कोउ मारि ठाँव ढेला चिहराना॥
ऐसी मानुष देह बृथा में जात अनारी।
भूला कौल करार आप से काम बिगारी॥
पलटू बरस औ मास दिन पहर घड़ी पल छीन।
ज्यों ज्यों सूखै ताल है त्यों त्यों मीन मलीन॥

शब्दार्थ—मीन= मछली। चिहराना= फट गया। कौल-क़ौल= प्रतिज्ञा, वादा। करार= क़रार, वादा, प्रतिज्ञा।

भावार्थ—जैसे-जैसे तालाब सूखता है वैसे-वैसे मछली दुखी होती है। जेष्ठ महीना में तालाब का पूरा पानी सूख गया—बुढ़ापा आ जाने पर शरीर दुर्बल हो गया। बाल, जवानी तथा बुढ़ापा तीनों पन बीत गये, किन्तु आत्मशोधन का रहस्य नहीं समझ सका। तालाब सूख जाने से कमल फूल कुम्हला गये और उसमें रहने वाला हंस उड़ गया। मछुवारे ने मछलियां मार लीं और तालाब की मिट्टी सूखकर फट गयी और जगह-जगह ढेले हो गये—शरीर जर्जर हो गया। अंग सूख गये। इन्द्रियां निस्तेज हो गयीं। जीव देह छोड़कर चल दिया और देह नष्ट हो गयी। हे मूढ़! कल्याण-साधना करने योग्य मनुष्य-शरीर व्यर्थ में बीत रहा है। 'हम अपना कल्याण करेंगे' यह प्रतिज्ञा भूल गयी। तूने अपनी असावधानी से अपना काम बिगाड़ लिया। पलटू साहेब कहते हैं कि वर्षा, मास, दिन, पहर, घड़ी तथा पल के नाम से जाना जाता हुआ समय क्षण-क्षण क्षीण हो रहा है। जैसे-जैसे तालाब सूखता है, वैसे-वैसे मछली दुखी होती है—जैसे-जैसे शरीर क्षीण होता है, वैसे-वैसे मनुष्य निराश होता है।

कुंडलिया-51

बूड़ी जात जहाज है नाम निवर्तिक बोल॥
नाम निवर्तिक बोल हाथ से तेरे जाती।
माँझ धार में फटी सूम की जोगवै थाती॥

ऐसे मूरख लोग लालच में जनम गँवावैं।
गई हाथ से चीज तेहू पर लेखा लावैं॥
कंठा रूँधन भये मोह में लागा अजहूँ।
कीन्हे प्रान पयान नाम ना सुमिरे तबहूँ॥
पलटू नर तन रतन सम भा कौड़ी के मोल।
बूड़ी जात जहाज है नाम निवर्तिक बोल॥

शब्दार्थ—निवर्तिक= बचाने वाला। लेखा= हिसाब, चिंता। कंठा= कंठ, गला।

भावार्थ—मानव-शरीर भवसागर तरने का जहाज है, परंतु वह विषय-वासना के सागर में डूबा जा रहा है। उसको बचाने वाले आत्मज्ञान के निर्णय के शब्द एवं बोल हैं, परन्तु वे तेरे हाथ से खिसकते जा रहे हैं। तू उनका उपयोग नहीं करता है। तेरा जहाज बीच में ही फटा है। जैसे कंजूस मनुष्य अपने धन की थैली सम्हालने में लगा रहता है, वैसे तू माया-मोह में डूबा है। लोग ऐसे मूर्ख हैं कि मिथ्या भोगों के लोभ में पड़कर जीवन खो रहे हैं। जो वस्तु हाथ से छूट गयी है, उसको लेकर भी चिंता करते हैं। शरीर जरजर है। सांस गले में अटकी है, ऐसी स्थिति में भी मन मोह में फंसा है। प्राण-पखेरू उड़ने का समय आ गया है, इतने पर भी सतनाम का स्मरण नहीं करता। पलटू साहेब कहते हैं कि मनुष्य-शरीर उत्तम रत्न है, परंतु उसका दुरुपयोग करने से वह कौड़ी की कीमत पर बिक रहा है। भवसागर से तारने वाला मानव-शरीर रूपी जहाज माया-मोह के सागर में डूबा जा रहा है। सतनाम ही उसको डूबने से बचाने वाला बोल है।

विशेष—सत चेतन आत्मा है। उसका बोध करने वाला निर्णय वचन ही सतनाम है।

6. भक्ति और प्रेम

कुंडलिया-52

एक भक्ति मैं जानौं और झूठ सब बात॥
और झूठ सब बात करै हठजोग अनारी।
ब्रह्म दोष वो लेय काया को राखै जारी॥
प्रान करै आयाम कोई फिर मुद्रा साधै।
धोती नेती करै कोई लै स्वासा बाँधै॥

उनमुनि लावै ध्यान करै चौरासी आसन।
कोई साखी सबद कोइ तप कुस कै डासन॥
पलटू सब परपंच है करै सो फिर पछितात।
एक भक्ति मैं जानौं और झूठ सब बात॥

भावार्थ—मैं एकमात्र भक्ति जानता हूं। इसके अतिरिक्त सब बातें झूठी हैं। अनाड़ी लोग हठयोग करते हैं। वे शरीर को अधिक कष्ट देते हैं इससे तो ब्रह्मदोष ही लगता है, क्योंकि वे देह में रहने वाले आत्मा रूपी ब्रह्म को दुख देते हैं। वे प्राण को साधते हैं, मुद्रा साधते हैं, नेति-धौति आदि करके श्वास को बांधते हैं। वे कहते हैं कि हम उन्मनि ध्यान करते हैं। वे योग के चौरासी आसन करते हैं। कोई सारशब्द गाते फिरते हैं। कोई कुश घास का बिस्तर बनाते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि यह सब प्रपंच है। जो यह सब करेगा वह अंत में पश्चाताप करेगा। मैं तो केवल एक भक्ति जानता हूं। इसके बाद सब झूठ है।

कुंडलिया-53

संत न चाहैं मुक्ति को नहीं पदारथ चार॥
नहीं पदारथ चार मुक्ति संतन की चेरी।
ऋद्धि सिद्धि पर थुकैं स्वर्ग की आस न हेरी॥
तीरथ करहिं न बर्त नहीं कछु मन में इच्छा।
पुन्य तेज परताप संत को लगै अनिच्छा॥
ना चाहैं बैकुंठ न आवागवन निवारा।
सात स्वर्ग अपवर्ग तुच्छ सम ताहि बिचारा॥
पलटू चाहै हरि भगति ऐसा मता हमार।
संत न चाहैं मुक्ति को नहीं पदारथ चार॥

शब्दार्थ—पदारथ चार= चार पदार्थ—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष। थुकैं= तिरस्कार करते हैं। अनइच्छा= इच्छा-रहित।

भावार्थ—संत न मुक्ति चाहते हैं और न चार पदार्थ। मुक्ति तो संतों की सेविका है। वह निरंतर उनके पीछे लगी रहती है। संत ऋद्धि-सिद्धि का तिरस्कार करते हैं। वे स्वर्ग पाने की भी इच्छा नहीं करते। न वे तीर्थ करते हैं, न व्रत के नाम पर उपवास करते हैं। उनके मन में कोई इच्छा ही नहीं रहती। संत अपने पुण्य कर्मों के प्रभाव से सब समय इच्छाशून्य रहते

हैं। न वे बैकुण्ठ चाहते हैं और न आवागमन का निवार चाहते हैं। उनके लिए सात स्वर्ग और अपवर्ग निरर्थक हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि मेरा ऐसा मत है, मैं केवल हरि-भक्ति चाहता हूं। संत मुक्ति और चार पदार्थ नहीं चाहते।

विशेष—संत तीर्थ-व्रत न करें, स्वर्ग-बैकुंठ न चाहें, यह तो ठीक है, किन्तु मुक्ति और आवागमन का निवारण भी नहीं चाहते हैं, यह बात सामान्य लोगों को अजीब लगेगी, किन्तु अजीब कुछ नहीं है। पहले साधक जन्म-मरण से मुक्त होना चाहता है, अतएव मुक्ति चाहता है, परंतु जब वह इच्छाशून्य होकर आत्मलीनता में रहता है, तब कुछ नहीं चाहता है। तब वह मुक्त ही रहता है। इसलिए मुक्ति सेविका बनी उसके साथ निरंतर रहती है। पूर्ण संत मुक्ति में निरंतर जीता है। उसे तब मुक्ति पाने की इच्छा क्या रहेगी! वह तो नित्य मुक्त ही है। अब उसे आवागमन से छूटना नहीं रह गया। वह तो भवसागर से निरंतर पार ही है। मंजिल पा जाने पर मंजिल पाने की इच्छा नहीं रह जाती। जो निरंतर मुक्त है वह अब मुक्ति क्या चाहेगा? हरिभक्ति आत्मलीनता ही है।

कुंडलिया-54

ऐसी भक्ति चलावै मची नाम की कीच॥
मची नाम की कीच बूढ़ा औ बाला गावै।
परदे में जो रहै सब्द सुनि रोवत आवै॥
भक्ति करै निरधार रहै तिर्गुन से न्यारा।
आवै देय लुटाय आपु ना करै अहारा॥
मन सबको हरि लेय सभन को राखै राजी।
तीन देख ना सकै बैरागी पंडित काजी॥
पलटू दास इक बानिया रहै अवध के बीच।
ऐसी भक्ति चलावै मची नाम की कीच॥

शब्दार्थ—कीच= कीचड़, बहुतायत, गूंज। निरधार= असंग दशा। तिर्गुन = सत, रज, तम।

भावार्थ—मैंने ऐसी भक्ति चलाई कि सतनाम की गूंज हो गयी। बालक से बूढ़े तक उसे गाने लगे। जो घर के भीतर रहता है वह मेरे शब्द सुनकर विरह-कातर होकर रोते हुए सामने आता है। भक्ति आत्मा की असंग दशा है

जो तीनों जड़ गुणों से परे है। ऐसी ही भक्ति करना चाहिए। जो माया की वस्तु आवे उसे लोगों की सेवा में खर्च करे। उसको स्वयं के विलास में न लगावे। ऐसी निर्मल भक्ति करने वाले का मन सबको अपने वश में कर लेता है और सबको प्रसन्न कर लेता है। परंतु इस भक्ति को तीन वर्ग के लोग नहीं देख सकते—वैरागी, पंडित और काजी। पलटू दास तो एक बनिया है जो अयोध्या नगरी के बीच में रहता है। उसने ऐसी ही निराधार भक्ति चलायी है जिसकी सर्वत्र गूंज है।

विशेष—संत पलटू साहेब की भक्ति आत्मलीनता थी और उनकी रहनी फक्कड़ाना वैराग्यमय। इससे प्रभावित होकर आम जनता उनकी सुकीर्ति गाती थी। अयोध्या के कर्मकांडी और बहिर्मुखी भक्ति करने वाले वैरागी, पंडित और काजी इसे नहीं सह पाते थे, अतएव वे पलटू साहेब की निन्दा करते थे। संसार की यही कथा है।

कुंडलिया-55

मेरे तन मन लग गई पिय की मीठी बोल॥
पिय की मीठी बोल सुनत मैं भई दिवानी।
भंवरगुफा के बीच उठत है सोहं बानी॥
देखा पिय का रूप रूप में जाय समानी।
जब से भया मिलाप मिले पर ना अलगानी॥
प्रीत पुरानी रही लिया हम ने पहिचानी।
मिली जोत में जोत सुहागिन सुरत समानी॥
पलटू सब्द के सुनत ही घूँघट डारा खोल।
मेरे तन मन लग गई पिय की मीठी बोल॥

शब्दार्थ—पिय= प्रियतम आत्मा। भंवरगुफा= हृदय, मस्तिष्क। सोहं= सोहम्, वह मैं। घूंघट= अविद्या, द्वैतभाव।

भावार्थ—मनोवृत्ति कहती है कि प्रियतम आत्मा की चर्चा सुनकर मेरे तन-मन में उसका बोध समा गया। मैं उससे एकमेक होने के लिए पगली हो गयी। अब हृदय में निरंतर गहरी ध्वनि उठती है कि 'वह मैं हूं।' जब प्रियतम आत्मा के स्वरूप का बोध हुआ तब मैं उसमें जाकर लीन हो गयी। जब से मैं आत्मलीन हुई, तब से उनसे अलग नहीं हुई। चेतन आत्मा ही अपना शाश्वत स्वरूप है, इसको मैंने पहचान लिया। मनोवृत्ति ज्योति आत्मज्योति में मिल

गयी। मैं आत्म-पति वाली होकर सोहागिन हो गयी और आत्मभाव के लक्ष्य में लीन हो गयी। पलटू साहेब कहते हैं कि गुरु के आत्मबोधपरक शब्द कि 'मैं वही हूं जिसे मैं चाहता हूं।' सुनते ही अविद्या का परदा हट गया। आत्मबोध की बात मेरे तन-मन में व्याप्त हो गयी।

विशेष—शब्दों का घटाटोप बहुत होता है। सार अर्थ है कि स्वरूपज्ञान होने पर मनोवृत्ति आत्मलीन हो गयी।

कुंडलिया-56

पिय को खोजन मैं चली आपुइ गई हिराय॥
आपुइ गई हिराय कवन अब कहै सँदेसा।
जेकर पिय में ध्यान भई वह पिय के भेसा॥
आगि माहिं जो परै सोऊ अग्नी ह्वै जावै।
भृंगी कीट को भेंट आपु सम लेइ बनावै॥
सरिता बहि के गई सिन्धु में रही समाई।
सिव सक्ती के मिले नहीं फिर सक्ती आई॥
पलटू दिवाल कहकहा मत कोउ झाँकन जाय।
पिय को खोजन मैं चली आपुइ गई हिराय॥

शब्दार्थ—पिय= आत्मा रूपी परमात्मा। हिराय= खो गयी। दिवाल कहकहा= चीन देश की कहकहा नाम की दीवार; तात्पर्य में दृश्य माया।

भावार्थ—मनोवृत्ति कहती है कि पिय-परमात्मा को खोजने चली तो मैं स्वयं खो गयी। अब लौटकर कौन संसार को यह संदेश दे। जिसको प्रियतम की ध्यानमग्नता है, वह प्रियतम का स्वरूप हो जाता है। जो वस्तु अग्नि में पड़ती है, वह अग्नि रूप हो जाती है। भृंगी के शब्द सुनकर कीड़े भृंगी हो जाते हैं। नदी समुद्र में मिलकर समुद्र रूप हो जाती है। जब शक्ति शिव से मिल गयी तब वह शिव रूप हो जाती है। इसी प्रकार मनोवृत्ति आत्मारूपी परमात्मा में मिलकर तदाकार हो जाती है। संत पलटू साहेब कहते हैं कि सांसारिक माया रूपी कहकहा की दीवार पर चढ़कर भोगों को देखने कोई मत जाओ। मनोवृत्ति आत्मा में लीन होकर तदाकार हो जाती है।

विशेष—जब मन स्वरूपलीन हुआ, तब अन्य कुछ खोजने की बात व्यर्थ हो गयी।

कुंडलिया–57

मगन भई मेरी माइजी जब से पाया कंथ॥
जब से पाया कंथ पंथ सतगुरु बतलाया।
सतगुरु बड़े दयाल करी उन मो पर दाया॥
स्वस्ता मन में आइ छुटी मेरी दुचिताई।
सोऊँ कंथ के साथ अंग से अंग लगाई॥
अभ्यन्तर जागी प्रीत निरन्तर कंथ से लागी।
दरस परस के करत जगत की भ्रमना भागी॥
पलटू सतगुरु सब्द सुनि हृदय खुला है ग्रंथ।
मगन भई मेरी माइजी जब से पाया कंथ॥

शब्दार्थ—मेरी माइजी= मनोवृत्ति। कंथ= पति, आत्मा। स्वस्ता= शांति। दुचिताई= दुविधा। अभ्यंतर= भीतर। ग्रंथ= ग्रंथि, व्यसन।

भावार्थ—मेरी मनोवृत्ति माता जब से आत्मा रूपी पति को पा गयी तब से उसी में डूब गयी। सद्गुरु ने इसका बोध दिया। सद्गुरु बड़े कृपालु हैं। उन्होंने मेरे ऊपर कृपाकर मुझे स्वरूप–बोध दिया। आत्मबोध पाकर मेरे मन में शांति आ गयी और यह दुविधा दूर हो गयी कि परमात्मा कहीं अलग है। अब तो मनोवृत्ति निरंतर आत्म–पति में एकमेक होकर विश्रांति पा गयी। अब भीतर आत्म–पति का प्रेम निरंतर जगा रहता है। आत्मबोध होते ही जगत में भटकना बन्द हो गया। पलटू साहेब कहते हैं कि सद्गुरु के आत्मबोधपरक शब्द सुनकर हृदय की ग्रंथियां खुल गयीं, मन निर्भ्रांत और निर्मल हो गया। अब मनोवृत्ति निरंतर आत्मलीन है।

कुंडलिया–58

आठ पहर निरखत रहै जैसे चंद चकोर॥
जैसे चंद चकोर पलक से टारत नाहीं।
चुगै बिरह से आग रहै मन चन्दै माहीं॥
फिरै जेही दिस चंद तेही दिसि को मुख फेरै।
चंदा जाय छिपाय आग के भीतर हेरै॥
मधुकर तजै न पदम जान से जाइ बँधावै।
दीपक में ज्यों पतंग प्रेम से प्रान गँवावै॥
पलटू ऐसी प्रीत कर पर धन चाहै चोर।
आठ पहर निरखत रहै जैसे चंद चकोर॥

शब्दार्थ—चंद= चन्द्रमा। मधुकर= भ्रमर। पदम= कमल फूल।

भावार्थ—साधक को रात-दिन वैसे आत्मलीनता में रहना चाहिए जैसे चकोर पक्षी चंद्रमा को सब समय देखता रहता है। चकोर चंद्रमा को अपनी आंखों से हटाता नहीं है। जब चंद्रमा नहीं दिखता तो वह आग को चंद्रमा मानकर उसको चुगने लगता है, क्योंकि उसका मन सदैव चंद्रमा में ही रहता है। चंद्रमा आकाश में जिस तरफ घूमता है, चकोर उसी तरफ अपना मुंह घुमाकर उसे देखता रहता है। जब चंद्रमा छिप जाता है तब चकोर उसे आग में खोजता है। भंवरा कमल फूल में मस्त हो जाता है। उसी में उसकी जान भले जाय, परन्तु भंवर कमल फूल नहीं छोड़ता। पतिंगे दीपक की ज्योति में अपने प्राण खो देते हैं। चोर पराये धन को चुराने के लिए अपने प्राण न्योछावर करता है। पलटू साहेब कहते हैं कि उक्त उदाहरणों को सामने रख कर स्वरूपस्थिति में अखंड प्रेम करना चाहिए। रात-दिन साक्षीभाव में रहकर आत्मलीन रहना चाहिए।

विशेष—चन्द्र-चकोर, भ्रमर-कमल फूल, पतिंगे-ज्योति तथा चोर पर-धन आदि का उदाहरण देकर ग्रंथकार कहते हैं कि जब ये सब जीव अनर्थ में अपने जीवन को समर्पित कर देते हैं, तब कल्याणार्थी अपने कल्याण के लिए मन, वाणी, कर्म से क्यों न समर्पित हो ! अखंड अनुराग के बिना कोई काम ठीक से नहीं होता। जन्म-जन्म का दुख मिटाकर शाश्वत शांति प्राप्ति के लिए साधक को प्राणपण से डट जाना चाहिए।

कुंडलिया-59

अम्मा मेरा दिल लगा मुझ से रहा न जाय॥
मुझ से रहा न जाय बिना साहिब को देखे।
जान तसद्दुक करौं लगै साहिब के लेखे॥
मुझको भया है रोग जायगा जीव हमारा।
एकर दारू यही मिलै जो प्रीतम प्यारा॥
पड़ा प्रेम जंजाल जिकिर सीने में लागी।
मैं गिरि परी बेहोस लोक की लज्जा भागी॥
पलटू सतगुरु बैद बिन कौन सकै समझाय।
अम्मा मेरा दिल लगा मुझ से रहा न जाय॥

शब्दार्थ—अम्मा= माता, आत्मस्थिति। साहिब= श्रेष्ठ, आत्मा। तसद्दुक = न्योछावर। एकर= इसका। दारू= दवा, औषध। जिकिर= जिक्र, आत्मस्मरण। वैद= वैद्य।

भावार्थ—मनोवृत्ति आत्मस्थिति से कहती है कि हे माता! मेरा मन आत्मा-पति में लग गया है। मुझे उनके बिना रहना कठिन है। बिना आत्मसाक्षात्कार के अब मैं चैन से नहीं रह सकती। आत्मसाक्षात्कार होने पर मैं अपनी जान उनको समर्पित कर दूंगी। मुझको विरह की व्याधि हो गयी है। इसी में मेरा जीवन जायगा। इस व्याधि से छूटने के लिए एक ही दवा है कि मेरा प्रियतम प्यारा आत्मा मुझे मिल जाय। अब मेरे दिल में प्रेम का जंजाल पड़ गया है और मेरे दिल में निरंतर आत्मचिंतन की धारा लगी है। मैं उसी नशे में अचेत होकर संसार से छूटकर गिर पड़ी हूं। अब मेरी लोक की लज्जा भाग गयी है। पलटू साहेब कहते हैं कि सद्गुरु वैद्य के बिना मेरी चिकित्सा कौन कर सकेगा? मुझे कौन बोध देगा? हे स्वरूपस्थिति रूपी अम्मा! मेरा दिल प्रियतम आत्मदेव में लगा है। उनके बिना मुझसे रहा नहीं जाता है।

विशेष—संत पलटू साहेब का पूरा काव्य व्याकरण और पिंगल की कसौटी में भले न खरा हो, परंतु उनकी काव्यशक्ति का लोहा सबको मानना पड़ेगा। वे कैसी गूढ़ बात को सरल लौकिक रूपकों में स्पष्ट व्यक्त कर देते हैं, यह स्पष्ट है। ऊपर आत्मलीनता की मस्तानगी का वर्णन है।

कुंडलिया-60

सीस उतारै हाथ से सहज आसिकी नाहिं॥
सहज आसिकी नाहिं खाँड़ खाने को नाहीं।
झूठ आसिकी करै मुलुक में जूती खाही॥
जीते जो मरि जाय करै ना तन की आसा।
आसिक को दिन रात रहै सूली पर बासा॥
मान बड़ाई खोय नींद भर नाहीं सोना।
तिल भर रक्त न मांस नहीं आसिक को रोना॥
पलटू बड़े बेकूफ वे आसिक होने जाहिं।
सीस उतारै हाथ से सहज आसिकी नाहिं॥

शब्दार्थ—आसिकी=आशिक़ी, प्रेम। खांड़=खाड़, शकर, मीठा। आसिक=आशिक़, प्रेमी।

भावार्थ—आत्म-प्रेम सहज नहीं होता, अपितु अपने हाथ से अपना सिर उतारकर सद्गुरु के चरणों में रख देना होता है। यह मीठा खाना नहीं है कि गप से मुख में डाल लिया। जो मनुष्य साधुता से झूठा प्रेम करेगा वह संसार

में जूते खायेगा। आत्मसाक्षात्कार के लिए प्रेम करना है जीते जी मर जाना, शरीर की आशा छोड़ देना। आत्मसाक्षात्कार के प्रेमी का निवास सदैव संयम की शूली पर होता है। वह मन को संसार से दूर रखकर उसे कसे रहता है। वह मान-बड़ाई को खो देता है। वह एक क्षण भी असावधान नहीं होता। वह अपने शरीर के मोह में नहीं रहता। सच्चा आशिक रोता नहीं। वह कभी चिंतित नहीं होता, अपितु सदैव प्रसन्न रहता है। पलटू साहेब कहते हैं कि वे बड़े बेवकूफ हैं जो ऊपरी मन से आत्मकल्याण के प्रेमी बनने जाते हैं। यह तो अपना सिर अपने हाथों से उतारकर जमीन पर रख देना है। प्रेमी होना सहज नहीं है।

कुंडलिया-61

भूली जग की चाल सब भई जोगिनि अलमस्त॥
भई जोगिनि अलमस्त खबर कछु तन की नाहीं।
खाय पियै अब कौन रहै मन भजनै माहीं॥
ऐसी लागी नेह तुरिया से भई अतीता।
आठ पहर गलतान जोति के घर को जीता॥
ह्वै गई दसा अरूढ़ ज्ञान तजि भई बिज्ञानी।
धरती नभ जरि गई जरा है पवन औ पानी॥
पलटू दिनकर उदय भा रजनी भै गई अस्त।
भूली जग की चाल सब भई जोगिनि अलमस्त॥

शब्दार्थ—अलमस्त= नशे में चूर। गलतान= लीन।

भावार्थ—मेरी मनोवृत्ति सभी सांसारिक चाल भूल गयी और वैराग्य के नशा में चूर होकर योगिनि हो गयी। अब यह शरीर की भी खबर नहीं रखती है। अब खाने-पीने के चक्कर में कौन पड़े ! मन सदैव आत्म-चिंतन में रहता है। मन ऐसा अंतर्मुख हुआ कि तुरिया से भी ऊपर उठ गया। कल्पित ज्योति को जीतकर आठों पहर आत्मा में लीन रहता है। मन की स्वरूपस्थिति में आरूढ़ दशा हो गयी और लौकिक ज्ञान से उठकर विज्ञान दशा में पहुंच गया। अब पृथ्वी, आकाश, वायु, जल आदि सारा जड़ जगत जलकर खाक हो गया है। जड़ प्रकृति से मन ऊपर उठ गया। पलटू साहेब कहते हैं कि अविद्या की रात समाप्त हो गयी और आत्मज्ञान का सूर्य उदय हो गया। मेरी मनोवृत्ति जगत की चाल भूलकर अलमस्त योगिनि हो गयी।

विशेष—समाधिलीन ज्ञानी को भी खाना-पीना पड़ता है, परन्तु वह उसमें आसक्त नहीं होता।

कुंडलिया-62

फनि से मनि जो बीछुरै जल से बिछुरै मीन॥
जल से बिछुरै मीन प्रान को तुरत गँवावै।
रहे न कोटि उपाय दूध के भीतर नावै॥
ऐसी करै जो प्रीति ताहि की प्रीति सराही।
बिछुरै पर नर जियै प्रीति वाहू की नाहीं॥
पटकि पटकि तन रहै बिछोहा सहा न जाई।
नैन ओट जब भये प्रान को संग पठाई॥
पलटू हरि से बीछुरे ये ना जीवैं तीन।
फनि से मनि जो बीछुरै जल से बिछुरै मीन॥

शब्दार्थ—फनि= सर्प। मनि= मणि।

भावार्थ—यदि सांप से उसकी मणि बिछुड़ जाय और पानी से मछली बिछुड़ जाय तो सांप और मछली तुरंत प्राण त्याग देते हैं। मछली को करोड़ों उपाय करके, दूध में भी डाल करके जीवित नहीं रख सकते। इसी प्रकार साधक अपनी स्वरूपस्थिति दशा से बिछुड़कर जब न रह सके तब उसका आत्मस्थिति का प्रेम पक्का माना जायगा। यदि प्रियतम के बिछुड़ने पर प्रेमी जीवित रहे तो उसका प्रेम कच्चा है। प्रियतम के बिछुड़ने पर शरीर तड़फड़ाने लगे और प्रियतम का बिछुड़न सहना असंभव हो जाय। प्रियतम के ओझल होने पर प्रेमी मर जाय, तब सच्चा प्रेम है। पलटू साहेब कहते हैं कि आत्मा रूपी परमात्मा के विस्मरण में न साधक जीवित रहता है, मणि से बिछुड़ने पर न सांप जीवित रहता है और पानी से बिछुड़ने पर न मछली जीवित रहती है।

विशेष—सांप की मणि नहीं होती है। यह केवल कहावत है और बात समझाने के लिए इसका उदाहरण दिया जाता है। पानी से बिछुड़कर मछली मर जाती है, यह प्रत्यक्ष है। यहां ग्रंथकार का जोर है साधक पर। वह सच्चा साधक है जो आत्मस्थिति एवं शांति का वियोग न सह सके। तात्पर्य है कि सच्चा साधक सदैव शांति में रहता है।

कुंडलिया-63

प्रेम बान जाके लगा सो जानैगा पीर॥
सो जानैगा पीर काह मूरख से कहिये।
तिल भरि लगै न ज्ञान ताहि से चुप भै रहिये॥
लाख कहै समुझाय बचन मूरख नहिं मानै।
तासे कहा बसाय ठान जो अपनी ठानै॥
जोहि के जगत पियार ताहि से भक्ति न आवै।
सतसंगति से बिमुख और के सन्मुख धावै॥
जिन कर हिया कठोर है पलटू धसै न तीर।
प्रेम बान जाके लगा सो जानैगा पीर॥

शब्दार्थ—बसाय= शक्ति चलना। हिया= हृदय।

भावार्थ—आत्मलीनता का प्रेम-बाण जिसके हृदय में लगता है, वही इसे समझ सकता है। इस विषय को मूर्ख मनुष्य से कहकर क्या होगा? जिसके दिल में तिल भर भी ज्ञान का प्रभाव नहीं पड़ता है, उससे तो चुप ही होकर रहना चाहिए। लाख प्रकार से समझाकर कहने पर भी ज्ञान की बात मूर्ख नहीं स्वीकारता। जो मोह का हठ पकड़ रखा है उससे अपना क्या वश चलेगा? जिसको संसार के रागरंग प्रिय हैं उसके मन में भक्ति का प्रवेश नहीं हो सकता। वह सत्संग से दूर रहता है और प्रपंच की तरफ दौड़ता है। पलटू साहेब कहते हैं कि जिसका हृदय विषय-वासना तथा अहंकार से कठोर है उसको आत्मज्ञान का तीर नहीं बेध सकता। जिसको आध्यात्मिक उन्नति का प्रेम जगता है, वही इसका मर्म समझ सकता है।

कुंडलिया-64

अपने पिया की सुंदरी लोग कहै बौरान॥
लोग कहैं बौरान काहि की पकरौं बानी।
घर घर घोर मथान फिरौं मैं नाम दिवानी॥
घूँघट डारेउ खोलि ज्ञान कै ढोल बजाई।
चढ़िउँ बाँस पर धाइ सहर के बिचै गड़ाई।
देखि देखि सब चिढ़ैं लोग मैं अधिक चिढ़ावौं।
लगी गुरु से डोरि मगन ह्वै ताहि रिझावौं॥

पलटू हमरे देस की जानैं संत सुजान।
अपने पिय की सुंदरी लोग कहैं बौरान॥

शब्दार्थ—पिया= पति, प्रियतम आत्मा। मथान= चर्चा। हमरे देस= आत्मदेश।

भावार्थ—मेरी मनोवृत्ति अपने प्रियतम आत्मा-पति की सुंदरी पत्नी है और वह आत्मलीनता में मग्न है। लोग कहते हैं कि यह पागलपन है। मैं किसकी जीभ पकड़ूं कि वे ऐसा न कहें। मेरे विषय में घर-घर घोर चर्चा हो रही है, परन्तु मेरी मनोवृत्ति आत्मलीनता में दीवानी है। मैंने अविद्या का घूंघट फाड़ फेंका है और आत्मज्ञान का ढोल बजाकर उस का गीत गाता हूं। शहर के बीच में बांस गड़वाकर और उस पर चढ़कर मैं ढिंढोरा पीटकर ज्ञान-भक्ति का प्रचार करता हूं। लोग मेरे इस व्यवहार को देख-देख कर चिढ़ते हैं, तो मैं अपने ज्ञान का जोर से प्रचार कर उन्हें और अधिक चिढ़ाता हूं। मेरी प्रेम की डोरी सद्गुरु से लगी है। मैं उत्साहित और आत्ममग्न होकर सद्गुरु को प्रसन्न करता हूं। पलटू साहेब कहते हैं कि हमारे आत्मदेश की उच्च स्थिति की बात कोई ज्ञानी संत समझेगा। मेरी मनोवृत्ति अपने आत्मपति की प्रियतमा है। वह आत्मलीनता में मतवाली है। लोग कहते हैं कि यह पागलपन है।

विशेष—प्रत्यक्ष भोग को छोड़कर योग में लगने वालों को अनभिज्ञ लोग पागल समझते हैं। पलटू साहेब अयोध्या शहर में ढिंढोरा पीटकर अपना ज्ञान फैलाते रहे।

कुंडलिया-65

सतगुरु सब्द के सुनत ही तन की सुधि रहि जात॥
तन की सुधि रहि जात जाय मन अंतै अटका।
बिसरी भूख पियास किया सतगुरु ने टोटका॥
दतुइन करी न जाय नहीं अब जाय नहाई।
बैठा उठा न जाय फिरी अब नाम दुहाई॥
कौन बनावै भेष कौन अब टोपी देवै।
बिसरा माला तिलक कौन अब दर्पन लेवै॥
पलटू झुका है आपु को मुख से भूली बात।
सतगुरु सब्द के सुनत ही तन की सुधि रहि जात॥

शब्दार्थ—अंतै= अलग। टोटका= जादू। दुहाई= महिमा।

भावार्थ—सद्गुरु के ज्ञान-वैराग्य प्रेरक शब्द सुनते ही अपने शरीर का स्मरण होता है कि मैं क्या कर रहा हूं। फिर दुनियादारी को छोड़कर अलग आत्मचिंतन में लग गया। भूख-प्यास भूल गयी। सद्गुरु ने मेरे ऊपर ऐसा जादू चलाया कि न मुझसे दातौन किया जाता है, न नहाया जाता है, न बैठा-उठा जाता है। अब तो आत्मज्ञान का महत्त्व जीवन पर छा गया। अब कौन साधु वेष बनावे, कौन टोपी लगावे। माला पहनना तथा तिलक लगाना भूल गया। अब दर्पण लेकर कौन तिलक ठीक करे। पलटू साहेब कहते हैं कि मैं अपने आप में मुड़ गया। अब मुख से बाहरी बात करना भी भूल गया। सद्गुरु के निर्णय शब्द सुनते ही अपने जीवन के कर्तव्य पर ध्यान गया।

विशेष—दातौन करना, स्नान करना, भोजन करना, अपनी भेष-भूषा ठीक रखना आत्मज्ञान तथा आत्मलीनता में बाधक नहीं है। ग्रंथकार के कथन का सार है कि ये सब गौण हो जाते हैं। आत्मलीनता का अनुराग जीवन की रहनी बन जाता है, शेष बातें साधारण हो जाती हैं।

कुंडलिया-66

की तौ इक ठौरै रहै की दुइ में इक मरि जाय॥
दुई में इक मरि जाय रहत है दुबिधा लागी।
सुचित नहीं दिन रात उठत बिरहा की आगी॥
तुम जीवो भगवान मरन है मेरो नीका।
तुम बिन जीवन धिक्क लगै कारिख को टीका॥
की तुम आवो इहाँ लेव की प्रान अपाना।
दोऊ को दुख होय हँस जोड़ी अलगाना॥
कह पलटू स्वामी सुनो चिन्ता सही न जाय।
की तौ इक ठौरै रहै की दुइ में इक मरि जाय॥

शब्दार्थ—सुचित= सावधान, स्थिर चित्त, चैन।

भावार्थ—या तो दोनों एक जगह रहें या दोनों में से एक मर जाय, तब आनंद है। दो तरफ मन रहने से दिल में दुविधा रहती है। चैन से न रात बीतती है और न दिन बीतता है, अपितु बिछुड़न को लेकर विरह की आग जलाती है। हे परमात्मा ! तुम ही जीयो, मेरा ही मरना अच्छा है। तुम्हारे बिना जीवन को धिक्कार है और अपने माथे पर कालिख का टीका लगाना है। हे परमात्मा ! तुम या तो मेरे पास आ जाओ अथवा मेरा अपना प्राण ले लो।

हंस की जोड़ी का बिलगाव हो जाने से दोनों को दुख होता है। पलटू साहेब कहते हैं कि हे स्वामी ! मेरी चिंता की बात सुनो। वह मुझसे सहा नहीं जा रहा है। या तो हम दोनों एक जगह रहें अथवा दोनों में से एक मर जाय।

विशेष—आत्मा से अलग परमात्मा की कल्पना करने से दुख के अलावा कुछ नहीं है। पलटू साहेब का परमात्मा आत्मा ही है जहां द्वैत नहीं रहता। इस बात का स्पष्टीकरण उनकी वाणी में पर्याप्त है। यहां आत्मा-परमात्मा की पृथकता की कल्पना को लेकर उनका मार्मिक कथन है। स्व और पर का द्वंद्व दुखद है। पर के मर जाने पर साधक स्व में विश्राम पाता है। पर है प्रत्यक्ष और परोक्ष जो इन्द्रियों और मन का विषय है; और स्व है आत्म-अस्तित्व, जिसमें स्थिति परम विश्राम है।

दूसरे ढंग से कहें तो नकली स्व है देहाभिमान। इसके मर जाने पर असली स्व आत्मा का अनुभव होता है। अंततः साधक यह ध्यान रखे कि परोक्ष परमात्मा मन की कल्पना है। उसे त्यागकर ही आत्मा रूपी परमात्मा में परम विश्राम मिलता है।

कुंडलिया-67

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं॥
खाला का घर नाहिं सीस जब धरै उतारी।
हाथ पाँव कटि जाय करै न संत करारी॥
ज्यों ज्यों लागै घाव तेहूँ तेहुँ कदम चलावै।
सूरा रन पर जाय बहुरि ना जियता आवै॥
पलटू ऐसे घर मँहैं बड़े मरद जे जाहिं।
यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं॥

शब्दार्थ—खाला= ख़ाला, माता की बहिन, मौसी। करारी= ठहराव, रुकना।

भावार्थ—अंतर्मुखता एवं आत्मलीनता आत्मानुराग की दशा है। यह मौसी का घर नहीं है जहां खाना-पीना और वाक-विलास चलता है। अंतर्मुख होने का रास्ता तो है अपने सिर को उतारकर जमीन पर रख देना—अपना पूरा देहाभिमान मिटा देना। हाथ-पांव कट जाने पर भी संत रुकते नहीं हैं। अर्थात सब प्रकार की प्रतिकूलता सहकर भी अंतर्मुखता की साधना करते हैं।

रण में शूरवीर के शरीर में जैसे-जैसे घाव लगता है, वैसे-वैसे वह युद्ध में आगे पैर बढ़ाता है। शूरवीर जब रणक्षेत्र में जाता है तब वह या तो शत्रु को मारता है या स्वयं मारा जाता है। वह हारकर जीवित नहीं लौटता। इसी प्रकार शूरवीर साधक असंख्य विघ्न-बाधा सहकर अंतर्मुखता की साधना करता है। पलटू साहेब कहते हैं कि आत्मशांति एवं स्वरूपस्थिति-घर में बड़े शूरवीर ही जाते हैं। इस स्वरूपस्थिति-घर में पहुंचकर निरंतर निवास करना अटूट आत्मप्रेम का परिणाम है। यह गम्मत करने का स्थान मौसी का घर नहीं है।

विशेष—सारा अपमान, अनादर, गाली, निन्दा और सब प्रकार की प्रतिकूलता निर्विकार भाव से सह लेने वाला ही अंतर्मुखता के शाश्वत भवन में ठहर सकता है। आध्यात्मिक साधना तथा उसके लक्ष्य की प्राप्ति हंसी-मजाक की चीज नहीं है। सद्गुरु की साखी प्रसिद्ध है—

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
शीश उतारै भुइं धरै, सो पैठे घर माहिं॥

कुंडलिया-68

आसिक का घर दूर है पहुँचै बिरला कोय॥
पहुँचै बिरला कोय होय जो पूरा जोगी।
बिंद करै जो छार नाद के घर में भोगी॥
जीते जी मरि जाय मुए पर फिर उठि जागै।
ऐसा जो कोइ होइ सोई इन बातन लागै॥
पूरजे पुरजे उड़ै अन्न बिनु बस्तर पानी।
ऐसे पर ठहराय सोई महबूब बखानी॥
पलटू आपु लुटावही काला मुँह जब होय।
आसिक का घर दूर है पहुँचै बिरला कोय॥

शब्दार्थ—आसिक= आशिक़, प्रेमी। बिंद= वीर्य, तात्पर्य में कामवासना। नाद= शब्द, ज्ञान एवं निर्णय शब्द, आत्मज्ञानपरक शब्द। महबूब= प्रिय पात्र, प्यारा।

भावार्थ—साधक आशिक़ है, प्रेमी है। उसका महबूब एवं प्रियतम स्वरूपविश्राम है। वह दूर है—समस्त विषयासक्ति से बहुत दूर है। जो सारी विषयासक्ति से सर्वथा पार हो जाता है, वह उसे पाता है। इसलिए उसे कोई

बिरला पाता है। जो पूरा योगी होता है, जो अपने को सभी अशुभ-शुभ से समेट लेता है, वह अपने प्रियतम के घर-स्वरूपस्थिति में पहुंचता है। जो काम-वासना-क्रिया से सर्वथा पार हो जाता है और स्वरूपज्ञानपरक निर्णय वचनों का अभ्यासी होता है। शरीर में रहते हुए शरीर के मोह से सर्वथा मुक्त होता है—जीते जी मर जाता है और अपने आप में पूर्ण जागता रहता है, जो ऐसा करने वाला कोई हो, वह इन बातों में लगे। नाना प्रकार की प्रतिकूलताओं को निर्विकार भाव से सह सके, भोजन, पानी तथा वस्त्र के अभाव को सहर्ष सह सकता हो, ऐसी कठिन स्थिति में रहकर भी जो अपनी शांति स्थिति में अविचल भाव से ठहरा रहे, वही प्रियतम स्थिति—स्वरूपस्थिति पाने योग्य कहा गया है। जब मनुष्य अपने आप की स्थिति एवं पवित्र रहनी को खो देता है, तब उसका मुंह काला हो जाता है, जीवन बरबाद हो जाता है। इस प्रकार प्रेमी का घर, प्रियतम आत्मलीनता की दशा सारी मोह-माया से दूर है। जो सब मोह-माया छोड़ देता है वह वहां पहुंचता है, उस स्थिति में ठहरता है।

विशेष—शुभ-अशुभ सारे दृश्यों के मोह से पूर्ण पार पहुंचा साधक अपने आप में शाश्वत विश्राम पाता है।

कुंडलिया-69

जहाँ तनिक जल बीछुड़ै छोड़ि देतु है प्रान॥
छोड़ि देतु है प्रान जहाँ जल से बिलगावै।
देइ दूध में डारि रहै ना प्रान गवाँवै॥
जा को वही अहार ताहि को का लै दीजै।
रहै ना कोटि उपाय और सुख नाना कीजै॥
यह लीजै दृष्टान्त सकै सो लेइ बिचारी।
ऐसो करै सनेह ताहि की मैं बलिहारी॥
पलटू ऐसी प्रीति करु जल और मीन समान।
जहाँ तनिक जल बीछुड़ै छोड़ि देतु है प्रान॥

शब्दार्थ—तनिक= थोड़ा। बिलगावै= अलग हो।

भावार्थ—मछली पानी से थोड़ा ही बिछुड़न होते प्राण त्याग देती है। जल से बिछुड़ी मछली को भले दूध में डाल दो, वह जीवित नहीं रह सकती, प्राण खो देगी। जिसका जो भोजन है उसके अलावा उसे क्या देकर जिलाया

जा सकता है? करोड़ों उपाय करके तथा नाना सुख देकर भी उसे जीवित नहीं रखा जा सकता है। जो मीन-जल के दृष्टान्त से विचार कर सके और इसी के अनुसार आत्मलीनता में प्रेम करे, और उसके बिना क्षण भर न रह सके, मैं उसके चरणों में अपने को न्योछावर करता हूं। पलटू साहेब कहते हैं कि हे साधको ! जैसे जल के बिना मछली नहीं रह सकती, वैसे तुम शाश्वत शांति के बिना न रह सको। ऐसा अखंड प्रेम स्वरूपस्थिति से करो। मछली पानी से बिछुड़ते ही प्राण त्याग देती है। तुम भी आत्म-शांति के बिना एक क्षण भी न रहो। सब समय आत्मलीन रहो।

कुंडलिया-70

जो मैं हारौं राम की जो जीतौं तौ राम॥
जो जीतौं तौ राम राम से तन मन लावौं।
खेलौं ऐसो खेल लोक की लाज बहावौं॥
पासा फेंकौं ज्ञान नरद बिस्वास चलावौं।
चौरासी घर फिरै अड़ी पौबारह नावौं॥
पौबारह सिरवाय एक घर भीतर राखौं॥
कच्ची मारौं पाँच रैनि दिन सत्रह भाखौं॥
पलटू बाजी लाइहौं दोऊ बिधि से राम।
जौ मैं हारौं राम की जौ जीतौं तौ राम॥

शब्दार्थ—नरद= नर्द, चौसर या शतरंज आदि की गोटी, मोहरा; एक प्रकार का खेल। अड़ी= आवश्यक समय। पौबारह= जीत। पाँच= काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा भय। सत्रह= पांच ज्ञानेन्द्रियां—आंख, नाक, कान, जीभ और चाम; पांच कर्मेन्द्रियां—हाथ, पैर, मुख, गुदा और शिश्न; पांच विषय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध; दो—मन और बुद्धि—ये सत्रह। बाजी = दावं।

भावार्थ—यदि मैं अहंता-ममता को हार जाऊं, उन्हें सर्वथा खो दूं, तो राम में विश्राम हो जाय, और यदि मैं मन-इन्द्रियों को जीत लूं, तो राम में विश्राम मिल जाय। मैं सब विधि से अपने तन-मन राम में ही लगाऊंगा। मैं ऐसी खुलकर साधना करूंगा जिसमें लोकलज्जा सर्वथा खो दूंगा। मैं आत्मज्ञान का पासा फेंकता हूं और विश्वास की गोटी चलाता हूं। मैं इस उत्तम समय में ऐसा खेल खेलता हूं कि चौरासी चक्कर—अनात्म-घर से

लौटकर अपने आत्मस्थिति के घर में आ जाऊं। आत्मविजय की सीमा है भीतर अद्वितीय स्वरूपस्थिति में ठहर जाना। मैं उसी में स्थित हूं। काम, क्रोध, लोभ, मोह और भय ये जो पांच कच्चे सौदा हैं, इन्हें मारकर, रात-दिन सत्रह पर विजय की बात कहता हूं—पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच विषय और मन-बद्धि पर विजय करने का काम और भाषण करता हूं। पलटू साहेब कहते हैं कि मैं हार या जीत, दोनों में अपने लाभ में रहूंगा। यदि मैं हारता हूं तो अहंता-ममता खोता हूं और जीतता हूं तो मन-इन्द्रियों को। दोनों में मुझे आत्माराम में विश्राम मिलता है।

7. विश्वास की कसौटी

कुंडलिया-71

लगन महूरत झूठ सब और बिगाड़ै काम॥
और बिगाड़ै काम साइत जनि सोधै कोई।
एक भरोसा नाहिं कुसल कहवाँ से होई॥
जेकर हाथै कुसल ताहि को दिया बिसारी।
आपन इक चतुराई बीच में करै अनारी॥
तिनका टूटै नाहिं बिना सतगुरु की दाया।
अजहूँ चेत गँवार जगत है झूठी काया॥
पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी याद पड़ै जब नाम।
लगन महूरत झूठ सब और बिगाड़ै काम॥

शब्दार्थ—साइत=शुभ दिन, काम की शुरुआत। एक भरोसा=कर्म सिद्धान्त, अपने शुभ कर्म पर विश्वास।

भावार्थ—लग्न-मुहूर्त की बात झूठी है। इनके चक्कर में पड़ने से अपना काम अधिक बिगड़ता है। इसलिए हे लोगो ! तुम शुभ मुहूर्त शोधने-शोधवाने के चक्कर में मत पड़ो। जो अपने कर्म-सिद्धान्त का भरोसा नहीं करता है उसका कल्याण कैसे होगा? अपना कुशल-मंगल अपने शुभ कर्मों के हाथ में है; मनुष्य ने उसको भुला दिया। मूर्ख मनुष्य बीच में अपनी चतुराई करता है लग्न-मुहूर्त शोधने-शोधवाने की। सद्गुरु के कृपास्वरूप यथार्थ ज्ञान हुए बिना तृण मात्र का बंधन नहीं टूट सकता। हे भोले ! आज भी सावधान हो जा। ये संसार-शरीर झूठे हैं। लग्न-मुहूर्त झूठे हैं। इनका विचार करने पर काम अधिक बिगड़ता है।

कुंडलिया-72

मोर राम मैं राम का तासे रहौं निसंक॥
तासे रहौं निसंक तनिक मोर बार ना बाँकै।
जो कोई मानै बैर हारि के आपुइ थाकै॥
दोऊ बिधि से राम भार उनके सिर दीन्हा।
मो पर परै जो गाढ़ राम आपुइ पर लीन्हा॥
राम भरोसा पाय डेरौं काहू से नाहीं।
फूल में है ज्यों बास राम हैं हमहीं माहीं॥
पलटू सब में राम है क्या राजा क्या रंक।
मोर राम मैं राम का तासे रहौं निसंक॥

शब्दार्थ—निसंक= निर्भय। दोऊ विधि= स्वार्थ-परमार्थ। गाढ़=कठिनाई।

भावार्थ—राम मेरा है, मैं राम का हूं; इसलिए मैं निर्भय हूं। मेरा कभी कोई थोड़ा भी बाल बांका नहीं कर सकता। यदि कोई मुझसे वैर मानता है, तो वह थोड़े दिनों में स्वयं थककर हार जाता है। स्वार्थ और परमार्थ दोनों की उन्नति के लिए मेरा बोझ राम पर ही है। यदि मेरे ऊपर कोई कठिनाई आती है तो उसे राम अपने ऊपर लेकर सम्हाल लेता है—आत्मविचार से वह दूर हो जाता है। मैं अपने आत्माराम पर विश्वास करता हूं, इसलिए कभी किसी से नहीं डरता हूं। जैसे फूल में उसकी सुगंध रहती है, वैसे राम मेरे आत्म अस्तित्व में है। पलटू साहेब कहते हैं कि राजा हो या दरिद्र, सब में राम रम रहा है। राम मेरा है और मैं राम का हूं इसलिए सब समय निर्भय होकर विचरता हूं।

विशेष—फूल में सुगंध उदाहरण मात्र है। वस्तुतः आत्मा ही राम है। जिसे अपने आत्माराम का पूर्ण ज्ञान और उसमें स्थिति है, वह सब समय सर्वत्र निर्भय है।

कुंडलिया-73

मगन आपने ख्याल में भाड़ परै संसार॥
भाड़ परै संसार नाहिं काहू से कामा।
मन बच करम लगाय जानिहौ केवल रामा॥
लोक लाज कुल त्यागि जगत की बूझ बड़ाई।
निन्दा कोउ कै जाय रहौ संतन सरनाई॥

छोड़ौ दिन दिन संग सुनौ ना बेद पुराना।
ठान आपनी ठानि आन न करिहौ काना॥
पलटू संसै छूटि गई मिलिया पूरा यार।
मगन आपने ख्याल में भाड़ परै संसार॥

शब्दार्थ—ठान= निश्चय। आन= अन्य बात।

भावार्थ—मैं अपने आप में लीन हूं, जगत के भोगैश्वर्य और मान-बड़ाई चूल्हे-भाड़ में जायं। मुझे जगत के संपति-स्वामित्व की आवश्यकता नहीं है। मैं मन, वचन और कर्मों को केवल आत्माराम के बोध में लगाकर उसी का अनुभव करना चाहता हूं। लोक की लज्जा, कुल की मर्यादा, सांसारिक चतुरता और मान-बड़ाई को त्यागकर मैं संतों की शरण में रहूंगा। कोई मेरी निन्दा कर ले, मुझे कोई परवाह नहीं है। मैं दिन-ब-दिन लोगों की संगत छोड़ता जाता हूं। वेद-पुराणों की दिखाऊ वाणियों को भी नहीं सुनता हूं। मैं अपनी आत्मलीनता की दृढ़ता में स्थिर हूं। दूसरी बातों पर कान भी नहीं देता हूं। पलटू साहेब कहते हैं कि मेरा सब संशय समाप्त हो गया है। मेरा प्रियतम प्यारा आत्माराम है, उसका बोध मिल गया है। मैं अपने आत्मा की स्थिति में डूबा हूं। संसार के भोग और मान-बड़ाई चूल्हे-भाड़ में जायं।

8. सत्संग का महत्त्व

कुंडलिया-74

जो कोउ चाहै अभय पद जाइ करै सतसंग॥
जाइ करै सतसंग प्रान बैराग उठावै।
स्रवन करै बेदान्त मनन करि मन समुझावै॥
तब साधै हठ योग बिपर्जय कौ घर पावै।
प्रान करै आयाम पुरुष तब नजरि में आवै॥
देखै अपनो रूप होय तब ज्ञान समाधी।
तब दे साधन छोड़ि लेइ जब पहिले साधी॥
पलटू खोवै आपु को तब लागैगा रंग।
जो कोउ चाहै अभय पद जाइ करै सतसंग॥

शब्दार्थ—बिपर्जय= आपा (अहंकार) को भूल जाना।

भावार्थ—जो मनुष्य निर्भय स्थिति चाहे, वह विवेकवान संतों की संगत में जाकर उनसे अपने संशयों का समाधान करावे। सत्संग के द्वारा सत्य-असत्य को समझकर अपनी प्राणशक्ति में वैराग्य को उत्तेजित करे। वेदों का अंतिम उपदेश आत्मज्ञान का विषय सुनकर और उसका मनन कर मन में स्वरूपज्ञान पक्का करे। इसके बाद हठयोग की साधना करे और देह का अहंकार भूलकर अपने आत्मस्वरूप घर में आ जाय। प्राणायाम भी करना हितकर है। स्वरूप-शोधन से स्वरूप का साक्षात्कार होता है। साधक जब अपने स्वरूप का साक्षात्कार कर लेता है तब उसका स्वरूपज्ञान ही समाधि बन जाता है। जब पहले साधना कर लिया, तब साधना छोड़ दे। पलटू साहेब कहते हैं कि जब साधक अपने अहंकार को पूर्णतया खो देता है, तब उसे निरंतर समाधि का रंग लगता है। अतएव जो कोई अभयपद चाहता है वह विवेकवान संतों का सत्संग करे।

विशेष—उपर्युक्त बातों में कहा गया है कि हठयोग भी करे, प्राणायाम करे। प्राणायाम स्वास्थ्य के लिए अच्छा है, परन्तु आध्यात्मिक उन्नति में उसका बड़ा महत्व नहीं है। हठयोग की तो बिलकुल आवश्यकता नहीं है। इसलिए शायद इन्हीं बातों को लेकर ग्रंथकार ने कहा है—"तब दे साधन छोड़ि।" खास बात है सत्संग से स्वरूपज्ञान पाकर स्वरूपशोधन, स्वरूपसाक्षात्कार और तब निरंतर साक्षी भाव तथा सहज समाधि में रहना। इन सबका परिणाम है "खोवै आपु को" सारा अहंकार खोकर शांत होना।

कुंडलिया-75

बैरागिन भूली आप में जल में खोजै राम॥
जल में खोजै राम जाय के तीरथ छानै।
भरमै चारिउ खूँट नहीं सुधि अपनी आनै॥
फूल माहिं ज्यों बास काठ में अगिन छिपानी।
खोदे बिनु नहिं मिलै अहै धरती में पानी॥
जैसे दूध घृत छिपा छिपी मिहँदी में लाली।
ऐसे पूरन ब्रह्म कहूँ तिल भरि नहीं खाली॥
पलटू सत्संग बीच में करि ले अपना काम।
बैरागिन भूलि आप में जल में खोजै राम॥

शब्दार्थ—बैरागिन= बैरागी नाम से कहे जाने वाले वैष्णव, तात्पर्य में अपने से भिन्न बाहर परमात्मा खोजने वाले सभी भक्त।

भावार्थ—वैरागी वैष्णव लोग अपने आप के टंट-घंट में उलझे हैं। वे सरयू आदि नदियों के जल में राम को खोजते हैं। वे भारत के अनेक तीर्थों को छानकर राम को पाना चाहते हैं। वे चारों दिशाओं में भटकते हैं, किन्तु अपने आत्मस्वरूप का स्मरण नहीं करते। देखो, फूल में सुगंध है। लकड़ी में आग है। धरती में पानी है, वह बिना खोदे नहीं मिलता। जैसे दूध में घी है और मेंहदी में लाली है, वैसे ब्रह्म सब में विद्यमान है। कहीं तिल भर खाली नहीं है। पलटू साहेब कहते हैं कि सत्संग में रहकर अपना कल्याण-काम कर लो, किन्तु वैरागी लोग तो स्वयं को भूलकर पानी में परमात्मा खोजते हैं।

विशेष—पलटू साहेब अंतर्मुख संत थे। उनके सामने अयोध्या के वैरागी थे और वे ही नहीं, संसार के अधिक साधक अपने आप को छोड़कर बाहर परमात्मा खोजते हैं। फूल में सुगंध, काठ में आग, धरती में जल, दूध में घी, मेंहदी में लाली आदि को छिपे बताकर ग्रंथकार कहते हैं कि वैसे ब्रह्म सब में पूर्ण है, उससे तिलभर खाली नहीं है। इसका सरल अर्थ है कि प्राणी के घट-घट में जो चेतन निवास करता है वही ब्रह्म है, महान है, ईश्वर, परमात्मा, खुदा और गॉड है। आत्मा को छोड़कर परमात्मा कहीं मिलने वाला नहीं है।

एक ब्रह्म सर्वत्र ठसाठस भरा है। यह भाव केवल भावुकता है। एक अखंड तत्त्व सर्वत्र व्याप्त होने से न दूसरा होगा और न क्रिया-स्फूर्णा और गति होगी। किन्तु संसार ही गति का स्वरूप है। अतएव गतानुगतिका तथा भावुकता में न पड़कर विवेक से सत्यता को समझना चाहिए। सरल अर्थ है कि परमात्मा पत्थर-पानी में नहीं है, किन्तु सभी प्राणी परमात्मा हैं। अतएव सबके साथ सुंदर बरताव करें और अपने आप में शांत हों।

कुंडलिया-76

मलया के परसंग से सीतल होवत साँप॥
सीतल होवत साँप ताप को तुरत बुझाई।
संगत के परभाव सीतलता वामें आई॥
मूरख ज्ञानी होय जाय ज्ञानी में बैठै।
फूल अलग का अलग बासना तिल में पैठै॥
कंचन लोहा होय जहाँ पारस छुइ जाई।
पनपै उकठा काठ जहाँ उन सरदी पाई॥

पलटू संगत किये से मिटते तीनिउँ ताप।
मलया के परसंग से सीतल होवत साँप॥

शब्दार्थ—मलया= मलय, एक सुगंधित शीतलप्रद पेड़, मलय चंदन। पनपै= पुनः पत्र-पल्लव दे। उकठा काठ= सूखा पेड़। तीनिउँ ताप= दैहिक, दैविक और भौतिक।

भावार्थ—मलयगिरि शीतल चंदन के पेड़ के स्पर्श से सर्प भी शीतल हो जाता है और उसकी गरमी तुरंत बुझ जाती है। संगत के प्रभाव से उसमें शीतलता आ जाती है। मूर्ख भी ज्ञानियों की संगत में बैठते-बैठते ज्ञानी हो जाता है। फूल का वास तिल के तेल में पड़ते ही वह सुगंधित हो जाता है जबकि फूल अलग का अलग ही रह जाता है। कहावत के अनुसार लोहा पारस पत्थर से छू जाने पर सोना हो जाता है। यदि कोई पेड़ सूख गया, किन्तु उसमें कुछ सार है तो पानी पाकर वह पुनः हरा-भरा हो जाता है। पलटू साहेब कहते हैं कि वैसे संत संगत करने से प्राणी के तीनों ताप मिट जाते हैं। जैसे मलयगिरि चंदन के स्पर्श से सांप की भी गरमी शांत हो जाती है।

कुंडलिया-77

पारस के परसंग से लोहा महँग बिकान॥
लोहा महँग बिकान छुए से कीमत निकरी।
चंदन के परसंग चंदन भई बन की लकरी॥
जैसे तिल का तेल फूल संग महँग बिकाई।
सतसंगति में पड़ा संत भा सदन कसाई॥
गंग में है सुभगंग मिली जो नारा सोती।
सीप बीच जो पड़े बूँद सो होवै मोती॥
पलटू हरि के नाम से गनिका चढ़ी बिमान।
पारस के परसंग से लोहा महँग बिकान॥

शब्दार्थ—परसंग= स्पर्श। गनिका= गणिका, वेश्या।

भावार्थ—पारस पत्थर से छू जाने पर लोहा सोना होकर महंगा बिकता है। इस प्रकार स्पर्श से उसका मूल्य बढ़ गया। चंदन के संसर्ग से वन के अन्य पेड़ भी चंदन हो गये। तिल का तेल फूलों की सुगंध पाकर महंगा बिकता है। सदन कसाई सत्संग पाकर संत हो गया। नालों और अन्य स्रोतों

का जल गंगा में मिलकर गंगा हो जाता है। जल की बूंद सीप में पड़कर मोती बन जाती है। पलटू साहेब कहते हैं कि हरि के नाम के प्रभाव से गणिका विमान पर बैठकर स्वर्ग चली गयी। इसी प्रकार सत्संग से गलत लोग भी सुधरते हैं।

विशेष—ऊपर कच्चे-पक्के उदाहरणों से एक ही बात कही गयी है कि सत्संग के प्रभाव से मलिन मनुष्य भी सुधरता है। पारस पत्थर और विमान पर बैठकर स्वर्ग में जाना काल्पनिक है। अच्छी संगत से अच्छा फल होता है, यह तथ्य है।

कुंडलिया-78

फिर फिर नहीं दिवारी दियना लीजै बार॥
दियना लीजै बार महल में ह्वै उँजियारा।
उदय होय ससि भान अमावस मिटै अँधियारा॥
ज्ञान होय परगास कुमति जूआ में हारै।
दुतिया खंडन करै एक को बैठि बिचारै॥
रचि रचि तीसौ सखी अभूषन प्रेम बनाई।
गोबरधन मन पूजि बहुरि सब घर को आई॥
पलटू सतसंगत मिला खेलि लेहु दिन चार।
फिर फिर नहीं दिवारी दियना लीजै बार॥

शब्दार्थ—परगास= प्रकाश। दुतिया= द्वैत भाव, अनात्म भाव। तीसों सखी= पांच विषय और पच्चीस प्रकृतियां।

भावार्थ—बारंबार दीवाली नहीं आती। शुभ अवसर मिला है, आत्मज्ञान का दीपक जला लो जिससे हृदय-भवन में प्रकाश हो जाय। भक्ति और ज्ञान के चंद्रमा और सूर्य हृदयाकाश में उदय हो, जिससे अमावस्या की अंधियारी अविद्या का तम नष्ट हो जाय। आत्मज्ञान का प्रकाश हो और ज्ञान के जुआ में कुबुद्धि को हार जाय—कुबुद्धि समाप्त हो जाय। समस्त द्वैत भाव अनात्म का त्याग करे और ध्यान में बैठकर केवल एक अपने आत्मा का विचार करे। पांच विषय अथवा पांच तत्त्व और पचीसों प्रकृति रूपी सखियों ने इस शरीर रूपी आभूषण को बनाया है, जो स्नेहास्पद हो गया है। ये सारी सखियां मन रूपी गोबर्धन की पूजा कर अपने घर में—अपने रूप में लौट आती हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि संतों का सत्संग मिला है। चार दिनों का अवसर मिला है।

इसमें आत्मज्ञान का जुआ खेल लो और सारे दुर्गुणों को हारकर उन्हें खो दो और आत्मज्ञान में स्थित हो जाओ। बारंबार मानव देह तथा सत्संग की दीवाली नहीं मिलने वाली है। अतएव आज सुनहले अवसर में आत्मज्ञान का दीपक जला लो।

कुंडलिया-79

जंगल जंगल मैं फिरौं घर में रहै सिकार॥
घर में रहै सिकार भेद न कोउ बतावै।
गया अहेरी भूलि कहाँ से सावज पावै॥
खोजा चारिउ खूँट कहीं कुछ नजर न आवै।
कतहूँ ना सुधि आइ नहीं कोउ भेद बतावै॥
जप तप तीरथ बरत किया बहु नेम अचारा।
खोजा बेद पुरान सबै सतसंग पुकारा॥
सतगुरु किया इसारा पलटू लीन्हा मार।
जंगल जंगल मैं फिरौं घर में रहै सिकार॥

शब्दार्थ—सिकार= लक्ष्य, उद्देश्य। अहेरी= शिकारी। सावज= शिकार-पशु। खूँट= दिशा।

भावार्थ—मैं अपना शिकार मारने के लिए वन-वन भटकता रहा, परंतु वह तो शरीर रूपी घर में है। यह रहस्य कोई नहीं बताता है कि तुम्हारा शिकार घर में ही है। भूलकर उसे बाहर खोजता है तो वहां शिकार कहां पावे? चारों दिशाओं में अपना शिकार खोजा, परंतु वह दिखाई नहीं दिया। कभी भी यह ख्याल नहीं आया कि अपना शिकार अपने शरीर में है। दूसरे ने भी यह भेद नहीं बताया। जप, तप, तीर्थ, व्रत, नियम, आचार आदि बहुत किया, वेदों-पुराणों में भी खोजा, अंततः सबने बताया कि विवेकवान संतों के सत्संग में इसका भेद मिलेगा। पलटू साहेब कहते हैं कि सत्संग में पहुंचने पर सद्गुरु ने संकेत दिया कि तुम्हारा शिकार तुम्हारे शरीर में है। फिर तो मैंने उसको मार लिया। मैं अज्ञानवश उसे जंगलों में खोजता रहा, परन्तु वह तो अपने हृदय-घर में ही रहा।

विशेष—यह शिकार जीवन का लक्ष्य है। जीवन का लक्ष्य आत्मशांति है। वह आत्मशोधन से ही संभव है। बाहर भटकने से नहीं।

कुंडलिया-80

बिन खाये चित चैन नहिं खाये आलस होय॥
खाये आलस होय कहो कैसी बिधि कीजै।
दोऊ बिधि से बिपति दोस काको हम दीजै॥
मन बैरी है बड़ा कहे में अपने नाहीं।
पुन्न में करता पाप पाप में पुन्न कराही॥
सुभ आसुभ के बीच पड़ा है जीव बिचारा।
दोऊ में वह मिला बात सब वही बिगारा॥
पलटू सतसंगत दोऊ छुटै करै जो कोय।
बिन खाये चित चैन नहिं खाये आलस होय॥

शब्दार्थ—विचारा= बेचारा, विवश।

भावार्थ—यदि भोजन न किया जाय तो मन में शांति नहीं मिलती और यदि भोजन किया जाय तो आलस्य उत्पन्न होता है। बताइए, अब क्या किया जाय ! दोनों प्रकार से मेरे ऊपर विपत्ति है। मैं किसको दोष दूं? मन मेरा बड़ा शत्रु है। वह मेरे कहने में नहीं रहता। यह पुण्य की आड़ में पाप करता है। और पाप में पुण्य भी करता है। इसी शुभ और अशुभ के बीच में जीव विवश होकर उलझा है। मन दोनों में मिला है। सारी बातें मन ने बिगाड़ी है। पलटू साहेब कहते हैं कि संतों के सत्संग में समझ-बूझकर चलने पर शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप दोनों छूट जाते हैं। बिना भोजन किये मन में शांति नहीं मिलती। और भोजन करने से आलस्य उत्पन्न होता है।

विशेष—भोजन न करने तथा करने की बात तो उदाहरण मात्र है। खास बात है मन बदमाश है, किन्तु इसी से अच्छे काम भी होते हैं। इसके बिना कुछ भी नहीं हो सकता। शुभ और अशुभ मन से होते हैं। जब मनुष्य सत्संग करता है, तब उसे आत्मबोध होता है। आत्मबोध हो जाने पर अशुभ कर्म छूट जाते हैं और आगे चलकर शुभ कर्म का मोह भी छूट जाता है। जिससे आत्मा को पूर्ण शांति मिलती है।

कुंडलिया-81

जो जो गा सतसंग में सो सो बिगरा जाय॥
सो सो बिगरा जाय फूल संग तेल बसाना।
ज्ञानी के संग परा ज्ञान मूरख ने जाना॥

पारस के परसंग बिगरि गा लोहा जाई।
लोहा से भा कनक आपनी जाति गँवाई॥
सलिता गइ है बिगरि मिली गंगा में जाई।
मलया के परसंग काठ चंदन कहवाई॥
पलटू काग से हंस भा और काग पछिताइ।
जो जो गा सत्संग में सो सो बिगरा जाइ॥

शब्दार्थ—सलिता= सरिता, नदी।

भावार्थ—जो-जो मनुष्य सत्संग में गया, वह-वह बिगड़ गया। देखो, प्रसिद्धि है कि फूल की सुगंध के साथ तेल बिगड़कर सुगंधित हो गया। ज्ञानी की संगत करके मूर्ख बिगड़कर ज्ञानी हो गया। पारस पत्थर के साथ लोहा बिगड़कर सोना हो गया। इस प्रकार उसने अपनी जाति बिगाड़ डाली। नदी तब बिगड़ गयी जब वह गंगा में मिल गयी। मलयगिरि चंदन के साथ अन्य पेड़ बिगड़कर चंदन हो गये। पलटू साहेब कहते हैं कि काग बदलकर हंस हो गया तो अन्य काग पश्चाताप कर रहे हैं कि यह हमारी गोल से निकल गया। इस प्रकार जो-जो मनुष्य सत्संग में गया वह-वह बिगड़ गया।

विशेष—यहां व्यंग्य में बनने एवं सुधरने को बिगड़ना कहा गया है।

कुंडलिया-82

पलटू मेरी बनि परी मुद्दा हुआ तमाम॥
मुद्दा हुआ तमाम परे सतसंगति माहीं।
निस दिन तौलै पूर घाट अब सपनेहु नाहीं॥
पूँजी पाई साच दिनों दिन होती बढ़ती।
सतगुरु के परताप भई है दौलत चढ़ती॥
कोठी दसवें द्वार सहज की खेप चलावो।
कोई न टोकनहार नफा घर बैठे पावो॥
दूनों पाँव पसारि कै निस दिन करो अराम।
पलटू मेरी बनि परी मुद्दा हुआ तमाम॥

शब्दार्थ—मुद्दा= मुद्दआ, उद्देश्य, अभिप्राय, प्रयोजन। तमाम= पूरा, संपूर्ण। घाट= कमी। दसवें द्वार= कपालकुहर, तात्पर्य में शून्य। सहज= आत्मशांति। खेप= भरा, भरी गाड़ी, तात्पर्य में पूर्ण शांति।

भावार्थ—पलटू साहेब कहते हैं कि मेरा कल्याण हो गया। मेरा उद्देश्य था आत्मशांति, वह काम पूरा हो गया। अब मैं सत्संग में आ गया हूं। अब सब दिन पूरा तौलता हूं, स्वप्न में भी कमी नहीं तौलता हूं—अब कभी असंतोष नहीं है, सब समय संतोष है। अब मैंने आत्मज्ञान का सच्चा धन पा लिया है। उसकी अब दिनोंदिन बढ़ोत्तरी हो रही है। सद्गुरु के उपदेश प्रताप से मेरी आत्मज्ञान की दौलत उन्नति करती जा रही है। अब शरीर महल के दसवें द्वार—शून्य स्थान पर सहज समाधि लगाता हूं। तात्पर्य है कि संकल्पों को शून्य कर सहज समाधि आत्मविश्राम में रह रहा हूं। कोई मुझे अपने साधना-मार्ग में अड़चन डालने वाला नहीं है। घर बैठे धन-लाभ हो रहा है। अब मैं दोनों पैर फैलाकर रात-दिन विश्राम करता हूं। पलटू साहेब कहते हैं कि मेरा काम बन गया है, मेरा उद्देश्य पूरा हो गया है।

विशेष—आत्मशांति जीवन का मुद्दा है, उद्देश्य है। सत्संग में आत्मज्ञान मिलता है और सत्संग में ही आत्मशोधन कर आत्मशांति मिल जाती है और जीवन का उद्देश्य पूर्ण हो जाता है।

कुंडलिया-83

सतगुरु सबको देत हैं लेता नाहीं कोय॥
लेता नाहीं कोय सीस को धरै उतारी।
वही सकस को मिलै मरै की करै तयारी॥
कड़ू बहुत सतनाम देखत कै डेरै सरीरा।
रोटी खावनहार खायगा क्योंकर हीरा॥
अंधा होवै नीक बैद का पथ जो खावै।
मलयागिर की बास बाँस में नहीं समावै॥
पलटू पारस क्या करै जो लोहा खोटा होय।
सतगुरु सबको देत हैं लेता नाहीं कोय॥

शब्दार्थ—सकस= शख्स, मनुष्य। वैद= वैद्य।

भावार्थ—सद्गुरु सबको आत्मज्ञान देना चाहते हैं, परन्तु कोई ले नहीं रहा है। आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए अपने सिर को उतारकर जमीन पर धर देना होता है। उसी मनुष्य का आत्मज्ञान चरितार्थ होता है जो मरने की तैयारी कर लेता है। आत्मबोध का परिचायक सतनाम-सत्यनिर्णय बड़ा कड़वा लगता है। उसको देखकर शरीर कांपने लगता है। रोटी खाने वाला हीरा क्यों

कर खायेगा—विषयभोगी मन आत्मज्ञान में कैसे ठहरेगा? यदि वैद्य की दी हुई औषध और पथ्य अंधा खायेगा तो उसकी आंखें ठीक हो जायेंगी, किन्तु मलयगिरि की सुगंधी बांस में नहीं समाती। पलटू साहेब कहते हैं कि यदि लोहा खोटा है तो पारस उसे सोना कैसे बना सकता है। सद्गुरु तो सबको उपदेश देते हैं, लेने वाला बिरला है।

विशेष—उपर्युक्त कुंडलिया में अपात्र मनुष्य का स्पष्टीकरण किया गया है।

9. शब्द, ध्यान और आत्मबोध

कुंडलिया-84

सबद छुड़ावै राज को सबदै करै फकीर॥
सबदै करै फकीर सबद फिर राम मिलावै।
जिनके लागा सबद तिन्हैं कछु और न भावै॥
मरै सबद की घाव उन्हें को सकै जियाई।
होइगा उनका काम परी रोवैं दुनियाई॥
घायल भा वह फिरै सबद कै चोट है भारी।
जियतै मिरतक होय झुकै फिर उठै संभारी॥
पलटू जिनके सबद का लगा कलेजे तीर।
सबद छुड़ावै राज को सबदै करै फकीर॥

शब्दार्थ—सबद= शब्द, आत्मज्ञान के वचन। फकीर= त्यागी।

भावार्थ—ज्ञान-वैराग्य के वचन सुनकर लोग राज-काज को छोड़कर त्यागी साधु हो जाते हैं। बोधदायक शब्द आत्माराम का बोध कराता है। जिनको आत्मज्ञान के शब्द लग जाते हैं उन्हें अन्य बातें अच्छी नहीं लगतीं। ज्ञान के शब्दों को सुनकर जो सांसारिकता से उदास हो गया है, उसे कौन मनुष्य मोह-माया में लगा सकता है? जिनकी अहंता-ममता मर गयी, उनका कल्याण हो गया। दुनिया के लोग उनके विषय में भला-बुरा कहते हैं, इससे उनको कोई अंतर नहीं पड़ता है। वह तो ज्ञान के शब्दों से घायल होकर घूमता है क्योंकि आत्मज्ञान की चोट गहरी होती है। आत्मलीन व्यक्ति जीते जी मर जाता है—सारी अहंता-ममता छोड़ देता है। वह झुकता है और उठकर सम्हलता है—संसार का उचित व्यवहार करते हुए

अपने आप में तृप्त रहता है। पलटू साहेब कहते हैं कि जिनके हृदय में आत्मज्ञान के शब्द का तीर लग गया है, वे दुनियादारी से विरक्त होकर फकीर हो जाते हैं।

कुंडलिया-85

सुरत सब्द के मिलन में मुझको भया अनंद॥
मुझको भया अनंद मिला पानी में पानी।
दोऊ से भा सूत नहीं मिलि कै अलगानी॥
मुलुक भया सलतन्त मिला हाकिम को राजा।
रैयत करै अराम खोलि के दस दरवाजा॥
छूटी सकल बियाधि मिटी इन्द्रिन की दुतिया।
को अब करै उपाधि चोर से मिलि गई कुतिया॥
पलटू सतगुरु साहिब काटौ मेरी बंद।
सुरत सब्द के मिलन में मुझको भया अनंद॥

शब्दार्थ—सुरत= मनोवृत्ति। शब्द= आत्मज्ञानपरक शब्द। सूत= सूद, लाभ। सलतन्त= सल्तनत, राज्य। सुभीता=आराम, आनन्द। रैयत= प्रजा, साधक। दस दरवाजा= दसवां द्वार, तालुमूल।

भावार्थ—मनोवृत्ति निर्णय शब्दों को पा गयी, इसलिए यथार्थ आत्मज्ञान हो गया और मुझको आनंद आ गया। जैसे पानी में पानी मिल जाय तो दोनों पानी के मिलने से लाभ हुआ। फिर वे कभी अलग नहीं होते। हृदय-देश में अपने आत्मज्ञान का राज्य हो जाने से शांति मिल गयी। मन-हाकिम को आत्म-राजा मिल गया—मन आत्माकार हो गया। साधक दसवां दरवाजा खोलकर-प्रपंचशून्य के ऊपर आत्मा में स्थित होकर विश्राम करने लगा। मन की सारी व्याधि छूट गयी। मन-इन्द्रियां जो आत्मा से अलग द्वैत भाव में लगती थीं, वह छूटकर केवल आत्मा में विश्राम मिल गया। अब प्रापंचिक टंट-घंट कौन करे? चोर से कुतिया मिल गयी तो चोरी करना सहज हो जाता है, परन्तु यहां व्यंग्य लगता है। तात्पर्य है कि मन चोर बना था, परंतु अब उसे सद्बुद्धि मिल गयी, तो उसकी विषय-वासना की चोरी छूट गयी। पलटू साहेब कहते हैं कि हे सद्गुरु साहेब! हमारे बंधनों को काटो। निर्णय वचनों को जब मनोवृत्ति पायी, तब मुझको आनंद आ गया।

कुंडलिया-86

जोग जुगत आसन नहीं साधन नहीं बिबेक॥
साधन नहीं बिबेक साधन सब कै कै छूटा।
लागी सहज समाधि शब्द ब्रह्माण्ड में फूटा॥
खंडन तनिक न होय तेलवत लागी धारा।
जोति निरंतर बरै दसों दिसि भा उजियारा॥
ज्ञान ध्यान सब छूटि छूटि संजम चतुराई।
तन की सुधि गइ बिसरि अरूढ़ अवस्था आई॥
पलटू मैं भजनै भया रही न दूजी रेख।
जोग जुगत आसन नहीं साधन नहीं बिबेक॥

शब्दार्थ—तेलवत= तेल की अखंड धारा के समान। आरूढ़= आत्म-स्थिति में स्थिरता।

भावार्थ—न योग, न युक्ति, न आसन, न साधन और न विवेक। यह तो कर-करके छूट चुका है। अब तो हर क्षण सहज समाधि लगी है। ब्रह्माण्ड में शब्द की धारा फूटी। तेल की धारा अखंड होती है, वैसे सहज समाधि एकरस हो गयी है, वह थोड़ी भी खंडित नहीं होती है। आत्मज्ञान की ज्योति हृदय में निरंतर जलती है जिसका प्रकाश दसों इन्द्रियों में फैलता है। इसलिए इन्द्रियों के व्यवहार पवित्र हो गये हैं। अब बाहरी ज्ञान, ध्यान, संयम, चतुरता आदि छूट गये। शरीर की सुध-बुध खो गयी। अब आत्मज्ञान की दृढ़ स्थिति हो गयी—निरंतर आत्माराम। पलटू साहेब कहते हैं कि मैं भजन स्वरूप हो गया। अब मन में मैल की रेखा नहीं रह गयी। अब योग, युक्ति, आसन, साधन और विवेक से ऊपर निरंतर आत्मलीनता की दशा है।

विशेष—सिर के तालुमूल में शब्द उठने की कल्पना पुरानी है। यह मन रोकने का एक कल्पित साधन है, साध्य नहीं। साध्य तो आत्मलीनता एवं स्वरूपस्थिति है। शब्द बड़ा नहीं, शब्द सुनने तथा उसका विश्लेषण करने वाला आत्मा बड़ा है।

कुंडलिया-87

कमठ दृष्टि जो लावई सो ध्यानी परमान॥
सो ध्यानी परमान सुरति से अंडा सेवै।
आप रहै जल माहिं सूखे में अंडा देवै॥

जस पनिहारी कलस भरे मारग में आवै।
कर छोड़े मुख बचन चित्त कलसा में लावै॥
फनि मनि धरै उतारि आपु चरने को जावै।
वह गाफिल ना परै सुरति मनि माहिं रहावै॥
पलटू सब कारज करै सुरति रहै अलगान।
कमठ दृष्टि जो लावई सो ध्यानी परमान॥

शब्दार्थ—कमठ= कच्छप, कछुआ। फनि= सर्प। मनि= मणि।

भावार्थ—वह ध्यान करने वाला प्रामाणिक ध्यानी है जो कच्छप की तरह अपना लक्ष्य रखता है। कहा जाता है कि कच्छप स्वयं जल में रहता है, परंतु अपने अंडे सूखी जगह में रखता है और अपनी सुरति से उसका सेवन करता है। जैसे पनिहारिन पानी का घड़ा सिर पर रखकर चलती है वह घड़े से हाथ हटा लेती है और हाथों से हाव-भाव करते हुए सखियों से बातें करती है, परन्तु उसका लक्ष्य घड़े पर रहता है। जैसे सर्प अपनी मणि जमीन पर रखकर उसके प्रकाश में अपना आहार खोजता है, परन्तु अपना लक्ष्य मणि पर रखता है। वह उससे असावधान नहीं होता। पलटू साहेब कहते हैं कि इसी प्रकार व्यवहार का सब काम करते हुए भी साधक का मन सारे प्रपंच से अलग रहे। ऐसा कच्छप दृष्टि वाला साधक प्रामाणिक ध्यानी है।

विशेष—अखंड आत्मानुराग का यही फल होता है कि व्यवहार का काम करते हुए भी मन आत्मभाव में रहता है।

कुंडलिया-88

जैसे कामिनि के बिषय कामी लावै ध्यान॥
कामी लावै ध्यान रैन दिन चित्त न टारै।
तन मन धन मर्जाद कामिनि के ऊपर वारै॥
लाख कोऊ जो कहै कहा न तनिकौ मानै।
बिन देखे ना रहै वाहि को सर्बस जानै॥
लेय वाहि को नाम वाहि की करै बड़ाई।
तनिक बिसारै नाहिं कनक ज्यों किरपिन पाई॥
ऐसी प्रीति अब दीजिये पलटू को भगवान।
जैसे कामिनि के बिषय कामी लावै ध्यान॥

शब्दार्थ—मर्जाद= मर्यादा। किरपिन= कृपण, कंजूस।

भावार्थ—जैसे कामी मनुष्य अपनी प्रेयसी कामिनी का निरंतर ध्यान करता है। वह रात-दिन अपने मन को उससे नहीं हटाता। कामी अपने तन, मन, धन, मर्याद आदि कामिनी के ऊपर न्योछावर कर देता है। कोई उसे लाख समझावे, परंतु वह उसकी सीख तनिक भी नहीं मानता। वह अपनी प्रेयसी को देखे बिना नहीं रह पाता। वह कामिनी को ही अपना सर्वस्व मानता है। वह उसी का नाम लेता है, उसी की बड़ाई करता है। कामी अपनी प्रेयसी को उसी प्रकार नहीं भूलता है जिस प्रकार कृपण आदमी ने सोना पाया हो तो वह उसको सदैव सम्हाल कर रखता है। पलटू साहेब कहते हैं, हे भगवान! मुझे ऐसा अटूट प्रेम-भक्ति, आत्मज्ञान और अखंड वैराग्य के लिए दीजिए, जैसा कामिनी के लिए कामी प्रेम करता है।

कुंडलिया-89

साहिब साहिब क्या करै साहिब तेरे पास॥
साहिब तेरे पास याद करु होवै हाजिर।
अंदर धसि कै देखु मिलेगा साहिब नादिर॥
मान मनी हो फना नूर तब नजर में आवै।
बुरका डारै टारि खुदा बाखुद दिखरावै॥
रूह करै मेराज कुफर का खोलि कुलाबा।
तीसौ रोजा रहै अंदर में सात रिकाबा॥
लामकान में रब्ब को पावै पलटू दास।
साहिब साहिब क्या करै साहिब तेरे पास॥

शब्दार्थ—साहिब= साहेब, श्रेष्ठ, परमात्मा। नादिर= अनोखा, विलक्षण, दुष्प्राप्य। मान मनी= अहंता-ममता। फना= नष्ट, नाश। नूर= ज्योति, ज्ञान-स्वरूप आत्मा। बुरका= देह सहित मुंह का आवरण, अविद्या। बाखुद= अपने में। रूह= आत्मा। मेराज= ऊपर चढ़ना। कुफर= कुफ्र, नास्तिकता। कुलाबा= लोहे का किवाड़। रिकाबा= रकाब, पैर रखने का स्थान, घोड़ों की काठी का पावदान जिससे बैठने में सहारा लेते हैं। लामकान= मकान रहित, जिसके रहने का कोई स्थान न हो। रब्ब= रब, पालन-पोषण करने वाला, ईश्वर।

भावार्थ—सब लोग साहेब, अल्लाह, खुदा, ईश्वर आदि नाम लेकर परोक्ष में पुकारते हैं। ईश्वर तो तेरे पास है। यदि तू अपने आप में जग जा तो

वह हाजिर हुजूर है। अपने अंदर में प्रविष्ट होकर, अंतर्मुख होकर अनुभव कर फिर विलक्षण परमात्मा मिलेगा। जब तू सारी भौतिक अहंता-ममता त्याग देगा, तब आत्मा रूपी ज्ञान-ज्योति नजर में आयेगी। अविद्या का बुरका दिल से हटा लेने पर खुदा खुद में ही दिखाई देगा। नास्तिकता का किवाड़ खोलकर आत्मा ऊपर चढ़ेगा—सारे मनोविकारों से मुक्त हो जायेगा। भीतरी संयम ही तीसों रोजा रहना है और पांचों ज्ञान इन्द्रियों तथा मन-बुद्धि से ऊपर उठ जाना ही भीतरी सात तपक़ पर चढ़ना है। पलटू साहेब कहते हैं कि स्थान रहित में परमात्मा मिलता है। ईश्वर-ईश्वर क्या करता है? ईश्वर तो तेरे पास तेरा स्वरूप है।

विशेष—लोग परोक्ष में परमात्मा को पुकारते हैं। पलटू साहेब कहते हैं, वह तो तेरे पास तेरा स्वरूप है—"बुरका डारै टारि खुदा बाखुद दिखरावै॥" अविद्या का आवरण हट जाने पर खुदा खुद में अनुभव होता है। इसी भाव को पुष्ट करने के लिए ग्रंथकार अनेक युक्तियां देते हैं।

कुंडलिया-90

दिल में आवै है नजर उस मालिक का नूर॥
उस मालिक का नूर कहाँ को ढूँढ़न जावै।
सब में पूर समान दरस घर बैठे पावै॥
धरती नभ जल पवन तेही का सकल पसारा।
छुटै भरम की गाँठि सकल घट ठाकुरद्वारा॥
तिल भर नाहिं कहीं जहाँ नहिं सिरजनहारा।
वोही आवै नजर फुरा बिस्वास हमारा॥
पलटू नेरे साच के झूठे से है दूर।
दिल में आवै है नजर उस मालिक का नूर॥

शब्दार्थ—नूर= प्रकाश, ज्ञान ज्योति। फुरा= सच हुआ।

भावार्थ—उस परमात्मा की ज्ञान ज्योति अपने दिल में प्रत्यक्ष होती है। तू परमात्मा को बाहर खोजने कहां जाता है? वह तो सबके दिल में बैठा है। तू अंतर्मुख हो जा, फिर अपने आप में उसका साक्षात्कार होगा। धरती, आकाश, जल, पवन, सब जगह तो उसका विस्तार है—सब जगह चेतन प्राणी रूप परमात्मा है। यदि उसे बाहर पाने का भ्रम मिट जाय तो अनुभव होगा कि प्राणियों की सारी देहें ठाकुरद्वारा हैं और सबके दिल में आत्मा रूपी

परमात्मा बैठा है। ज्ञान-विज्ञान का सृजेता आत्मा सब जगह घट-घट में बैठा है। उससे खाली तिल भर भी नहीं है। मेरा विश्वास सच निकला कि अपने भीतर परमात्मा है। पलटू साहेब कहते हैं कि सच्चे ज्ञानी के आत्मबोध से परमात्मा उसके निकट है और परोक्ष में भटकनेवाले झूठे भक्त के लिए वह दूर है। अतएव बोधवान परमात्मा को अपने भीतर अनुभव करता है।

विशेष—आत्मा परमात्मा है। उसे बाहर खोजना अज्ञान है।

कुंडलिया-91

खोजत खोजत मरि गये घर ही लागा रंग॥
घर ही लागा रंग कीन्ह जब संतन दाया।
मन में भा बिस्वास छूटि गइ सहजै माया॥
बस्तु जो रही हिरान ताहि का लगा ठिकाना।
अब चित चलै न इत उत आपु में आपु समाना॥
उठती लहर तरंग हृदय में सीतल लागे।
भरम गई है सोय बैठि कै चेतन जागे॥
पलटू खातिर जमा भई सतगुरु के परसंग।
खोजत खोजत मरि गये घर ही लागा रंग॥

शब्दार्थ—रंग= भाव, आनन्द। हिरान= खोयी। खातिर जमा= ख़ातिर जमा= संतोष, इत्मीनान, तसल्ली। परसंग= प्रसंग, संगत।

भावार्थ—परमात्मा को बाहर खोजते-खोजते थक गया। जब अंतर्मुख हुआ, तब दिल ही में उसका दीदार होने से आनंद आ गया। जब संतों ने दया करके आत्मबोध दिया तब मन में-अंतरात्मा में विश्वास हुआ और बाहर परमात्मा खोजने की माया सहज ही छूट गयी। हमारे अविवेक से आज तक परमात्मा खोया था, अब संतों के निर्णय से आत्मबोध हुआ और पता लगा कि हृदय में बैठा आत्मा परमात्मा है। अब मेरा मन इधर-उधर नहीं चल रहा है। मैं अपने आप में लीन हो गया हूं। अब आत्मानुभव की तरंगें मन में उठती हैं। इससे हृदय शीतल हो गया है। अब बाहर ईश्वर खोजने का भ्रम सो गया-खो गया है। अब मैं निरंतर अपने चेतन स्वरूप में जाग रहा हूं। पलटू साहेब कहते हैं कि सद्गुरु की संगत पाकर हृदय में आत्मसंतोष आ गया। ईश्वर को खोजते-खोजते हैरान हो गया था। जब अपने भीतर झांका तो आनंद आ गया।

कुंडलिया-92

नजर मँहै सब की पड़ै कोऊ देखै नाहिं॥
कोऊ देखै नाहिं सीस पै सबके छाजै
पूरन ब्रह्म अखंड सकल घट आपु बिराजै॥
दिवसै फिरै भुलान रहै तिरगुन महँ माता।
देखि देखि दै छाड़ि पंडित पहँ पूजन जाता॥
भूला सब संसार भेद नहिं जानै वाकी।
देखत है इक संत ज्ञान की दीठी जाकी॥
पलटू खाली कहुँ नहिं परगट है जग माहिं।
नजर मँहै सब की पड़ै कोऊ देखै नाहिं॥

शब्दार्थ—तिरगुन= सत, रज तथा तम। पहँ= पास। दीठी= दृष्टि।

भावार्थ—वह सबकी नजरों के सामने है। परंतु कोई देखता नहीं है। वह तत्त्व तो सबके सिर पर शोभा पाता है। जिसको पूर्ण अखंड ब्रह्म कहा जाता है, वह सबके हृदय में विराजमान है। मनुष्य शरीर के ज्ञान प्रकाश रूपी दिन में लोग भूले फिरते हैं और त्रिगुणात्मक भौतिक जगत के नशा में मतवाले होकर भटकते हैं। सब देहधारी में आत्मा रूपी परमात्मा है, परंतु उन्हें देख-देख कर उनकी उपेक्षा कर देते हैं और पंडित के पास नकली ईश्वर पूजने जाते हैं। संसार के सारे लोग भूले हैं। आत्मतत्त्व का भेद नहीं जानते। आत्मतत्त्व को कोई बिरला संत देखता है जिसके पास ज्ञान की दृष्टि है। पलटू साहेब कहते हैं कि खाली कहीं नहीं है, जगत में वह चेतन आत्मा के रूप में प्रकट है। वह सबकी नजरों में है, परन्तु कोई देखता नहीं है।

विशेष—प्राणी परमात्मा है। यह दृष्टि सबकी नहीं है। लोग शून्य या पत्थर की पिंडियों में परमात्मा मानते हैं। वस्तुतः आत्मा परमात्मा है।

10. दासातन का महत्त्व

कुंडलिया-93

पहिले दासातन करै सो बैराग प्रमान॥
सो बैराग प्रमान सेवा साधुन की कीजै।
तब छोड़ै संसार बूझ घर ही में लीजै॥
काढ़ै रस रस गोड़ कछुक दिन फिरै उदासी।
सतगुरु उहवाँ बसैं जहाँ काया की कासी॥

आसन में दृढ़ होय घटावै नींद अहारा।
काम क्रोध को मारि तत्व का करै बिचारा॥
भक्ति जोग के पीछे पलटू उपजै ज्ञान।
पहिले दासातन करै सो बैराग प्रमान॥

शब्दार्थ—दासातन= सेवकाई, सेवा। प्रमान= प्रमाण, सच्चा, मानने योग्य। रस-रस= धीरे-धीरे। गोड़= पैर।

भावार्थ—पहले घर में रहकर संतों की सेवा करे तब उसका वैराग्य प्रामाणिक होगा। पहले संतों की सेवा करके भक्ति दृढ़ कर ले। घर में रहकर स्वरूपज्ञान और साधुता की रहनी अच्छी तरह समझ-बूझ ले। इसके बाद घर-गृहस्थी का त्यागकर सद्गुरु की शरण में समर्पित हो। धीरे-धीरे त्याग की तरफ अपने पैर बढ़ावे। घर में रहते हुए कुछ दिन उदासीनतापूर्वक बरताव करते हुए अपने को तौले। सद्गुरु काया की काशी में बसते हैं। अतएव सद्गुरु की शरण में रहना काशी में बसना है। स्थिर आसन से देर तक बैठने का अभ्यास करे और भोजन तथा नींद कम करे। काम-क्रोध को मारकर आत्मतत्त्व का विचार करे। पहले सेवा-भक्ति उसके बाद ध्यान-समाधि, फिर इसके बाद आत्मज्ञान उदय होता है। पहले सेवा-भक्ति करके मन को मांज ले, तब उसका वैराग्य प्रामाणिक होता है।

कुंडलिया-94

खामिंद कब गोहरावै चाकर रहै हजूर॥
चाकर रहै हजूर होइ ना निमक हरामी।
डेरत रहै दिन राति लगै ना कबहीं खामी॥
आठ पहर रहै ठाढ़ सोई है चाकर पूरा।
का जानी केहि घरी हरी दै देइ अजूरा॥
निवाले रोह बरोह सलाम में रहता चोटा।
वह काफिर बेपीर खायगा आखिर सोटा॥
पलटू पलक न भूलिये इतना काम जरूर।
खामिंद कब गोहरावै चाकर रहै हजूर॥

शब्दार्थ—खामिंद= ख़ाविंद, स्वामी, मालिक। खामी= चूक, भूल। अजूरा= मेहनताना, मजदूरी। निवाले= खाने के समय। रोहबरोह= रू-ब-रू, सामने। सलाम= बंदगी, सेवा। चोटा= चोर। सोटा= डंडा, दुख।

भावार्थ—स्वामी कब पुकारे, सेवक सब समय सेवा में सामने उपस्थित रहे। नमकहरामी कभी नहीं करना चाहिए। सदैव सेवा काम में डरता रहे कि मुझसे सेवा में कमी न हो जाय। वही पूर्ण सेवक है जो आठों पहर सेवा में खड़ा रहे। पता नहीं किस समय ज्ञानदाता मजदूरी दे दे। जो लोग खाने के लिए तो सामने खड़े रहते हैं और सेवा-बंदगी में कामचोर हैं, वे बेपीर काफिर हैं। वे अंत में दुख पायेंगे। पलटू साहेब कहते है कि यह काम अवश्य करो कि अपने स्वामी को पलक मात्र मत भूलो क्योंकि स्वामी कब सेवा के लिए पुकारे, इसलिए सेवक सब समय सामने उपस्थित रहे।

11. संत शूरवीर

कुंडलिया-95

संत चढ़े मैदान पर तरकस बाँधे ज्ञान॥
तरकस बाँधे ज्ञान मोह दल मारि हटाई।
मारि पाँच पचीस दिहा गढ़ आगि लगाई॥
काम क्रोध को मारि कैद में मन को कीन्हा।
नव दरवाजे छोड़ि सुरत दसएँ पर दीन्हा॥
अनहद बाजै तूर अटल सिंहासन पाया।
जीव भया संतोष आय गुरु नाम लखाया॥
पलटू कफ्फन बांधि कै खेंचो सुरति कमान।
संत चढ़े मैदान पर तरकस बाँधे ज्ञान॥

शब्दार्थ—पाँच= पांच ज्ञान की इंद्रियां। पचीस= पचीस प्रकृतियां। नौ दरवाजे= दो आंख, दो नाक, दो कान, मुख, गुदा और उपस्थ। दसएँ = ब्रह्मरंध्र, कपालकुहर। तूर= बाजा।

भावार्थ—संत ज्ञान का तरकस बांधकर मानस युद्ध के मैदान पर चढ़ गये। उन्होंने मोह के दल को मारकर पछाड़ दिया। पांच ज्ञानेन्द्रियों को जीतकर पचीस प्रकृतियों को भी वश में कर लिया और कायागढ़ में ज्ञान-वैराग्य की आग लगा दी। काम-क्रोध को मार कर मन को वश में कर लिया। नौ दरवाजे को छोड़कर दसवें पर मन लगाया—इन्द्रियों के विषयों को त्यागकर संकल्पशून्य दशा में पहुंच गये। गगनगुफा में अनाहतनाद का बाजा बज रहा है। स्वरूपस्थिति का अविचल सिंहासन मिल गया। सद्गुरु ने आकर सतनाम का अर्थ आत्मज्ञान लखा दिया। इससे जीव को संतोष मिल

गया। पलटू साहेब कहते हैं कि सिर पर कफन बांधकर जीवन की क्षण-भंगुरता समझकर मनोवृत्ति रूपी कमान पर ज्ञान रूपी बाण रखकर खैंचो और लक्ष्य को बेधो। संत ज्ञान का तरकस बांधकर मानस युद्ध के मैदान में चढ़ गये।

कुंडलिया-96

बाना बाँधै लड़ि मरै संत सिपाही क पूत॥
संत सिपाही क पूत इसिम में दाग न लागै।
महा मोह दल टारि बहुरि ना पानी माँगै॥
मारै पाँच पचीस बचै ना तिरगुन पावै।
लालच का सिर काटि मुलुक में अदल चलावै॥
तृस्ना और हंकार माया की गर्दन मारै।
मन को लेवै पकरि कैद करि बेरी डारै॥
पलटू टरै न खेत से सोई है अवधूत।
बाना बाँधै लड़ि मरै संत सिपाही क पूत॥

शब्दार्थ—बाना= साधु वेष। लड़ि मरै= अटूट युद्ध करे। इसिम= इस्म, नाम, संज्ञा। पानी= वासना। अदल= कानून, शासन। बेरी= बेड़ी। अवधूत = मस्त फकीर।

भावार्थ—साधक संत-योद्धा का पुत्र है, शिष्य है। वह साधुवेष पहनकर मानस युद्ध में अटूट युद्ध करे। वह अपने साधु नाम में दाग न लगने दे। मोह की महान सेना को मार डाले और पुनः किसी वस्तु की वासना न बनावे। पांचों ज्ञानेन्द्रियों और पचीसों प्रकृतियों को मार दे और सत, रज, तम तीनों गुणों के विकार रहने न पावें। लालच-लोभ को मारकर आत्म-देश में साधुता का शासन करे। तृष्णा, अहंकार तथा मोहाकर्षण को नष्ट कर दे। मन को पकड़कर कैद कर ले और उसके पैर में बेड़ी पहना दे—मन की चाल शांत कर दे। पलटू साहेब कहते हैं कि मोह दल के युद्ध से जो पीछे न हटे, वही मस्त फकीर है। संत-योद्धा का शिष्य साधु का वेष पहनकर मन से घोर युद्ध करे।

कुंडलिया-97

काया कोट छुड़ावै सोई है रजपूत॥
सोई है रजपूत देइ गढ़ आगि लगाई।
मुरचा पाँच पचीस बात में लेइ छड़ाई॥

काया गढ़ के बीच जाय के थाना करना।
मन है बड़ा मवास पकरि के ठौरै मरना॥
काम क्रोध को मारि लोभ औ मोह हंकारा।
लालच को सिर काटि बहै लोहू की धारा॥
पलटू अठहँ लोक में अमल करै अवधूत।
काया कोट छुड़ावै सोई है रजपूत॥

शब्दार्थ—कोट= किला। गढ़= किला। मुरचा= मोर्चा, सामना। थाना = स्थान, स्थिति। मवास= ठग। अठहं लोक= पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन तथा बुद्धि से परे आठवां आत्मदेश। अमल= व्यवहार, शासन।

भावार्थ—असली क्षत्रिय वह है जो शरीर रूपी किला से जीव को मुक्त कर ले। वही राजपूत है जो देह रूपी किला में ज्ञान-वैराग्य की आग लगा दे। पांच ज्ञानेन्द्रियों और पचीस प्रकृतियों का सामना कर बात-बात में तुरंत उन पर विजय करके अपने को छुड़ा ले। फिर काया गढ़ के बीच में जीत का स्थान बना ले। मन बड़ा ठग है। इसको पकड़कर उसी दम मार दिया जाय। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार को मार दे और लालच-लोभ का सिर काट दे, फिर इनके रक्त की धारा बह निकलेगी—सारे विकार नष्ट हो जायेंगे। पलटू साहेब कहते हैं कि पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि के ऊपर आठवें आत्मदेश में मस्त फकीर शासन करता है। इस काया-किला से जो अपने आप को मुक्त कर ले, वह सच्चा क्षत्रिय है।

कुंडलिया-98

संत चढ़े जो मोह पर काया नगर मँझार।
काया नगर मँझार ज्ञान का तरकस बाँधे।
दम की गोली साधि विस्वास बंदूक है काँधे॥
घोड़ा है संतोष छिमा का जीन बँधाई।
बखतर पहिरे प्रेम गगन में लै दौड़ाई॥
मुरचा पाँच पचीस बात में लिहा छुड़ाई।
मन के बेरी डारि नगर में अदल चलाई॥
पलटू सुरति कमान करि नाम निसाना मार।
संत चढ़े जो मोह पर काया नगर मँझार॥

शब्दार्थ—दम= दमन। बेरी= बेड़ी। अदल= शासन, न्याय।

भावार्थ—इस शरीर-नगर के बीच में संत मोह की सेना पर चढ़ाई करते हैं। वे ज्ञान का तरकस बांधते हैं, आत्मविश्वास की बंदूक कांधे पर रखकर उसमें आत्मदमन की गोली भर कर मोह-सेना पर चलाते हैं। वे संतोष रूपी घोड़ा पर क्षमा का जीन बांधते हैं, प्रेम का कवच पहनते हैं, फिर साधना के आकाश में घोड़ा दौड़ाते हैं। पांच ज्ञानेन्द्रियों और पचीस प्रकृतियों के मोरचा में आगे बढ़कर उन्हें बात-बात में परास्त कर देते हैं और अपने को बंधनों से छुड़ा लेते हैं। वे मन के पैर में बेड़ी डालकर उसकी चाल बंद कर अंत:करण नगर में अपना शांति का शासन चलाते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि वे चित्तवृत्ति रूपी धनुष पर ज्ञान का बाण चढ़ाकर सतनाम के अर्थ रूपी आत्मबोध पर निशाना मारते हैं और आत्मलीन हो जाते हैं। इस प्रकार संत काया-गढ़ में मोह-राजा की सेना को मारकर अपना स्वतंत्र शांति का राज्य स्थापित करते हैं।

कुंडलिया-99

लागी गोली नाम की पलटू गया है लोट॥
पलटू गया है लोट चोट सब्दन की लागी।
रंजक दै कै ज्ञान दिया संतन ने दागी॥
लोथ परी भहराय उठत हैं गिद्ध मसाना।
भागे कादर देखि खेत सूरा ठहराना॥
मारै भरि भरि भेद छेद भा तन में तिल तिल।
कड़खा दै ललकार खाल गिरि परी है छिल छिल॥
सतगुरु के मैदान में रही न तनिकौ ओट।
लागी गोली नाम की पलटू गया है लोट॥

शब्दार्थ—लोट= जमीन में पड़ जाना, तात्पर्य में मस्त। रंजक= बारूद। लोथ= लाश, शव। कादर= कायर। सूरा= वीर। कड़खा= युद्ध के गीत। ओट= परदा।

भावार्थ—सतनाम के अर्थ द्वारा आत्मज्ञान की गोली लगी और पलटू घायल होकर जमीन पर सो गया, क्योंकि आत्मज्ञानपरक शब्दों की चोट लग गयी। संतों ने आत्मज्ञान की बारूद भरकर बोध की गोली दाग दी। अब लाश भहराकर गिर पड़ी और श्मशान में उसे खाने के लिए गिद्ध-चील्ह घूमने

लगे। यह दशा देखकर कायर लोग तो भाग खड़े हुए और शूरवीर युद्ध में अड़े रहे। सद्गुरु आत्मज्ञान के रहस्य की गोली अपने विवेक-बंदूक में भर-भरकर मारते हैं और उससे मेरे शरीर में तिल-तिल की जगह में छेद हो गया है। इस मानस युद्ध में सद्गुरु ज्ञान-वैराग्य के वीरताप्रेरक गीत सुनाकर ललकारते हैं। युद्ध क्षेत्र में थोड़ा भी बचने का आधार नहीं रह गया है। आत्मज्ञान की गोली लगने से पलटू मैदान में लोट गया है।

विशेष—अलंकारों में कहे गये सारे वर्णनों का अर्थ है कि सद्गुरु के उपदेश से आत्मज्ञान पाकर साधक संसार के मोह से पार होकर आत्मलीन हो जाता है और जीवनपर्यन्त आत्मलीनता की दशा में रहता है और इसलिए वह कायागढ़ की लड़ाई में डटा रहता है।

कुंडलिया-100

लागी गाँसी सबद की पलटू मुआ तुरंत॥
पलटू मुआ तुरंत खेत के ऊपर जाई।
सिर पहिले उड़ि गया रुंड से करै लड़ाई॥
तन में तिल तिल घाव परदा खुलि लटकत जाई।
हैफ खाइ सब लोग लड़ै यह कठिन लड़ाई॥
सतगुरु मारा तीर बीच छाती में मेरी।
तीर चला होई पवन निकरि गा तारू फोरी॥
कहने वाले बहुत हैं कथनी कथैं बेअंत।
लागी गाँसी सबद की पलटू मुआ तुरंत॥

शब्दार्थ—गांसी= बाण का नोक। खेत= युद्ध क्षेत्र। रुंड= धड़। परदा= चाम, अविद्या। हैफ= हैफ़, अफ़सोस, दुख, आश्चर्य। तारू= पैर का तलवा।

भावार्थ—आत्मज्ञान के शब्दों के बाण लगे और पलटू युद्धक्षेत्र में तुरंत मर गया। सिर कटकर तुरंत उड़ गया। अब वह केवल धड़ से लड़ाई कर रहा है—देहाभिमान तुरंत नष्ट हो गया। अब केवल अनासक्त होकर साधना कर रहा है। शरीर के तिल-तिल जगह में घाव हो गया है और अविद्या का परदा फटकर लटक गया-गिर गया—पूरा जीवन वैराग्यमय हो गया। लोग आश्चर्यचकित होकर देखते और कहते हैं कि यह कठिन लड़ाई लड़ रहा है। सद्गुरु ने आत्मज्ञान का बाण मेरी छाती के बीच में मार दिया। वह तीर हवा

के समान तेज होकर पैर के तलवे को फोड़कर निकल गया—पूरा जीवन आत्मज्ञान से ओत-प्रोत हो गया। ज्ञान की बढ़-बढ़ कर बात करने वाले तो बहुत हैं, परन्तु आत्मज्ञान के बाण से जिसकी अहंता-ममता मर जाय वह बिरला है।

कुंडलिया-101

जियतै मरना भला है नाहिं भला बैराग॥
नाहिं भला बैराग अस्त्र बिन करै लड़ाई।
आठ पहर की मार चूके से ठौर न पाई॥
रहै खेत पर ठाढ़ सीस को लेय उतारी।
दिन दिन आगे चलै गया जो फिरै पछारी॥
पानी माँगै नाहिं नाहिं काहू से बोलै।
छकै पियाला प्रेम गगन की खिड़की खोलै॥
पलटू खरी कसौटी चढ़ै दाग पर दाग।
जियतै मरना भला है नाहिं भला बैराग॥

शब्दार्थ—खेत= युद्ध क्षेत्र, साधना क्षेत्र। छकै= पिये।

भावार्थ—जीते जी मर जाना अच्छा है, केवल वैराग्य का वेष लेना अच्छा नहीं है। बाहरी अस्त्र-शस्त्र के बिना भीतरी लड़ाई करना है। मन की लड़ाई में आठों पहर की लड़ाई है। यदि साधक एक क्षण भी असावधान हो गया तो उसकी स्थिति खराब हो जायगी। साधक साधना के युद्ध क्षेत्र में हर समय खड़ा युद्ध करता रहे और अपने सिर को उतारकर लड़े—अहंकार को त्याग कर मन से लड़े। दिन प्रतिदिन साधना में आगे बढ़ता जाय। जो कायर होकर पिछड़ा, वह डूब गया। घाव लगने पर शरीर से रक्त निकल जाता है तो तुरंत प्यास लगती है और घायल पानी मांगता है—साधना करते-करते मन कभी-कभी संसार की तरफ ललचाने लगता है, परंतु सावधान साधक किसी प्रकार वासना की पूर्ति न करे और लाख प्रतिकूलता आने पर भी किसी से विवाद न करे। निरंतर आत्म-प्रेम का प्याला पिये और प्रपंचशून्यता रूपी आकाश की खिड़की खोलकर असंग दशा में स्थित हो जाय। पलटू साहेब कहते हैं कि साधक की कसौटी यह है कि जैसे युद्ध करनेवाले योद्धाओं के अंगों पर अस्त्र-शस्त्र चलाते-चलाते दाग पड़ जाते हैं, वैसे साधक की साधना की निरंतरता से उसके जीवन में संयम के चिह्न संसार से उदासीनता

दिखे। वैराग्य का वेष मात्र भला नहीं है, अपितु जीते जी मर जाना—अहंता-ममता-शून्य हो जाना भला है।

12. पातिव्रत्य

कुंडलिया-102

पतिबरता को लच्छन सबसे रहै अधीन॥
सबसे रहै अधीन टहल वह सबकी करती।
सास ससुर औ भसुर ननद देवर से डेरती॥
सब का पोषन करै सभन की सेज बिछावै।
सब को लेय सुताय पास तब पिय के जावै॥
सूतै पिय के पास सभन को राखै राजी।
ऐसा भक्त जो होय ताहि की जीती बाजी॥
पलटू बोलै मीठे बचन भजन में है लौलीन।
पतिबरता को लच्छन सब से रहै अधीन॥

शब्दार्थ—भसुर= जेष्ठ, जेठ। लौलीन= तद्‌गत, तन्मय।

भावार्थ—पतिव्रता स्त्री का लक्षण है कि वह सबसे विनम्र रहे, सबकी सेवा करे; सासु, ससुर, जेठ, ननद, देवर, सबका अदब-लिहाज रखे। सबको भोजन दे, सबकी शय्या बिछा दे और सबके शय्या पर चले जाने पर अपने पति के पास जाय। सबको प्रसन्न रखने की चेष्टा करे, परन्तु केवल अपने पति के साथ शयन करे। इसी प्रकार जो भक्त-साधक सबके साथ सुन्दर बरताव करते हुए अपने आत्मा में लीन रहता है, उसने जीवन का दावं जीत लिया—मोक्ष प्राप्त कर लिया। पलटू साहेब कहते हैं कि सबसे मीठे वचन बोले, और अपने आत्मचिंतन तथा आत्मलीनता में तत्पर रहे। जैसे पतिव्रता का लक्षण होता है कि अन्य से भी विनम्र और सेवापरायण रहती है, वैसे सच्चा साधक सबसे विनम्र रहकर आत्मलीन रहता है।

कुंडलिया-103

सोई सती सराहिये जरै पिया के साथ॥
जरै पिया के साथ सोई है नारि सयानी।
रहै चरन चित लाय एक से और न जानी॥

जगत करै उपहास पिया का संग न छोड़ै।
प्रेम की सेज बिछाय मेहर की चादर ओढ़ै॥
ऐसी रहनी रहै तजै जो भोग बिलासा।
मारै भूख पियास याद संग चलती स्वासा॥
रैन दिवस बेहोस पिया के रंग में राती।
तन की सुधि है नहीं पिया संग बोलत जाती॥
पलटू गुरु परसाद से किया पिया को हाथ।
सोई सती सराहिए जरै पिया के साथ॥

शब्दार्थ—मेहर= मेह्र, दया, कृपा। हाथ= स्ववश।

भावार्थ—वही नारी सती एवं पतिव्रता कहलाती है जो पति की सेवा में अपने शरीर को जीर्ण करे। वही नारी समझदार है जो अपने पति के चरणों में चित लगाकर रहे और केवल अपने पति में अनुराग रखे, अन्य पुरुष के ऊपर उसका मन न जाय। इसी प्रकार साधक की वही मनोवृत्ति प्रशंसनीय है जो केवल आत्माराम में रमे। वह अन्य जगह न लगे। जगत के लोग भले उसका मजाक उड़ायें, परन्तु वह आत्मलीनता को छोड़कर अलग न हो। प्रेम की शय्या बिछाकर और दया की चादर ओढ़कर आत्मलीनता की साधना में रहे। ऐसी अंतर्मुख रहनी से रहे और संसार के सारे भोग-विलासों को छोड़ दे। भूख-प्यास की परवाह न कर संयम से रहे और आत्मचिंतन के साथ श्वास चले—निरंतर आत्मरत रहे। ऐसी मनोवृत्ति संसार से सब समय बेभान होकर केवल आत्माराम पति की भावना में ही मस्त रहती है, शरीर की आसक्ति से रहित रहकर अंतरात्मा से ही बात करती रहती है—आत्मचिंतन में ही सदैव डूबी रहती है। पलटू साहेब कहते हैं कि सद्गुरु की कृपा से मैंने आत्माराम-स्वामी को स्ववश कर लिया है। वही प्रशंसनीय पतिव्रता है जो पति की सेवा में लीन रहे। इसी प्रकार वही मनोवृत्ति प्रशंसनीय है जो निरंतर आत्माराम में रमण करे।

13. महत्त्वपूर्ण उपदेश

कुंडलिया-104

हरि को दास कहाय के गुनह करै ना कोय॥
गुनह करै ना कोय जेहि बिधि राखै रहिये।
दुख सुख कैसउ पड़े केहू से तनिक न कहिये॥

तेरे मन में और करनवाला है औरै।
तू ना करै खराब नाहक को निस दिन दौरै॥
वाको कीजै याद जाहि की मारी टूटै।
आधी को तू जाय घरहि में सम्मै फूटै॥
पलटू गुनह किये से भजन माहिं भँग होय।
हरि को दास कहाय के गुनह करै ना कोय॥

शब्दार्थ—गुनह= गुनाह, पाप, दोष, अपराध। सम्मै= पूरा, सबका सब।

भावार्थ—हरि-गुरु का भक्त कहलाकर कोई किंचित भी अपराध न करे। हरि-गुरु जैसा रखें वैसा रहे। चाहे दुख मिले और चाहे सुख मिले, किसी से किसी की निन्दा-प्रशंसा की बात न कहिए। तुम्हारे मन में कुछ अन्य खिचड़ी पक रही है, परन्तु होता वही है जो कारण-कार्य-व्यवस्था के अनुसार है। जैसा कर्म वैसा फल। तू अहंता-ममता में पड़कर अपने मन और करनी को खराब मत कर। तू व्यर्थ ही मन की तृष्णा में पड़कर रात-दिन दौड़ता है। उस सत्य स्वरूप का स्मरण कर जिसके विवेक से सारे बंधन टूटते हैं। तू दुनिया की आधी-अधूरी लौकिक उपलब्धियों के लिए भटकता है, किन्तु यह नहीं समझता कि इस बहिर्मुखता में पड़ने से हृदय-घर का आत्मशांति का सारा धन बिखरकर नष्ट हो जाता है। पलटू साहेब कहते हैं कि अपराध करके आत्मशांति की साधना में भंग पड़ता है। इसलिए हरि-गुरु का दास कहलाकर कोई अपराध न करे।

विशेष—जो हमारे अज्ञान को हरण कर ले वही हरि है और वह प्रत्यक्ष सद्गुरु है और संत हैं। अतएव संत-गुरु ही हरि हैं। इनसे अलग कहीं हरि मिलने वाला नहीं है।

कुंडलिया-105

अपनी ओर निभाइये हारि परै की जीति॥
हारि परै की जीति ताहि की लाज न कीजै।
कोटिन बहै बयारि कदम आगे को दीजै॥
तिल तिल लागै घाव खेत से टरना नाहीं।
गिरि गिरि उठै सम्हारि सोई है मरद सिपाही॥
लरि लीजै भरि पेट कानि कुल अपनि न लावै।
उन की उनके हाथ बड़न से सब बनि आवै॥

पलटू सतगुरु नाम से साची कीजै प्रीति।
अपनी ओर निभाइये हारि परै की जीति॥

शब्दार्थ—कानि कुल= कुल की कानि, कुल-जाति की मर्यादा, लज्जा।

भावार्थ—तुम अपने कर्तव्य को पूर्णतया निभाओ, चाहे हानि हो अथवा लाभ, प्रशंसा मिले या निन्दा, इस बात की लज्जा न करो। स्तुति-निन्दा की चाहे जितनी आंधी आये कल्याण-साधना में सदैव आगे पैर बढ़ाओ। शरीर के तिल तिल में चाहे घाव लगे, परन्तु युद्ध क्षेत्र से भागना नहीं है। जो गिर-गिरकर भी अपने को सम्हालता है और उठता है, वह साहसी योद्धा है। जी छककर साधना कर लो, इसमें अपने कुल, कुटुंब, जाति-बिरादरी की मर्यादा-लज्जा की भी परवाह न करो। बड़े लोगों पर अंगुली न उठाओ। उनकी बात उनके हाथों में है। बड़े लोग सब बना लेते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि सद्गुरु के दिये हुए सतनाम के अभिप्राय में आत्मज्ञान है। उससे सच्चा प्रेम करो। अपने कल्याण-पथ में डटे रहो। हानि-लाभ, स्तुति-प्रशंसा की परवाह मत करो।

कुंडलिया-106

काजर दिहे से का भया ताकन को ढब नाहिं॥
ताकन को ढब नाहिं ताकन की गति है न्यारी।
इक टक लेवै ताकि सोई है पिय की प्यारी॥
ताकै नैन मिरोरि नहीं चित अंतै टारै।
बिन ताके केहि काम लाख कोउ नैन सँवारै॥
ताके में है फेर फेर काजर में नाहीं।
भंगि मिली जो नाहिं नफा क्या जोग के माहीं॥
पलटू सनकारत रहा पिय को खिन खिन माहिं।
काजर दिहे से का भया ताकन को ढब नाहिं॥

शब्दार्थ—काजर= काजल। ढब= विधि, कायदा, तरीका। नैन मरोरि= तिरछी चितवन, गहराई से देखना। भंगि= युक्ति। सनकारत= इशारा एवं संकेत करना।

भावार्थ—कोई युवती यदि देखने का तरीका नहीं जानती है तो उसका आंखों में काजल लगाने से क्या लाभ हुआ? देखने की दशा अलग है। जो

युवती एक गहरी निगाह से अपने पति को देख ले, वही अपने प्रियतम पति की प्यारी है। अपने तिरछे चितवन से पति को देखे और अपने मन को अन्य तरफ न ले जाय। बिना पति को प्रेम भरी निगाह से देखे उसका काम अन्य लाखों लोग भी नहीं बना सकते। देखने में ही अंतर है, काजल लगाने में नहीं। यदि सद्गुरु से मन के भवसागर से तरने की युक्ति नहीं मिली, तो योगाभ्यास करने से क्या लाभ होगा। पलटू साहेब कहते हैं कि जो युवती अपने प्रियतम पति को क्षण-क्षण अपने प्रेम का संकेत देती है, वह कुशल है। यदि देखने की विधि सही नहीं है, तो काजल लगाने से क्या लाभ!

विशेष—उक्त कुंडलिया में उस युवती की प्रशंसा की गयी है जो अपने पति को प्रेम भरी निगाह से देखती है। ध्यान रहे, यह ज्ञान-वैराग्य की पुस्तक है, श्रृंगार रस की नहीं। यहां उक्त कथन उपलक्षण मात्र है। यहां का अभिप्राय है कि साधक की उस मनोवृत्ति की प्रशंसा है जो गहरे मनोभाव से अपने प्रियतम पति आत्मा को निरंतर देखती है। जिस साधक की मनोवृत्ति निरंतर अंतर्मुख रहती है, आत्मलीनता में रहती है वह सफल है। इसके अलावा लाखों लोग उसको सफल नहीं कर सकते। साधक-संत का वेष बनाने से क्या हुआ, यदि मनोवृत्ति अंतर्मुख नहीं हुई तो?

कुंडलिया-107

जाकी जैसी भावना तासे तस ब्यौहार॥
तासे तस ब्यौहार परसपर दूनौं तारी।
जो जेहि लाइक होय सोई तस ज्ञान बिचारी॥
जो कोइ डारै फूल ताहि को फूल तयारी।
जो कोइ गारी देत ताहि को हाजिर गारी॥
जो कोइ अस्तुति करै आपनी अस्तुति पावै।
जो कोई निन्दा करै ताहि के आगे आवै॥
पलटू जस मैं पीव का वैसै पीव हमार।
जाकी जैसी भावना तासे तस ब्यौहार॥

शब्दार्थ—तारी= ताली, दोनों हथेली साथ बजती है।

भावार्थ—जिसके मन की जैसी भावना होती है, उससे वैसा ही व्यवहार लोग करते हैं। जैसे दोनों हाथों से ताली बजती है। ज्ञान-विचार की यह बात है कि जो मनुष्य जिस योग्य होता है, प्रकृति से उसे वैसा ही मिलता है। जो

दूसरे पर फूल डालता है उसके ऊपर फूल बरसता है। जो दूसरों को गाली देता है उसके लिए गाली तैयार मिलती है। जो दूसरों के सद्‌गुणों का आदर करता है उसको सर्वत्र आदर मिलता है। जो दूसरों की निन्दा करता है वह निन्दा पाता है। पलटू साहेब कहते हैं कि यदि हम अपने प्रियतम आत्मा को प्यार करेंगे, तो वह मेरा हो जायेगा। अपनी ओर लौटने पर आत्मसाक्षात्कार होता है। जिसकी जैसी भावना होती है, प्रकृति से उसको वैसा ही फल मिलता है।

कुंडलिया-108

टेढ़ सोझ मुँह आपना ऐना टेढ़ा नाहिं॥
ऐना टेढ़ा नाहिं टेढ़ को टेढ़ै सूझै।
जो कोइ देखै सोझ ताहि को सोझै बूझै॥
जाको कुछ नहिं भेद भावना अपनी दरसै।
जाको जैसी प्रीति मुरति सो तैसी परसै॥
दुर्जन के दुर्बुद्धि पाप से अपने जरते।
सज्जन के है सुमति सुमति से अपने तरते॥
पलटू ऐना संत हैं सब देखै तेहि माहिं।
टेढ़ सोझ मुँह आपना ऐना टेढ़ा नाहिं॥

शब्दार्थ—ऐना= दर्पण। सोझ= सीधा।

भावार्थ—मुंह टेढ़ा होना या सीधा होना अपने मुंह के दोष और गुण हैं दर्पण में वे ही दिखेंगे। इसमें दर्पण का दोष नहीं है। दर्पण तो सीधा है। अपना मुंह टेढ़ा है तो वह टेढ़ा ही दिखेगा। जिसका मन टेढ़ा है वह सर्वत्र टेढ़ापन ही देखता है और जिसका मन शुद्ध है उसको सर्व शुद्धता दिखती है। जिसके मन में कोई भेदभाव नहीं, वह समता में जीता है। वस्तुतः मनुष्य के मन की जैसी भावना होती है, उसके लिए वही बाहर प्रतिबिम्बित होती है। जिसकी जैसी भावना होती है सभी मूर्तमान पदार्थों में उसको वैसा ही अच्छा-बुरा दिखता है। दुष्ट लोग अपनी दुर्बुद्धि के कारण अपने मन के पाप में जलते हैं। सज्जनों में सुबुद्धि होती है, वे अपनी अच्छी मति के नाते दुखों से पार चले जाते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि संत दर्पण के समान हैं। लोगों का जैसा-जैसा भाव होता है, उसी भाव से वे उनमें अपना मंतव्य बनाते हैं। अपने मुंह टेढ़े-सीधे होते हैं, दर्पण ज्यों का त्यों है।

कुंडलिया-109

फूली है यह केतकी भौंरा लीजै बास॥
भौंरा लीजै बास जन्म मानुष को पाया।
करी न गुरु की भक्ति जक्त में आइ भुलाया॥
भौंरा कीजै चेत कहा तू फिरै भुलाना।
हरि को नाम सुगन्ध छोड़ि पाड़र लिपटाना॥
ऋतु बसंत की जात कली को रस लै लीजै।
बहुरि न ऐसा दावँ चेत चित भौंरा कीजै॥
पलटू कबहूँ ना मरै होय न जिव का नास।
फूली है यह केतकी भौंरा लीजै बास॥

शब्दार्थ—केतकी= एक सुगंधित फूल। पाड़र= गंधरहित फूल। जात= उत्पन्न।

भावार्थ—हे भंवरा! सुगंधित केतकी फूल खिले हैं, उनकी सुगंधी को ले। कल्याणदायी मानव-जीवन मिला है, हे मन! अपना उद्धार कर ले। तूने सद्गुरु की भक्ति नहीं की। संसार में आकर तू भूल गया। हे मन भंवरा! तू जगत की मोह-नींद से जग जा। तू इस विकट वन-संसार में कहां भूला घूमता है? आत्मज्ञान की सुगंधी छोड़कर गंधरहित-सारहीन जगत-विषयों में लिपट गया। वसंत ऋतु में उत्पन्न फूलों का रस ले—मानव जीवन के विवेक का सदुपयोग कर आत्मशांति ले ले। हे मन भंवरा! सावधान हो। आज जैसा सुनहला अवसर मिलना कठिन है। पलटू साहब कहते हैं कि चेतन जीव का नाश नहीं होता। वह कभी नहीं मरता है। उत्तम मानव जीवन रूप केतकी के फूल खिले हैं, उससे अपने कल्याण का काम कर ले।

कुंडलिया-110

गुरु की भक्ति और माया ज्यों छूरी तरबूज॥
ज्यों छूरी तरबूज कुसल दोऊ बिधि नाहीं।
गिरे गिराये घाव लगे तरबूजै माहीं॥
कनक कामिनी बड़ी दोऊ है तीछन धारा।
तब बचिहैं तरबूज रहै छूरी से न्यारा॥
छोट बड़ा कतलाम नहीं छूरी को दाया।
बचै विवेकी संत गये जिन अंग लगाया॥

पलटू उनसे बैर है पड़ै न मूरख बूझ।
गुरु की भक्ति और माया ज्यों छूरी तरबूज॥

शब्दार्थ—तीछन= तीक्ष्ण, तेज। कतलाम= कत्लेआम, सर्वसंहार।

भावार्थ—गुरुभक्ति और माया क्रमशः तरबूज और छूरी की तरह है। चाहे छूरी तरबूज पर गिरे और चाहे तरबूज छूरी पर गिरे, गिरे-गिराये दोनों विधि से तरबूज ही कटेगा। दोनों प्रकार से तरबूज का कुशल नहीं है। कनक और कामिनी की बड़ी तेज धार है। तरबूज तब बचेगा जब वह छूरी से दूर रहे। इसी प्रकार भक्ति तब सुरक्षित रहेगी जब वह कनक-कामिनी से दूर रहेगी। छूरी को दया नहीं होती। वह छोटे-बड़े सबका कत्लेआम करती है, वैसे कनक-कामिनी में लिपटे मनुष्य पतित होते हैं। वे ही इस माया से बचते हैं जो विवेकी संतों की शरण में समर्पित हो जाते हैं और संत उन्हें अपनी शरण में लगा लेते हैं । पलटू साहेब कहते हैं कि मूर्ख मनुष्य उन्हीं उद्धारकर्ता संतों से वैर बांधे रहते हैं। उनको सत्य दिखता ही नहीं। परन्तु यह समझ लो कि गुरु की भक्ति तरबूज है और माया छूरी। अतएव भक्ति से माया को दूर रखो।

कुंडलिया-111

पलटू जो सिर ना नवै बिहतर कद्दू होय॥
बिहतर कद्दू होय संत से नइ कै चलिये।
जुरै सो आगे धरै गोड़ धै सेवा करिये॥
आपन जीवन जनम सुफल कै वह दिन जानै।
देखत नैन जुड़ाय सीतलता मन में आनै॥
अंतर नाहीं करै मन बच से लावै सेवा।
ब्रह्मा बिस्नु महेस संत हैं तीनों देवा॥
सीस नवावै संत को सीस बखानौ सोइ।
पलटू जो सिर ना नवै बिहतर कद्दू होय॥

शब्दार्थ—बिहतर= बेहतर। कद्दू= कुम्हड़ा। नइ= झुककर, विनम्र होकर।

भावार्थ—पलटू साहेब कहते हैं कि जिसका सिर विनम्रता से नहीं झुकता है उसके सिर से अच्छा है कुम्हड़ा, जो स्वयं कटकर दूसरों को पोषण देता है। अतएव हे कल्याणार्थी ! संतों से विनम्रतापूर्वक व्यवहार कीजिए। जो

अपने घर जुरै-अटे उसे संतों को सामने रखकर समर्पित करे, उनके चरणों में पड़कर सेवा करे। अपना जीवन और जन्म उस दिन सफल माने जब संतों के दर्शन करके नैन और मन शीतल हो जाय। संतों से भेदभाव, कपट व्यवहार न करे अपितु मन, वचन तथा कर्म से उनकी सेवा करे। ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव ये तीनों देव संत ही हैं। वह सिर प्रशंसनीय है जो संत के सामने झुकता है, अन्यथा उससे भला कद्दू है।

कुंडलिया-112

राम कृस्न परसराम ने मरना किया कबूल॥
मरना किया कबूल मरै से बचै न कोई।
दस चौदह औतार काल के बसि में होई॥
सुर नर मुनि सब देव मुए सब मौत अपानी।
देव पितर ससि भानु पवन नभ धरती पानी॥
राजा रंक फकीर सूर औ बीर करारी।
साधु सती औ अगिन मुए जिन सबको जारी॥
पलटू आगे मरि रहौ आखिर मरना मूल।
राम कृस्न परसराम ने मरना किया कबूल॥

शब्दार्थ—दस चौदह औतार= चौबीस माने गये अवतार। करारी= पक्का, दृढ़।

भावार्थ—श्रीराम, श्री कृष्ण, श्री परशुराम आदि ने भी मृत्यु को स्वीकार किया। कोई देहधारी मरने से बच नहीं सकता। माने गये चौबीसों अवतार काल के अधीन हो गये। सुर-नर-मुनि तथा सभी माने गये देवता अपनी मृत्यु के समय पर मर गये। देव, पितर तो मरे ही; चंद्रमा, सूरज, वायु, धरती, पानी भी निरंतर परिवर्तनशीलता की धारा में बह रहे हैं। आकाश भी पदार्थों से घिरकर अपना अस्तित्व खो देता है। राजा, रंक, संत, पक्के शूरवीर, साधु, सती सब मरते हैं। जो आग सबको जलाती है, वह भी लुप्त हो जाती है। पलटू साहेब कहते हैं कि शरीर मौलिक रूप में नाशवान है। अंततः इसे सदा के लिए मरना ही है, अतएव पहले ही मर जाओ। शरीर का मोह छोड़ दो। राम, कृष्ण, परशुराम आदि ने भी मौत स्वीकारा है।

कुंडलिया-113

समुझावै सो भी मरै पलटू को पछिताय॥
पलटू को पछिताय दिना दस सबै मुसाफिर।
हिलि मिलि रहैं सराय भोर भये पंथ पड़ा सिर॥
इक आवै इक जाय रहै ना पैंड़ा खाली।
इक ओर काटी जाय दूसरा लावै माली॥
बूढ़ा बारा ज्वान नहीं है कोई इस्थिर।
सबै बटाऊ लोग काहे को पचिये मरि मरि॥
मरने वाला मरि गया रोवै सो मरि जाय।
समुझावै सो भी मरै पलटू को पछिताय॥

शब्दार्थ—पैंड़ा= मार्ग, रास्ता। बटाऊ= राहगीर, पथिक।

भावार्थ—जो मनुष्य दूसरों को संसार की नश्वरता के विषय में समझाता है, वह भी एक दिन मर जाता है। पलटू साहेब कहते हैं कि किसी के मरने पर कौन और क्यों शोक करे। सब प्राणी दस दिन के यात्री हैं। धर्मशाले में इधर-उधर से लोग आ गये और परस्पर सुंदर व्यवहार करके रात काट लिये और सबेरा होते ही अपना-अपना रास्ता पकड़ लिये। यही दशा परिवार तथा स्वजनों की है। यहां तो एक आता है और एक जाता है। यह आवागमन का रास्ता खाली नहीं रहता। एक तरफ फसल काटी जाती है और दूसरी तरफ किसान फसल उगाता है। इसी प्रकार एक तरफ लोग मरते हैं और दूसरी तरफ जन्मते हैं। बूढ़ा, बालक तथा जवान कोई स्थिर नहीं है। किसी के शरीर के टिके रहने का विश्वास नहीं किया जा सकता। जब यहां सब-के-सब पथिक हैं, तब क्यों किसी के मोह-शोक में पच-पच कर मरा जाय। मरने वाला मर गया, उसके लिए रोनेवाला भी मर जाता है। जो रोने वाले को समझाता है, वह भी मर जाता है। पलटू साहेब कहते हैं कि ऐसे मृत्युमय संसार के लिए क्यों पश्चाताप किया जाय?

कुंडलिया-114

तुझे पराई क्या परी अपनी ओर निबेर॥
अपनी ओर निबेर छोड़ि गुड़ विष को खावै।
कूवाँ में तू परै और को राह बतावै॥

औरन को उँजियार मसालची जाय अँधेरे।
त्यों ज्ञानी की बात मया से रहते घेरे॥
बेचत फिरै कपूर आप तो खारी खावै।
घर में लागी आग दौरि के घूर बुतावै॥
पलटू यह साची कहै अपने मन का फेर।
तुझे पराई क्या परी अपनी ओर निबेर॥

शब्दार्थ—निबेर= छुटकारा करो। मसालची= मशालची, मशाल दिखाने वाला, प्रकाश दिखाने वाला। खारी= नमक या खली।

भावार्थ—तुझे दूसरे की व्यर्थ चिंता करने की क्या आवश्यकता है। तू अपने आप को बंधनों से छुड़ा। तू तो असावधान बना मीठा गुड़ त्यागकर जहर खाता है। तू स्वयं कुआं में गिरता है और दूसरों को अच्छा रास्ता बताता है। मशाल दिखाने वाला तो अन्य को प्रकाश दिखाता है और स्वयं अंधकार में चलता है। इसी प्रकार वाचिक ज्ञानी की बात है। वे दूसरे को समझाने के लिए ज्ञान-वैराग्य की बातें झाड़ते हैं और स्वयं मोह-माया से घिरे रहते हैं। वे दूसरों के लिए कपूर बेचते-फिरते हैं और स्वयं नमक या खली खाते हैं। घर में आग लगी है और दौड़कर घूर पर पानी डालते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि मैं सच्ची बात कहता हूं कि यह अपने मन के भूल-भ्रम का चक्कर है। दूसरे की चिंता क्या करता है। अपने आप को बंधनों से छुड़ा!

कुंडलिया-115

बहता पानी जात है धोउ सिताबी हाथ॥
धोउ सिताबी हाथ करौ कछु नीकी करनी।
बीस-सात है नरक मिली अठएँ बैतरनी॥
तोहि से परिहि सो बयरा जम धिकवै भाथी।
स्वारथ के सब लोग औसर के कोऊ न साथी॥
आगे बूझि बिचारि करौ डेर वहि दिन केरी।
संत सभा में बैठु परै नहिं जम की बेरी॥
पलटू हरि जस गाइले ये ही तुम्हरे साथ।
बहता पानी जात है धोउ सिताबी हाथ॥

शब्दार्थ—सिताबी= शिताबी, शीघ्रता। बीस सात= सत्ताइस। बयरा= वैर, बिगाड़। धिकवे= गरम करता है। भाथी= धौंकनी। बेरी= बेड़ी।

भावार्थ—पानी बहता जा रहा है, शीघ्रता से अपने हाथ धो ले—जीवन का समय बीता जा रहा है, अपनी कल्याण-साधना शीघ्र कर ले। कुछ अच्छे कर्म कर ले। पुराणों के अनुसार सत्ताइस नरक हैं और अट्ठाइसवां वैतरणी नदी है। यमराज तुमसे वैर बांधे है। वह तुम्हें जलाने के लिए धौंकनी धौंक रहा है। याद रखो, इस संसार में कहीं मोह में नहीं पड़ना। सब मनुष्य अपने-अपने स्वार्थ के लिए अपना अवसर साधते हैं। अंत में तेरा साथी कोई नहीं हो सकता। आगे समझ-बूझकर उस दिन के लिए भय करो। तू संतों की सभा में बैठकर उनके आध्यात्मिक अमृत वचन सुन और उसका आचरण कर, फिर तेरे पैरों में यमराज की बेड़ी नहीं पड़ेगी। पलटू साहेब कहते हैं कि आत्मज्ञान के महत्त्व को समझकर उसका आचरण कर ले। यही तेरे कल्याण का संबल होगा। पानी बहता जा रहा है, शीघ्र अपने हाथ धो ले।

विशेष—यमपुरी, नरक, वैतरणी, यमराज आदि प्रतीकात्मक कथन है। विषय-वासना यमपुरी है। मन की मलिनता नरक है। वैतरणी मन का प्रवाह है। यमराज वासना है। इन्हीं को जीतना है।

कुंडलिया-116

जिन जिन पाया बस्तु को तिन तिन चले छिपाय॥
तिन तिन चले छिपाय प्रगट में होय हरक्कत।
भीड़ भाड़ से डेरै भीड़ में नहीं बरक्कत॥
धनी भयो जब आप मिली हीरा की खानी।
ठग है सब संसार जुगत से चलै अपानी॥
जो ह्वै रहते गुप्त सदा वह मुक्ति में रहते।
उन पर आवै खेद प्रगट जो सब से कहते॥
पलटू कहिये उसी से जो तन मन दे ले जाय।
जिन जिन पाया बस्तु को तिन तिन चले छिपाय॥

शब्दार्थ—हरक्कत= हरकत, चेष्टा, क्रिया; दुरुपयोग। बरक्कत= लाभ, फायदा। जुगत= युक्ति, बचाकर।

भावार्थ—जो लोग आत्म-धन का बोध पाये, वे उसको छिपाकर, सम्हालकर रहनी में रहे। क्योंकि उसको अनधिकारियों में बाटते फिरने से उसका दुरुपयोग होता है। स्वरूपज्ञानी को भीड़-भाड़ से डरना चाहिए। भीड़

में चलने से न अपना लाभ है और न दूसरों का। आत्मज्ञान ज्ञान-रत्नों की खान है। जब वह मिल गया तब मनुष्य सच्चे अर्थ में धनी हो जाता है। सारा संसार तो ठग है। हर जगह छले जाने का भय है। इसलिए कल्याणार्थी युक्तिपूर्वक सम्हालकर रहनी में चले। जो साधक छिपकर रहते हैं वे सदैव मुक्तिदशा में रहते हैं। उन पर दुख आता है तो प्रत्यक्ष रूप में सबको बताते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि उसी से ज्ञान की बात कहो जो तन-मन समर्पित कर उसे ले जा सके। जिन-जिन लोगों ने आत्मबोध की प्राप्ति की, वे अंतर्मुख होकर चले।

विशेष—पूज्य संत पलटू साहेब कहते हैं कि सत्पात्र के सामने आत्मज्ञान की बातें कहो, व्यर्थ में बांटते मत फिरो। अपने को सम्हालकर चलने में अपना और दूसरे सबका भला है।

कुंडलिया-117

बीज बासना को जरै तब छूटै संसार॥
तब छूटै संसार जगत से प्रीति न कीजै।
लोभ मोह को जारि सत्य पद मारग लीजै॥
मारै भूख पियास जगत की करै न आसा।
काम क्रोध को जारि तजै सब भोग बिलासा॥
सदा रहै निर्वृत्त चित्त न अंतै जावै।
मन को लेवै फेरि भजन में जाय लगावै॥
पलटू हिरन के कारने जड़भर्त लिया अवतार।
बीज बासना को जरै तब छूटै संसार॥

शब्दार्थ—निर्वृत्त= निवृत्त, निष्काम। जड़ भर्त= जड़ भरत।

भावार्थ—संसार का मोह वासना-बीज है। जब यह सर्वथा जल जाता है, तब संसार छूट जाता है। उसे देह में पुनः नहीं आना पड़ता। इसलिए सांसारिकता में न पड़िये, कहीं मोह न लगाइए। लोभ और मोह को मारकर अपने सत्स्वरूप चेतन में स्थित होने का अभ्यास कीजिए। संसार के भोगों की तृष्णा का त्याग करे और जगत की किसी वस्तु की आशा न करे। काम-क्रोध को ज्ञान से भस्म कर दे और सारे भोग-विलास को छोड़ दे। सदैव संसार से निष्काम रहे, अपना मन आत्म-स्मरण में रहे, अलग न

जाय। मन को संसार से लौटाकर स्वरूपस्थिति में लगावे। पलटू साहेब कहते हैं कि जड़ भरत को पहले जन्म में एक हिरन के मोह में पड़ जाने से पुनः देह धरना पड़ा था। अतएव जगत की बीज-वासना नष्ट हो जाने पर संसार छूटता है।

कुंडलिया-118

तो कहँ कोऊ कछु कहै कीजै अपनो काम॥
कीजै अपनो काम जगत को भूकन दीजै।
जाति बरन कुल खोय संतन को मारग लीजै॥
लोक बेद दे छोड़ि करै कोउ कितनौ हाँसी।
पाप पुन्न दोउ तजौ यही दोउ गर की फाँसी॥
करम न करिहौ एक भरम कोउ लाख दिखावै।
टरै न तेरी टेक कोटि ब्रह्मा समुझावै॥
पलटू तनिक न छोड़िहौ जिउ के संगै नाम।
तो कहँ कोऊ कछु कहै कीजै अपनो काम॥

शब्दार्थ—गर= गला। टेक= पक्ष।

भावार्थ—तुम्हें कोई कैसा भला-बुरा कहे, तुम अपने कल्याण का काम करो। तुम अपनी कल्याण-साधना में चलो, संसार के लोगों को बकने दो। जाति, वर्ण तथा कुल का अहंकार मिटाकर संतों का मार्ग पकड़ो। तुम्हारी चाहे कोई कितना हंसी-मजाक करे, तुम लोक-लाज और शास्त्र की मर्यादा को छोड़कर अपने सुपथ पर चलो। पाप-पुण्य दोनों छोड़ दो, क्योंकि यही दोनों तुम्हारे गले की फांसी हैं। कोई कितना भ्रम की बात कहे, तुम एक भी कर्मकांड में न पड़ो। चाहे करोड़ों ब्रह्मा मिलकर तुम्हारी मति फेरना चाहें, तुम अपने सत्पथ का पक्ष कभी न छोड़ो। पलटू साहेब कहते हैं कि अपने जीवन में सतनाम को साथ रखो, उसे कभी मत छोड़ो। सत्य है जिसका नाम वह अपना आत्म स्वरूप है। उसमें सदैव दृढ़ रहो। तुम्हें कोई कुछ भी कहे, तुम अपने कल्याण पथ में चलते रहो।

विशेष—लोक-वेद के बहुत ऐसे वचन हैं जो त्याज्य हैं। आज से हजार वर्ष पूर्व वैदिक पंडितों ने ही पचपन वैदिक मुद्दों को कलिवर्ज्य कहकर त्यागने की राय दी है।

कुंडलिया-119

इहाँ उहाँ कुछ है नहीं अपने मन का फेर॥
अपने मन का फेर सक्ति सिव दूसर नाहीं।
माया से है अंत तेहि से बीचे माहीं॥
जब मैं इहवाँ रहा सोच उहवाँ की भारी।
उहवाँ देखा जाय कुदरत कुल रही हमारी॥
जोग किये का होय भंगि जो आवै नाहीं।
केतिक कोटिन जोग रहत हैं भंगै माहीं॥
पलटू पावै सहज में सतगुरु की है देर।
इहाँ उहाँ कुछ है नहीं अपने मन का फेर॥

शब्दार्थ—भंगि= युक्ति। भंगै=युक्ति।

भावार्थ—न कुछ यहां है और न वहां है। केवल अपने मन की दौड़ है। शक्ति और शिव दो नहीं हैं। चेतन शिव है और चेतना उसकी शक्ति है। अतएव दोनों अभिन्न हैं। माया-मोह सर्वथा छोड़ देने पर बंधनों का अंत है और माया-मोह में पड़े रहने से जीव बंधनों में ही पड़ा रहता है। जब मैं यहां रहा, तब वहां की चिंता थी, आकर्षण था, भारी खिंचाव था। जब मैं वहां जाकर देखा, तो कुछ नहीं पाया। वही विरसता हाथ लगी। अतएव मन की सारी उठापटक हमारे मन का प्रपंच है। योगाभ्यास करने से क्या लाभ, यदि युक्ति नहीं जानी। करोड़ों योग कितनी बार क्यों न करो, युक्ति से ही संसार से तर सकते हो। पलटू साहेब कहते हैं कि सच्चा सद्गुरु मिलने में देरी है, फिर सहज ही में उनसे युक्ति पाकर मनुष्य मन के मोह से तर जाता है। अतएव यहां-वहां कहीं कुछ नहीं है। सब मन की कल्पना है।

विशेष—मन की सारी कल्पनाओं को सब समय त्यागता रहे। संकल्पों का त्याग संसार से छूटने का रास्ता है।

कुंडलिया-120

मन की मौज से मौज है और मौज केहि काम॥
और मौज केहि काम मौज जो ऐसी आवै।
आठौ पहर अनन्द भजन में दिवस बितावै॥
ज्ञान समुद्र के बीच उठत है लहर तरंगा।
तिरबेनी के तीर सरसुती जमुना गंगा॥

संत सभा के मध्य सब्द की फड़ जब लागै।
पुलकि पुलकि गलतान प्रेम में मन को पागै॥
पलटू रहै बिबेक से छूटै नहि सतनाम।
मन की मौज से मौज है और मौज केहि काम॥

शब्दार्थ—फड़=बाजार। गलतान=लवलीन, मस्त।

भावार्थ—वासनाहीन मन की मौज सच्ची मौज है। सांसारिक मौज निरर्थक है। ऐसी मौज आना चाहिए कि आठों पहर आत्मस्थिति के आनंद में रहे। इसी दिशा में दिन बीतें। आत्मज्ञान के सागर में आनंद की लहरें एवं तरंगें उठती हैं। गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम त्रिवेणी है। ज्ञान, भक्ति और वैराग्य भीतर की त्रिवेणी है। इसी के पास निरंतर रहे। संत समाज में जब निर्णय शब्दों का बाजार लगता है, तब उत्तम साधक प्रफुल्लित होकर उससे बोध लेता है और आत्मलीन हो उसी के प्रेम में उसका मन पगता है। पलटू साहेब कहते हैं कि साधक सदैव आत्म-अनात्म के विवेक में रहे और सतनाम का अर्थ स्वरूप आत्मबोध कभी न छूटे। आत्मलीन जनित मन का आनंद सर्वोच्च आनंद है, अन्य सांसारिक आनंद किस काम के जो परिणाम में दुखद हैं।

कुंडलिया-121

जो साहिब का लाल है सो पावैगा लाल॥
सो पावैगा लाल जाइ के गोता मारै।
मरजीवा ह्वै जाय लाल को तुरत निकारै॥
निसि दिन मारै मौज मिली अब बस्तु अपानी।
ऋद्धि सिद्धि औ मुक्ति भरत हैं उन घर पानी॥
वे साहन के साह उन्हें है आस न दूजा।
ब्रह्मा बिस्नु महेस करैं सब उनकी पूजा॥
पलटू गुरु भक्ती बिना भेष भया कंगाल।
जो साहिब का लाल है सो पावैगा लाल॥

शब्दार्थ—साहेब का लाल=सद्गुरु का सच्चा शिष्य। लाल=रत्न, यथार्थ आत्मज्ञान। मरजीवा=गहरे जल में डूबकर रत्न खोजने वाला।

भावार्थ—जो सद्गुरु के चरणों में पूर्ण समर्पित है, वह विनम्र शिष्य आत्मज्ञान रूपी रत्न पायेगा। वह सत्संग-सरोवर में गोता लगायेगा। जो

जीवन की आशा छोड़कर गहरे में गोता लगायेगा, वह तुरंत आत्मज्ञान रूपी ज्ञान निकाल लेगा। जब उसे अपने आप का पूर्ण ज्ञान हो जायेगा, तब वह निरंतर अखंड आनंद में रहेगा। फिर ऋद्धि-सिद्धि और मुक्ति तो उसका पानी भरेंगी—उसके पीछे लगी रहेंगी। वे दूसरे सबकी आशा छोड़ देते हैं, इसलिए वे शाहंशाह एवं सम्राट हो जाते हैं। मानो ब्रह्मा, विष्णु और महादेव उनकी सेवा करते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि गुरुभक्ति के बिना साधु वेषधारी आत्मज्ञान तथा आत्मस्थिति विहीन दरिद्र बने भटकते हैं। अतएव जो सच्चा गुरु भक्त है, वही आत्मज्ञान रूपी रत्न पाकर और उसमें स्थित होकर कृतार्थ हो सकता है।

विशेष—जो साधुवेषधारी गुरु बने पुजवाने-खाने के चक्कर में भटक रहे हैं वे आत्मस्थिति रूपी रत्न नहीं पा सकते। उसे तो वह पाता है जो सद्गुरु का लाल है, गुरु का सच्चा सेवक है। सद्गुरु का लाल ही आत्मस्थिति रूपी लाल पायेगा, मन्मती नहीं।

कुंडलिया-122

जीव जाय तो जाय दे जन्म जाय बरु नष्ट॥
जन्म जाय बरु नष्ट लोक की तजो बड़ाई।
दुख नाना सहि रहो पड़ौ दरबार में जाई॥
मात पिता निज बन्धु तजौ भगनी सुत नारी।
तजि दो भोग बिलास सहत रहौ सब की गारी॥
नाचौ घूँघट खोलि ज्ञान का ढोल बजाओ।
देखै सब संसार कलाएँ उलटी खाओ॥
पलटू नाम न छोड़िहो सहि लो इतना कष्ट।
जीव जाय तो जाय दे जन्म जाय बरु नष्ट॥

शब्दार्थ—बरु= बल्कि। कलाएं= युक्तियां, पैंतरेबाजी, दावं।

भावार्थ—चाहे जीव निकल जाय और जीवन समाप्त हो जाय परन्तु तुम कल्याण मार्ग में डटे रहो। लोक-लाज, मान-बड़ाई त्याग दो। नाना प्रकार का दुख सहकर सद्गुरु के दरबार में जाकर पड़े रहो। माता, पिता, सगा भाई, बहिन, पुत्र और पत्नी सब त्याग दो। सारे भोग-विलास को छोड़ दो और सबकी आलोचना और गाली निर्विकार भाव से सहते रहो। लज्जा का परदा हटाकर और आत्मज्ञान का ढोल बजाकर खुलकर

साधना करो। संसार के सभी लोग देखें कि तुम सांसारिकता से उलटकर अंतर्मुख होने का पैंतरा बदल रहे हो। पलटू साहेब कहते हैं कि आत्मज्ञान और अंतर्मुखता की रहनी की साधना कभी न छोड़ना। इस मार्ग में जितना कष्ट मिले उसे सह लेना। शरीर भले छूट जाय किन्तु अंतर्मुखता की साधना न छूटे।

कुंडलिया-123

खोजत हीरा को फिरै नहीं पोत को दाम॥
नहीं पोत को दाम जौहरि की गाँठ खुलावै।
बातन की बकवाद जौहरी को बिलमावै॥
लम्बी बोलत बात करै बातन की लदनी।
कौड़ी गाँठी नाहिं करत है बातैं इतनी॥
लिहा जौहरी ताड़ फिरा है गाहक खाली।
थैली लई समेटि दिहा गाहक को टाली॥
लोक लाज छूटै नहीं पलटू चाहै नाम।
खोजत हीरा को फिरै नहीं पोत को दाम॥

शब्दार्थ—पोत= कांच। ताड़= अंदाज लिया, जान लिया।

भावार्थ—पास में कांच खरीदने के लिए पैसे नहीं हैं, किन्तु हीरे का मोल-तोल कर रहे हैं। जौहरी के पास जाकर कहते हैं कि जरा हीरे दिखायें, मुझे खरीदना है। व्यर्थ बकबक करते हैं और जौहरी का समय बरबाद करते हैं। लम्बी-लम्बी बातें करते हैं और बात पर बात लादते जाते हैं। बातें इतनी करते हैं कि मानो जौहरी की पूरी दुकान खरीद लेंगे, किन्तु उनकी जेब में कौड़ी भी नहीं है। जौहरी ने समझ लिया कि यह बकवादी है। अतएव झूठा ग्राहक खाली हाथ लौट गया। जौहरी ने ग्राहक को हटाकर अपनी दुकान समेट ली। पलटू साहेब कहते हैं कि लोक-लज्जा छोड़ नहीं पाते हैं और चाहते हैं आत्म कैवल्य। खोजते हैं हीरा, किन्तु कांच खरीदने के पैसे नहीं हैं।

विशेष—लोग ऐसे हैं कि सामान्य सदाचार का पालन नहीं कर पाते हैं किन्तु जीवन्मुक्ति तथा विदेहमुक्ति की बातें करते हैं और विवेकवान संतों के पास जाकर लंबी-चौड़ी बातें करते हैं।

कुंडलिया-124

मूरख को समुझाइये नाहक होइ अकाज॥
नाहक होइ अकाज कहे से बात न बूझै।
अंधा आठौ गाँठि इलाज न पन्थ न सूझै॥
ब्रह्मा उतरै आय कहे से ज्ञान न आवै।
अमृत दीजै ब्याल नहीं वाको विष जावै॥
लगै न भीतर ज्ञान ताहि से मन न मिलावै।
मारै भाल पषान धसै नहिं उलटा आवै॥
पलटू जो बूझै नहीं बोलै से रहु बाज।
मूरख को समुझाइये नाहक होइ अकाज॥

शब्दार्थ—आठौ गाँठि=सब प्रकार। ब्याल=सर्प। भाल=बाण। बाज=बाज़, लौट आना, रुक जाना, न करना।

भावार्थ—मूर्ख को समझाने से अपना समय व्यर्थ में बरबाद होता है। कहने पर भी वह बात को समझता नहीं है। जो बाहर-भीतर अंधा है, उसको कोई औषधि नहीं लग सकती और उसको अच्छा रास्ता नहीं दिख सकता। स्वर्गलोक से उतरकर ब्रह्मा जी आ जायं और उसे समझावें तो भी उसको ज्ञान नहीं हो सकता। सर्प को अमृत पिलाया जाय तो भी उसका विष दूर नहीं हो सकता। जिसके भीतर में ज्ञान का प्रभाव नहीं पड़ता हो उससे अपने मन को मत मिलाओ। यदि पत्थर में बाण मारा जाय तो वह उसमें धंसेगा नहीं, प्रत्युत उलटकर बाण ही टूट जायेगा। पलटू साहब कहते हैं कि जो समझता नहीं है, उससे बोलना छोड़ दो। हठी आदमी को समझाने से अपना समय व्यर्थ में बरबाद होता है।

कुंडलिया-125

तीन लोक पेरा गया बिना बिचार बिबेक॥
बिना बिचार बिबेक भये सब एकै घानी।
पीना भा संसार जाठि ऊपर मर्रानी॥
इतना दुख सब सहैं तेहू पर नाहिं डेराते।
फिर फिर पेरे जायं कर्म में फिर लपटाते॥
देखी देखा पड़ै आपु से आपु पेरावै।
पेरे से जो बचै ताहि को हँसी लगावै॥

पलटू मैं रोवन लगा चलता कोल्हू देख।
तीन लोक पेरा गया बिना बिचार बिवेक॥

शब्दार्थ—तीन लोक= संसार के सब प्राणी। घानी= मात्रा। पीना= मोटा, कठोर। जाठि= कोल्हू की मुख्य लकड़ी जो घानी को पेरती है। मर्रानी= मरमर आवाज करती है।

भावार्थ—संसार के सब प्राणी विचार और विवेकहीन होने से संसार-कोल्हू में पेरे जा रहे हैं। एक ही घानी में सब पिस रहे हैं। संसार के लोग मोह-मूढ़ता में पड़कर कठोर हो गये हैं, परंतु संसार-चक्र के कोल्हू का गांठ सबके ऊपर मरमरा कर चल रहा है और सबको पेर रहा है। संसारी लोग सांसारिकता में बहुत दुख सहते हैं, फिर भी वे इस दुख से डरते नहीं हैं। वे बारंबार संसार-चक्र में पेरे जाते हैं, परंतु वे पुनः उन्हीं मोह-माया के कर्मों में लिपटते हैं जिससे पुनः पेरे जायं। एक दूसरे की देखा-देखी स्वयं की वैसी ही बुद्धि बनती है और इस प्रकार प्राणी स्वयं अपने को संसार-चक्र में पेराते हैं। जो संसार-चक्र में पेरे जाने से बचकर आत्मशांति का रास्ता अपनाता है, उसका वे मजाक उड़ाते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि संसार-चक्र का कोल्हू देखकर मुझे रुलाई आ गयी। संसार के सब प्राणी विचार-विवेक को छोड़कर संचार-चक्र में पेरे जा रहे हैं।

विशेष—शरीर-संसार में मोह करने की कोई आवश्यकता नहीं है, किन्तु विवेकहीन मनुष्य उसमें पड़कर पिस रहे हैं। सेवा करना कर्तव्य है।

कुंडलिया-126

लोक लाज कुल छाड़ि कै करि लो अपना काम॥
करि लो अपना काम सोच मोहिं वा दिन केरी।
जेहि से कौल करार कौल से आपन हेरी॥
कीन्हों भक्ति करार जन्म तब मानुष पायो।
मोकहँ है सो चेत गर्भ के बिच करि आयो॥
औंधे बासन मँहै नीर जिन्ह लिया उबारी।
तेकहँ तजि कै रहौं कुसल का होय तुम्हारी॥
जगत हँसै तो हँसन दे पलटू हँसै न राम।
लोक लाज कुल छाड़ि कै करि लो अपना काम॥

शब्दार्थ—कौल करार= प्रतिज्ञा।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! लोक की लज्जा और कुलजाति का मिथ्या अहंकार छोड़कर स्वरूपस्थिति कर लो जो तुम्हारा मुख्य काम है। मुझे तो उस दिन की चिंता है जिस दिन तुमने प्रतिज्ञा की थी कि मैं जन्म लेकर आत्मकल्याण करूंगा। तुमने गर्भवास में प्रतिज्ञा की कि मैं जन्म लेकर भक्ति की साधना करूंगा। इसी के फल में तुमने मनुष्य जन्म पाया। मुझे यह चिंता है कि तू जो गर्भवास के समय प्रतिज्ञा करके आया है, उसे पूरा नहीं कर रहा है। तुम औंधे मुख गर्भवास के बरतन में पड़े थे। तुम्हारा शरीर एक पानी का फेना था, लेकिन उसे जिसने पुष्ट कर, स्वस्थ कर पैदा किया, उसको भूलकर यदि तुम रहते हो, तो तुम्हारा कहां कल्याण है? हे साधक ! संसार के लोग तुम्हारा मजाक उड़ाते हैं तो उन्हें ऐसा करने दो। पलटू साहेब कहते हैं कि राम तुम्हारा मजाक न उड़ाये तो काम बना बनाया है। अतएव लोकलाज और कुलजाति का घमंड छोड़कर अपने कल्याण का काम कर लो।

विशेष—यह लोगों की पुरानी धारणा है कि गर्भवास का जीव ईश्वर से प्रार्थना करता है कि हे प्रभो ! तुम मुझे इस गर्भवास के दुख से निकाल लो तो मैं तुम्हारी भक्ति करूंगा और आत्मकल्याण करूंगा। परंतु वह दुनिया में आकर भूल जाता है। इसी धारणा का वर्णन ऊपर आया है। परंतु यह सब केवल मनुष्य को चेताने के लिए कल्पित धारणा है। गर्भवास का जीव बेभान रहता है। उसका किसी ईश्वर से प्रार्थना और प्रतिज्ञा करने की बात असत है। यह सत है कि मनुष्य शरीर पाकर संसार की चमक-दमक में भूलना नहीं चाहिए, अपितु अपने आप का कल्याण करना चाहिए।

कुंडलिया-127

तन मन लज्जा खोइ कै भक्ति करौ निर्धार॥
भक्ति करौ निर्धार लोक की लाज न मानौ।
देव पितर मुख खाक डारि इक गुरु को जानौ॥
तजि दो कुल की रीति खोलि घूँघट को नाचौ।
बेद पुरान मत काच काछनी काछौ साचौ॥
सुभ असुभ दोउ काटु पाँव की अपने बेरी।
निसि दिन रहौ अनन्द कोऊ का करिहै तेरी॥
पलटू सतगुरु चरन पर डारि देहु सिर भार।
तन मन लज्जा खोइ कै भक्ति करौ निर्धार॥

शब्दार्थ—निर्धार= स्थिर, दृढ़। काच= कच्चा, असत। काछनी= वेष, वस्त्र। काछौ= पहनो। बेरी= बेड़ी।

भावार्थ—हे कल्याणार्थी! शरीर और मन से लोकलाज मिटाकर स्थिर भक्ति करो। लोकधारणा की परवाह मत करो। जड़ देवता और मृत पितर की पूजा पर धूल डाल दो, उसे त्याग दो, केवल एक सद्गुरु को उपास्य मानो। कुल-जाति की प्रापंचिक रीति छोड़कर तथा निर्भय होकर भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के पथ पर चलो। वेद-पुराण के मत कच्चे हैं। अतएव उनसे हटकर सच्चे ज्ञान और सच्ची साधना के लिए कमर कसो। पाप और पुण्य कर्म अपने पैरों की बेड़ी हैं, इन्हें काट दो। तुम रात-दिन अपने आत्मस्वरूप की स्थिति में आनंदित रहो, फिर तुम्हारा कोई क्या बिगाड़ सकेगा। पलटू साहेब कहते हैं कि अपनी सारी अहंता-ममता का बोझा सद्गुरु के चरणों में समर्पित कर दो और तन-मन से लोकलाज छोड़कर स्थिर भक्ति करो।

विशेष—'बेद पुरान मत काच' कहकर ग्रंथकार उनको सिरे से अस्वीकारते नहीं हैं, अपितु उनमें जो भ्रमजनित और भेदभावजनित बातें हैं उन्हें त्यागने का निर्देश करते हैं। अच्छी बातें सबकी स्वीकारना चाहिए और झूठी बातें किसी की भी नहीं मानना चाहिए।

कुंडलिया-128

लोक लाज नहिं मानिहौ तन मन लज्जा खोय॥
तन मन लज्जा खोय छोड़ि कै मान बड़ाई।
जाति बरन कुल खोय पड़ौगे सरन में जाई॥
लाख कोऊ जो हँसै जगत की लाज न मानौ।
ज्यों हिन्दू त्यों तुरुक सकल घट साहिब जानौ॥
नाचौ घूँघट खोलि ज्ञान की ढोल बजाओ।
काटौ जम की फाँस भरम को दूर बहाओ॥
पलटू बरिहौ नाम को होनी होय सो होय।
लोक लाज नहिं मानिहौ तन मन लज्जा खोय॥

शब्दार्थ—बरिहौं= स्वीकारूंगा। नाम= सतनाम, सतनाम का अर्थ है सत्स्वरूप आत्मा का ज्ञान।

भावार्थ—कल्याणमार्ग में चलने वाले ऐ साधको! लोकलाज न मानना और तन-मन से शर्माशर्मी की बात छोड़ देना। मान-बड़ाई को भी छोड़

देना। जाति, वर्ण और कुल की मान-मर्यादा मिटाकर सद्गुरु की शरण में पड़ जाओ। कोई लाख मजाक उड़ावे, संसार की लज्जा मत करो। जैसे हिन्दू हैं वैसे मुसलमान हैं। सबकी देह में एक ही समान आत्मा रूपी परमात्मा का निवास है। आत्मज्ञान का ढोल बजाकर और मोह-माया का परदा हटाकर खुलकर आत्मसंयम की साधना करो। मन की मोह-माया और नाना भ्रांतियों को त्यागकर वासना के बंधन को काटो। पलटू साहेब कहते हैं कि सतनाम के अर्थ स्वरूप आत्मज्ञान को ग्रहण करो। शरीर प्रारब्ध की जो होनी होना है वह होगी। उसकी चिंता न करो। अब लोकलाज तन-मन से खोकर आत्मकल्याण की साधना करो।

कुंडलिया-129

जेहि सुमिरे गनिका तरी ताको सुमिरु गँवार॥
ताको सुमिरु गँवार भला अपना जो चाहो।
झूठा है संसार रैन सुपने सा जानो॥
मात पिता सुत बन्धु झूठ इनको सब जानो।
सतसंगति हरि भजन सत्त दुइ इनको मानो॥
और देव सब बृथा आस इनकी ना कीजै।
सब देवन के देव हरी अन्तर भजि लीजै॥
पलटू हरि के भजन बिन कोउ न उतरै पार।
जेहि सुमिरे गनिका तरी ताको सुमिरु गँवार॥

शब्दार्थ—गनिका= गणिका, वेश्या। गँवार= अनाड़ी, अज्ञानी, भोला।

भावार्थ—हे भोले ! जिस आत्मस्वरूप परमात्मा का स्मरण कर पिंगला वेश्या मुक्त हो गयी, उसका स्मरण कर। यदि अपना कल्याण चाहते हो तो संसार की चमक-दमक से मुड़कर अंतर्मुख होओ। संसार का सारा सम्बन्ध झूठा है। जैसे रात की नींद में सपने देखे और उनमें बहुत कुछ मिला, परंतु नींद टूटते ही सब खो गया, वैसे जीवन की सारी उपलब्धियां झूठी हैं। माता, पिता, पुत्र, बंधु-बांधव इन सबका सम्बन्ध झूठा है। सत्संग और आत्मस्मरण यही सत्स्वरूप आत्मा में स्थित होने के साधन हैं। आत्मा के अलावा सारे देवी-देवता झूठे हैं। इनकी आशा कभी मत करना। सब देवताओं का देवता परमात्मा है जो आत्मस्वरूप हृदय में बैठा है। पलटू साहेब कहते हैं कि इस

आत्मा रूप परमात्मा में स्थित हुए बिना कोई मन के भवसागर से पार नहीं जा सकता। इसलिए हे भोले ! जिस आत्मा में स्थित होकर पिंगला वेश्या मुक्त हो गयी, उसका स्मरण कर।

विशेष—देह में स्थित आत्मा ही परमात्मा है। इसके अलावा कोई परमात्मा नहीं है। अतएव सारा भ्रम छोड़कर आत्मलीन होओ।

कुंडलिया-130

ज्यों ज्यों भीजै कामरी त्यों त्यों गरुई होय॥
त्यों त्यों गरुई होय सुने संतन की बानी।
ठोपै ठोप अघाय ज्ञान के सागर पानी॥
रस रस बाढ़ै प्रीति दिनों दिन लागन लागी।
लगत लगत लगि जाय भरम आपुइ से भागी॥
रस रस चलै सो जाय गिरै जो आतुर धावै।
तिल तिल लागै रंग भंगि तब सहजै आवै॥
भक्ति पोढ़ पलटू करै धीरज धरै जो कोय।
ज्यों ज्यों भीजै कामरी त्यों त्यों गरुई होय॥

शब्दार्थ—ठोपै ठोप= बूंद-बूंद। रस रस= धीरे-धीरे। लागन= लगन, प्रेम। आतुर= शीघ्र, जल्दी। भंगि =युक्ति। पोढ़= प्रौढ़, पक्की, स्थिर।

भावार्थ—कंबल जैसे-जैसे भीगता है, वैसे-वैसे वजनदार होता है। संतों की वाणी सुनते-सुनते आत्मबोध वैसे ही पक्का होता है जैसे एक-एक बूंद से समुद्र का जल बनता है। सत्संग में रहते-रहते मनुष्य ज्ञान का सागर होकर आत्मतृप्त हो जाता है। सेवा, सत्संग तथा साधना करते-करते धीरे-धीरे अंतर्मुखता में प्रेम बढ़ता है और दिन-प्रतिदिन लगन लगती जाती है। इस प्रकार सावधान होकर सत्संग-साधना से स्वरूपज्ञान में लगन लगते-लगते सारे प्रत्यक्ष और परोक्ष के भ्रम स्वयं समाप्त होकर अपरोक्ष आत्मा में स्थिति हो जाती है। जो धीरे-धीरे निरंतर चलता है, वह अपने गंतव्य को पहुंच जाता है। गिरता है वह जो जल्दीबाजी करके दौड़ता है। धीरे-धीरे अंतर्मुखता की शांति का भाव जमता है, तब सहज ही मन के जाल काटने की युक्ति मिल जाती है। पलटू साहेब कहते हैं कि जो धैर्य धारणकर प्रौढ़ भक्ति करता है, वह उसी प्रकार धीरे-धीरे स्वरूपस्थिति में निमग्न हो जाता है जिस प्रकार भीगते-भीगते कंबल वजनदार होता है।

कुंडलिया-131

वे बोलैं मैं चुप रहौं आपुइ जाते हारि॥
आपुइ जाते हारि कथनियाँ बाद न आवैं।
घरे मसलहत करैं बटुरि कै सौ सौ धावैं॥
आवैं हमरे पास बैठि कै गाल बजावैं।
उलटा पुलटा कहैं बचन बिपरीत सुनावैं॥
बोली ठोली करैं छिमा करि चुप मैं मारौं।
भूँकि भूँकि फिरि जायँ जुगत से उनको टारौं॥
पलटू हम से लड़न को आवै सब संसार।
वे बोलैं मैं चुप रहौं आपुइ जाते हारि॥

शब्दार्थ—कथनियाँ= बकवादी, विवादी। बाद= बाज़, पीछे, उलटे, चुप। मसलहत= परामर्श, राय, गुटबंदी। जुगत= युक्ति।

भावार्थ—विवादी विवाद करते हैं परंतु मैं चुप रहता हूं। इसलिए वे अपने आप हारकर चले जाते हैं। ये बकवादी लोग अपनी बक-बक की आदत छोड़ते नहीं हैं। ये अपने घर में परामर्श एवं गुटबंदी करके सौ-सौ लोग मुझसे विवाद करने आते हैं। वे मेरे पास आते हैं और बैठकर बक-बक करते हैं। वे उलटी-पलटी बातें करते हैं और कटु वचन कहते हैं। वे व्यंग्य बोलकर मेरा मजाक उड़ाते हैं। परंतु मैं निर्विकार भाव से रहकर उनको पूर्णतया क्षमा कर देता हूं और मौन रह जाता हूं। वे बक-बक करके लौट जाते हैं। मैं अपनी मीठी युक्ति से उनके विवाद को टाल देता हूं। पलटू साहेब कहते हैं कि हमसे लड़ने के लिए सब संसारी लोग आते हैं। वे बकते हैं, परन्तु मैं चुप रहता हूं, इसलिए वे अपने आप हारकर चले जाते हैं।

कुंडलिया-132

जौं लगि लागै हाथ ना करम न कीजै त्याग॥
करम न कीजै त्याग जक्त की बूझ बड़ाई।
ओहु ओर डारै तोरि एहर कुछ एक न पाई॥
उत कुल से वे गये नाहिं इत मिला ठिकाना।
केहु ओर में नाहिं बीच के बीच भुलाना॥
जेहुँ जेहुँ पावै बस्तु तेहुँ तेहुँ करम को छोड़ै।
खातिर जमा को लेइ जगत से मुहड़ा मोड़ै॥

पलटू पग धरु निरख करि तातें लगै न दाग।
जौं लगि लागै हाथ ना करम न कीजै त्याग॥

शब्दार्थ—ओहु ओर= उस तरफ, कर्मकांड। एहर= इधर, आत्मज्ञान। खातिर जमा= ख़ातिरजमा= संतोष, विश्वास, तसल्ली। मुहड़ा= मुंह। दाग= दोष।

भावार्थ—जब तक आत्मज्ञान पूरा न हो, तब तक कर्मकाण्ड का त्याग न करे। संसार की विशेषता को समझे। सांसारिक कर्मकाण्ड परोक्ष उपासना तथा भक्ति छोड़ दी और इधर आत्मा का पक्का बोध नहीं हुआ। उधर वे कुल-परंपरा का कर्म-धर्म छोड़ दिये और इधर आत्मबोध में स्थिरता नहीं हुई। ऐसे लोग किसी भी तरफ के नहीं हुए। बीच में ही भटक गये। इसलिए जैसे-जैसे आत्मा का बोध हो, वैसे-वैसे कर्मकांड का त्याग करे। जब पूर्ण आत्मसंतोष मिल जाय, तब सांसारिक कर्मकाण्ड से पूर्ण विरक्त हो जाय। पलटू साहेब कहते हैं कि साधना-पथ में निरख-परख कर पैर रखे, जिससे जीवन में दोष न आवे। अतएव जब तक सच्चा आत्मज्ञान न हो, तब तक कर्मकांड का त्याग न करे।

कुंडलिया-133

दुइ पासाही फकर की इक दुनियाँ इक दीन॥
इक दुनियाँ इक दीन दोऊ को राखै राजी।
सब की मिलै मुराद गैब की नौबति बाजी॥
हाथ जोरि मुहताज सिकन्दर रहते ठाढ़े।
हुकुम बजावहि भूप जबाँ से जो कछु काढ़े॥
चलै फहम की फौज दरोग की कोट ढहाई।
बेदावा तहसील सबुर कै तलब लगाई॥
पलटू ऐसी साहिबी साहिब रहै तबीन।
दुई पासाही फकर की इक दुनियाँ इक दीन॥

शब्दार्थ—पासाही= पास, लिहाज, ख़याल, शील-संकोच, मर्यादा का ध्यान। फकर= फ़कीर, त्यागी, संत। दुनिया= संसार। दीन= धर्म। मुराद= कामना, अभिलाषा। गैब= परोक्ष, अनुपस्थित, अदृश्य। नौबत= मंगलसूचक बाजा। मोहताज= मुहताज, दीन। सिकंदर= बादशाह। जबाँ= जबान, जीभ।

फहम= फ़हम, समझ, ज्ञान। दरोग= झूठ, असत्य। बेदावा= अधिकार-शून्य भाव। तहसील= वसूली, उगाही, लोगों से रुपये लेने की क्रिया। सबुर= सब्र, संतोष, धैर्य। तलब= खोज, इच्छा, पाने की इच्छा। साहिबी= साहबी, प्रभुता। साहिब= साहेब, श्रेष्ठ, परमात्मा। तबीन= ताबेदार, सेवक।

भावार्थ—संतों को संसार और धर्म, दोनों की मर्यादाओं का पालन करने का ध्यान रखना होता है। संत को चाहिए कि वह दुनियादारी को भी प्रसन्न रखे और धर्म-सम्प्रदाय के लोगों को भी। जब दीन और दुनिया—दोनों के लोगों की इच्छाएं पूरी होती हैं, तब ग़ैब की नौबत बजती है—अदृश्य की तरफ से, कारण-कार्य-व्यवस्था की तरफ से सफलता का सहयोग मिलता है। ऐसे सम्यक ज्ञानी के सामने बादशाह भी दीन बनकर हाथ जोड़े सेवा में खड़े रहते हैं। ऐसे संत जो कुछ आज्ञा देते हैं, सम्राट भी उसका अनुसरण करते हैं। ऐसे संत की ज्ञान की सेना चलती है। वे असत्य का किला तोड़ देते हैं। उनकी अधिकार-रहित वसूली होती है। वे संतोष पाने की इच्छा रखते हैं। यथाप्राप्त में संतुष्ट रहते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि जिस फकीर का ऐसा त्यागमय प्रभुत्व है, उसकी सेवा सत्य करता है। फकीर को दोनों तरफ अपना ध्यान रखकर उनके साथ शील का व्यवहार करना होता है—एक तरफ संसार का और दूसरी तरफ धर्म का।

विशेष—फकर को, फक़ीर को, संत को दो पासाही, दो पास, दो मर्यादा का, दो शील का पालन करना होता है—एक दीन का और एक दुनिया का। दुनिया के लोगों को नहीं खिझाना है और दीन के लोगों को भी नहीं खिझाना है। यथासंभव दोनों को संतुष्ट रखने का प्रयत्न करना चाहिए। जब संतों से सबको संतोष मिलता है तब गैब की नौबत बजती है, अदृश्य का डंका बजता है। प्रकृति की तरफ से उसे सहयोग मिलता है। जिस संत की फहम की फौज चलती है, ज्ञान की सेना चलती है; जो दरोग का, झूठ का किला ढहा देते हैं; जो अधिकार शून्य एवं निष्काम तथा निर्मान बनकर निर्वाह लेते हैं, जिनकी तहसील बेदावा है, वे सब तरफ संतोष में जीते हैं। जिनकी ऐसी साहिबी है, जिनका इस प्रकार संतोष का प्रभुत्व है, उनके पीछे तो साहिब तबीन रहता है, स्वामी ताबेदार रहता है, खुदा सेवकाई करता है। कामना शैतान है, निष्कामता भगवान है। सकामी से पीछे शैतान घूमता है, उसे परेशान करता है और निष्कामी के पीछे भगवान घूमता है और वह उसकी सेवा करता है। कबीर साहेब की साखी है—

यह मन तो निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।
पीछे पीछे हरि फिरें, कहैं कबीर कबीर॥

कुंडलिया-134

चोर मूँसि घर पहुँचा मूरख पहरा देइ॥
मूरख पहरा देइ भोर भये आपुइ रोवै।
राँध परोसी चोर माल धरि गाफिल सोवै॥
सुनहु साहु धनवंत सबै सम्पत्ति के घाती।
नहिं कीजै बिस्वास जागत रहिये दिन राती॥
दिन दिन बढ़ती होइ आन को चित्त न दीजै।
सबसे रहिये दूर केहू को मित्र न कीजै॥
पलटू जो ऐसे रहै द्रव्य कोऊ नहिं लेइ।
चोर मूँसि घर पहुँचा मूरख पहरा देइ॥

शब्दार्थ—मूंसि= मूसि, चुराकर। राँध परोसी= आसपास के लोग—मन-इन्द्रियां। घाती= दावं लगाने वाले, अपहरणकर्ता। आन= अन्य।

भावार्थ—चोर धन चुराकर अपने घर पहुंच गया और मूर्ख पहरा देता रह गया—मन के विकार भीतर-भीतर सद्गुण-धन को चुरा लेते हैं और भोले साधक समझते हैं कि हम सावधान साधक हैं। चोरी हो जाने पर घर का मालिक सुबह होने पर जब अपने घर की चोरी समझ पाता है तब स्वयं रोता है—साधक जब अपने मन के विकारों की वृद्धि देखता है तब स्वयं पश्चाताप करता है। आसपास के लोग चोर हैं, ऐसी स्थिति में माल रखकर असावधानी में सोयेगा तो चोरी होगी ही—मन-इन्द्रियां साथ में हैं जो ज्ञान-धन को चुराने वाले हैं। इनके सथ रहकर जो असावधान होगा, वह धोखा खायेगा ही। हे संपत्ति वाले धनी लोगो ! सुनो, सब मनुष्य संपत्ति को लूटने के दावं में रहते हैं। इसलिए किसी पर विश्वास मत कीजिए, अपितु अपनी संपत्ति की सुरक्षा के लिए रात-दिन जागते रहिये। यदि तुम दूसरी तरफ मोह न करो, तो तुम्हारे आत्मज्ञान धन की रात-दिन बढ़ोत्तरी होगी—शांति बढ़ती जायेगी। सबसे अलग रहो। किसी को मित्र न बनाओ। पलटू साहेब कहते हैं कि जो इस प्रकार सबसे निर्मोह रहता है, उसका आत्मज्ञान कोई चुरा नहीं सकता। परंतु भोले मनुष्य समझते हैं कि हम साधना-भजन कर रहे हैं और भीतर-भीतर मन हृदय-घर से सद्गुण-धन चुरा ले जाता है।

कुंडलिया-135

पलटू ऐसे दास को भरम करै संसार॥
भरम करै संसार होइ आसन से पक्का।
भली बुरी कोउ कहै रहै सहि सबका धक्का॥
धीरज धै संतोष रहै दृढ़ ह्वै ठहराई।
जो कुछ आवै खाइ बचै सो देइ लुटाई॥
लगै न माया मोह जगत की छोड़ै आसा।
बल तजि निरबल होय सबुर से करै दिलासा॥
काम क्रोध को मारि कै मारै नींद अहार।
पलटू ऐसे दास को भरम करै संसार॥

शब्दार्थ—दास= ज्ञानी, संत। भरम= आश्चर्य। सबुर= सब्र, संतोष। दिलासा= सांत्वना, ढाढ़स।

भावार्थ—पलटू साहेब कहते हैं कि ऐसे ज्ञानी संत को देख-सुनकर संसार के लोग आश्चर्य करते हैं। जो आसन में पक्का है; सबकी भली-बुरी सुनकर और सबकी ठोकर सहकर निर्विकार भाव से रहता है; धैर्य रखता है, संतोष रखता है और दृढ़ होकर अपने में स्थिर रहता है। जो कुछ धन आता है, उसे स्वयं खाता एवं उपयोग में लाता है और शेष को दूसरों की सेवा में लगाता है। उसको किसी का माया-मोह नहीं लगता और वह संसार के भोगों की कामनाएं छोड़ देता है। वह सारी शक्ति का अहंकार त्यागकर निर्मान और निष्काम हो जाता है। वह संतोष रखकर अपने में स्थिरता रखता है। वह काम-क्रोध सर्वथा जीत लेता है और भोजन तथा नींद पर संतुलन कर लेता है। पलटू साहेब कहते हैं कि ऐसे ज्ञानी संत को देख-सुनकर संसार के लोग आश्चर्य करते हैं।

विशेष—ऊपर उत्तम संत की रहनी बतायी गयी है। संसार के लोग काम-क्रोध में उलझे हैं। उनको उक्त प्रकार के लोगों को देखकर आश्चर्य होना स्वाभाविक है।

कुंडलिया-136

बूझि समुझि ले बालके पाछे तौ सिर खोलु॥
पाछे तौ सिर खोलु बचा तुम सुनौ फकीरी।
हेलुवा जूती एक नाहिं आवै दिलगीरी॥

रूखा सूखा खाउ मिलै जो गम का टुकड़ा।
फीका कड़ुवा नाहिं स्वाद सब छोड़ौ झगड़ा॥
हक हलाल वह जानु सबर से बैठे आवै।
खाना वही हराम किसी से माँगन जावै॥
पलटू वह घर राम का बच्चा तू जनि बोलु।
बूझि समुझि ले बालके पाछे तौ सिर खोलु॥

शब्दार्थ—बालके= बालक, विरक्त होने की इच्छा वाला। बचा= बच्चा, पुत्र, बेटा। दिलगीरी= उदासी, दुख (दिलगीर= उदास, दुखी)। गम= ग़म, संतोष। हक= अधिकार। हलाल= ईमानदारी से पाया हुआ। सबर= सब्र, संतोष। हराम= त्याज्य।

भावार्थ—(गृह त्यागकर विरक्त होने की इच्छा वालों से पलटू साहेब कहते हैं) हे बालक ! पहले वैराग्य की दशा को समझ-बूझ ले। इसके बाद सिर खोलकर विरक्त होने का काम कर। हे बच्चा ! तुम फकीरी की बातें सुनो। चाहे कहीं हलुआ खाने को मिले चाहे कहीं जूते खाने पड़े, मन में उदासी न आये। जो संतोष की रूखी-सूखी रोटी मिल जाय, उससे निर्वाह कर ले। फीका और कड़वा की फिक्र छोड़ दे। स्वाद के सारे झगड़े को छोड़ दे। जो अपने आसन पर बैठे-बैठे संतोष से आ जाय, वह न्यायपूर्वक और अपने अधिकार का है। किसी से मांगकर खाना हराम का खाना है, इसलिए वह त्याज्य है। पलटू साहेब कहते हैं कि हे वैराग्य लेने की इच्छा वाले बच्चे ! विरक्ति की रहनी राम का घर है—अंतर्मुख स्थिति है। उसको पाना है तो सारा विवाद छोड़ दे। इसलिए हे बालके ! समझ-बूझकर गृह त्याग करना।

कुंडलिया-137

पलटू नीच से ऊँच भा नीच कहै न कोय॥
नीच कहै ना कोय गये जब से सरनाई।
नारा बहि कै मिल्यो गंग में गंग कहाई॥
पारस के परसंग लोह से कनक कहावै।
आगि मँहै जो परै जरै आगै होइ जावै॥
राम का घर है बड़ा सकल ऐगुन छिपि जाई।
जैसे तिल को तेल फूल संग बास बसाई॥

भजन केरे परताप तें तन मन निरमल होय।
पलटू नीच से ऊँच भा नीच कहै न कोय॥

शब्दार्थ—नारा= नाला, गंदा नाला।

भावार्थ—जीवन सुधर जाने पर पतित मनुष्य पावन हो जाता है, तब उसे कोई नीचा नहीं कहता। जब मनुष्य विवेकवान सद्गुरु की शरण में मन, वाणी तथा कर्म से समर्पित हो जाता है, तब ऊंचा उठ जाता है। गंदा नाला बहकर जब गंगा नदी में मिल जाता है, तब वह गंगा कहलाता है। लोहा पारस पत्थर से छू जाने पर सोना कहलाता है। जो वस्तु आग में पड़ती है वह उसमें जलकर आग हो जाती है। अंतर्मुखता का घर बड़ा है, अतएव जो मनुष्य अंतर्मुख हुआ उसके सारे दुर्गुण लुप्त हो जाते हैं। देखो, तिल का तेल सुगंधित फूल का साथ करने से कीमती हो जाता है। आत्मशोधन के प्रताप से तन-मन निर्मल हो जाते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि जब मनुष्य नीच कर्म छोड़कर उच्च कर्म करने लगता है तब उसको कोई नीच नहीं कहता।

कुंडलिया-138

हस्ती बिनु मारे मरै करै सिंह को संग॥
करै सिंह को संग सिंह की रहनी रहना।
अपनो मारा खाय नहीं मुरदा को गहना॥
नहिं भोजन नहिं आस नहीं इन्द्री की तिष्टा।
आठ सिद्धि नौ निद्धि ताहि को देखत बिष्टा॥
दुष्ट मित्र सब एक लगै ना गरमी पाला।
अस्तुति निन्दा त्यागि चलत है अपनी चाला॥
पलटू झूठा ना टिकै जब लगि लगै न रंग।
हस्ती बिनु मारे मरै करै सिंह को संग॥

शब्दार्थ—तिष्टा=तृष्णा, इच्छा, चाह। विष्टा= मल। रंग= वैराग्य की गहराई।

भावार्थ—यदि हाथी सिंह का साथ करता है तो उसे बिना मारे मरना है—उसे कोई अन्य मारने नहीं आयेगा, सिंह उसे स्वयं मारकर खा जायेगा।

अतएव तुम स्वयं सिंह बन जाओ, जिससे तुम्हें कोई बिगाड़ न सके। तात्पर्य है कि मोह-माया की कायरता रखकर अपना उद्धार नहीं कर सकते हो। सिंह स्वयं जानवर को मारकर खाता है, अन्य का मारा हुआ मुरदा नहीं खाता। तुम यदि कल्याण चाहते हो, तो मन-इन्द्रियों के भोगों की आशा-तृष्णा तो छोड़ ही दो, भोजन-वस्त्र के लिए भी अधीर न रहो। प्रारब्धानुसार मिलते रहेंगे। वैराग्यवान आठ सिद्धियों और नौ निद्धियों (खजानों) को मल के समान देखता है। मस्त फकीर के लिए वैरी और मित्र एक समान हैं। वह सबसे समता का बरताव करता है। वह ठंडी-गरमी को सहन कर समान भाव में जीता है। वह किसी की स्तुति-निन्दा नहीं करता है। यदि कोई उसकी स्तुति-निन्दा करता है, तो वह उन पर ध्यान नहीं देता। वह अपनी अंतर्मुखता की रहनी में चलता है। पलटू साहेब कहते हैं कि असत्य टिक नहीं सकता। परंतु जब तक ज्ञान-वैराग्य का भाव गहरा नहीं होता, तब तक असत्य ही सत्य जान पड़ता है। अतएव कायर हाथी न बनो, वीर सिंह बनो। मोह-माया की कायरता त्यागकर वैराग्य-वीर बनो।

कुंडलिया-139

स्वाँती का जल एक है अपनी अपनी खानि॥
अपनी अपनी खानि सीप से मोती कहियै।
हीरा होइ हिरंज सीस गजमुक्ता लहियै॥
केरा परै कपूर बेन तें लोचन ब्याला।
अहि मुख जहर समान उपल तें लोह कराला॥
गौ लोचन गौ सीस मिरग मद नाभि तें जानौ।
भिन्न भिन्न गुन होय नीर एकहि पहचानौ॥
पलटू खामिंद एक है निसचै प्रेम प्रधान।
उपजै बस्तु सुभाव तें अपनी अपनी खानि॥

शब्दार्थ—स्वाँती= स्वाति नक्षत्र। खानि= खान, उत्पत्ति स्थान। हिरंज= कोयला। बेन= बांस। लोचन= बंसलोचन। ब्याला= ब्याल, सूर्य। उपल= पत्थर। खामिंद= खाविंद, पति, स्वामी, मालिक, आत्मा।

भावार्थ—स्वाति नक्षत्र का जल तो एक समान है, परन्तु उसकी बूंद भिन्न-भिन्न उत्पत्ति स्थान में भिन्न-भिन्न रूप में बन जाती है; जैसे सीप

में मोती, कोयला में हीरा, हाथी के मस्तक में गजमुक्ता, केला में कपूर, बांस में बंसलोचन, सांप में विष, पत्थर में कठोर लोहा, गौ में गौलोचन तथा मृग की नाभि में कस्तूरी बन जाती है। स्वाति की बूंद तो एक समान जल ही है। पलटू साहेब कहते हैं कि वैसे ही सबके शरीर में रहने वाले आत्मा रूपी स्वामी तो एक समान हैं, परन्तु भिन्न संगत पाकर भिन्न-भिन्न विषय वस्तुओं में प्रेम उत्पन्न होता है और मनुष्य वैसे ही भिन्न-भिन्न स्थितियों वाले हो जाते हैं। अपनी-अपनी उत्पत्ति के स्थान में वस्तु अपने स्वभाव से उत्पन्न होती है।

विशेष—स्वाति नक्षत्र की जल-बूंद से अनेक स्थानों में अनेक रूप में उत्पन्न होने की बात बतायी जाती है। यह कहावत है। इसमें कितना सच है और कितना केवल कहावत है, यह अनुसंधान का विषय है। हो सकता है पूरी कहावत हो। जिसके लिए कहावत है वह सच है कि मनुष्य भिन्न-भिन्न संगत पाकर वैसे ढल जाता है। अतएव सदैव अच्छी संगत करना चाहिए।

कुंडलिया-140

भक्ति बीज जब बोवै निसि दिन करै बिबेक॥
निसि दिन करै बिबेक लागि तब निकरन साखा।
डार पात बहु फूल जतन से जिन ने राखा॥
हरि चरचा से सींचि ज्ञान कै बाँधै बेड़ा।
पहुँचै सोर पताल खात संतन कै खेड़ा॥
सोभित बृच्छ बिसाल मीठ फल लटकन लागे।
बिस्वास सोई रखवार बैठि कै पहरा जागै॥
पलटू यहि बिधि जोगवै उपजै ज्ञान बिसेख।
भक्ति बीज जब बोवै निसि दिन करै बिबेक॥

शब्दार्थ—बेड़ा= बाड़, रक्षक दीवार। सोर= जड़। खात= खाद। खेड़ा= गांव, समाज। जोगवै= रक्षा करे। बिसेख= विशेष।

भावार्थ-जब साधक भक्ति के बीज हृदय में बोवे, तब रात-दिन आत्मा-अनात्मा का विवेक जाग्रत रखे। फिर तो भक्ति का पौधा उगकर उसमें अनेक शाखाएं निकलने लगेंगी। जिन्होंने भक्ति को यत्नपूर्वक सुरक्षित रखा है, उनके भक्ति-वृक्ष में डाल, पत्ते, फूल, फल आदि फैलने लगते हैं।

आत्मज्ञान की चर्चा से भक्ति-वृक्ष को सींचे और ज्ञान से उसकी बाड़ बांधे। फिर तो संतों के समाज में बैठ-बैठकर और सेवा की खाद डालने से उसकी जड़ पाताल—बहुत गहरे में पहुंच जायेगी। जब भक्ति-वृक्ष शोभायमान होकर संपन्न रूप से खड़ा होता है, तब उसमें दया, क्षमा, शील, संतोष, शांति आदि मीठे फल लटकने लगते हैं। आत्मकल्याण में दृढ़ विश्वास ही उसका रखवाला है जो बैठकर सावधानी से पहरा देता रहता है। पलटू साहेब कहते हैं कि इस प्रकार भक्ति की रक्षा करे तो उच्चतम ज्ञान पैदा होता है। अतएव साधक जब भक्ति के बीज बोवे तब रात-दिन आत्मा-अनात्मा का विवेक करता रहे।

कुंडलिया-141

पलटू सरबस दीजिये मित्र न कीजै कोय॥
मित्र न कीजै कोय चित्त दै बैर बिसाहै।
निस दिन होय बिनास ओर वह नाहिं निबाहै॥
चिन्ता बाढ़ै रोग लगा छिन छिन तन छीजै।
कम्मर गरुआ होय ज्यों ज्यों पानी से भीजै॥
जोग जुगत की हानि जहाँ चित अंतै जावै।
भक्ति अपनी जाय एक मन कहूँ लगावै॥
राम मिताई ना चलै और मित्र जो होय।
पलटू सरबस दीजिये मित्र न कीजै कोय॥

शब्दार्थ—बिसाहे = खरीदे, मोल ले। ओर = आरंभ, मित्रता की शुरुआत। कम्मर = कंबल। राम मिताई = आत्माराम में स्थिति।

भावार्थ - पलटू साहेब कहते हैं कि सर्वस्व भले दो, परंतु किसी से मोहमय मित्रता न करना। किसी से मोहमय मित्रता करना तो अपना मन उसके हाथ बेचकर पीछे वैर बढ़ाना है। मन अनात्म पदार्थ में लगाने से रात-दिन अपना पतन होता है। वह मित्र मित्रता की शुरुआत तो कर देगा, परंतु उसको आगे निभा नहीं पावेगा। किसी में मोह करने से अपने मन में चिंता का रोग लग जाता है और वह बढ़ता जाता है। इसके परिणाम में अपना शरीर क्षण-क्षण क्षीण होता है। कंबल जैसे-जैसे पानी से भीगता है वैसे-वैसे वजनदार होता है। इसी प्रकार संसार में जितनी मोह-माया बढ़ाओ, उतना अपना मन बंधन में पड़ता है। जहां अपना मन किसी अनात्म पदार्थ में लगा

कि वहां अपनी योग-युक्ति एवं अंतर्मुखता की साधना में हानि होगी। मन तो एक है। जब उसको कहीं अलग लगायेंगे, तब आत्मानुराग की भक्ति छूटेगी। अतएव यदि मेरा कोई अन्य मित्र है, तो राम-मिताई नहीं चलेगी। मन अनात्मा में लगाने से आत्माराम की स्थिति कैसे रहेगी? इसलिए पलटू साहेब कहते हैं कि बदले में सब कुछ देकर भी अनात्म वस्तु की मोह-मिताई न करें।

कुंडलिया-142

ख्वा टूटै ख्वा फाटै कहिये परदा खोल॥
कहिये परदा खोल रवा न बाकी कीजै।
बात कहै दुइ टूक मैल ना पानी पीजै॥
उन से रहिये दूरि बड़े वे लोग अधरमी।
तुरतहि देइँ जवाब बचै न सरमा सरमी॥
कहैं मित्र की बात करैं दुस्मन की करनी।
ना कीजै बिस्वास करैं कैसौ ब्योहरनी॥
पलटू छूरी कपट की बोलैं मीठे बोल।
ख्वा टूटै ख्वा फाटै कहिये परदा खोल॥

शब्दार्थ—ख्वा=चाहे। रवा=छोटा हिस्सा, तनिक। मैल=विकार, गंदा। ब्योहरनी=बरताव।

भावार्थ—चाहे टूटे चाहे फाटे, स्पष्ट बात कहिये। कहने में कण मात्र भी बचाकर न रखिये। बात दो टूक कहना चाहिए। मैला पानी न पीजिए। घपलेबाजी में न रहिए। जो लोग सत्य-सदाचार छोड़कर रहते हैं, उनसे दूर रहिए। उनको तुरंत जवाब दे दो। शर्माशर्मी में पड़े रहने से शांति नहीं मिल सकती। जो लोग मित्रता जैसी बात करते हैं और शत्रुता का आचरण करते हैं, वे चाहे जैसा मीठा बरताव करें, उन पर विश्वास न कीजिए; क्योंकि वे अंत में धोखा देने वाले हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि जो लोग मन में कपट की छूरी रखते हैं और ऊपर से मीठी बातें करते हैं, उनसे स्पष्ट बात कह दीजिए, परिणाम में चाहे टूटे या फाटे।

विशेष—साफ कहने के परिणाम में अगले आदमी से सम्बन्ध चाहे टूट जाय अथवा उसके मन का भ्रम फटकर वह सही हो जाय, यह भाव लगता है।

14. आत्मज्ञान

कुंडलिया-143

परदा अंदर का टरै देखि परै तब रूप॥
देखि परै तब रूप मिटै सब मन का धोखा।
परै सबद टकसार बहुत चोखे से चोखा॥
जोग-जीत जब होय भूमिका ज्ञान की पावै।
लागै सहज समाधि सक्ति से सीव बनावै॥
महल करै उँजियार तेल बिनु दीपक बाती।
परमानन्द अनन्द भजन में दिन औ राती॥
पलटू सूझै है नहीं जहाँ अधोमुख कूप।
परदा अंदर का टरै देखि परै तब रूप॥

शब्दार्थ—परदा= अविद्या, अज्ञान। रूप= स्वस्वरूप, चेतन आत्मा। टकसार= प्रामाणिक, सत्य। अधोमुख कूप= अविद्या, अज्ञान।

भावार्थ—जब मन की अविद्या मिट जाती है, तब अपने चेतन स्वरूप का बोध होता है। फिर मन का धोखा मिट जाता है जो बाहर से कुछ पाने की आशा है। टकसार के शब्द खरे से खरे होते हैं—निर्णय वचन स्पष्ट होते हैं। उनके द्वारा यथार्थ स्वरूपज्ञान होता है। जब योगाभ्यास से—मनोनिग्रह से साधक मन पर विजयी हो जाता है, तब आत्मज्ञान की भूमिका पाता है। फिर तो सहज समाधि लग जाती है—अपने शुद्ध स्वरूप चेतन में विश्राम मिल जाता है। वह अपनी साधना शक्ति से शिव हो जाता है—कल्याण स्वरूप हो जाता है। लौकिक तेल, दीपक और बत्ती के बिना हृदय-महल में आत्मज्ञान का उजियाला हो जाता है। ऐसा साधक रात-दिन आत्म-चिंतन एवं आत्मस्थिति के परमानंद में आनंदित रहता है। जिनके हृदय में अधोमुख कुआं है-अविद्या-अंधकार है, उन्हें अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। जब वह सत्संग-विवेक से अविद्या का परदा फाड़ देता है तब अपने आत्मस्वरूप का साक्षात्कार होता है।

कुंडलिया-144

समुझाये से क्या भया जब ज्ञान आपु से होय॥
ज्ञान आपु से होय हंस को कौन सिखावै।
छीर करत है पान नीर को वह अलगावै॥

अललपच्छ इक रहै गगन में अंडा देवै।
बच्चा सुरति सम्हार उलटि कै फिर घर लेवै॥
केहरि के सिसु कँहै कौन उपदेश बतावै।
कुंजर देहि गिराइ बात में विलम्ब न लावै॥
पलटू सतगुरु रहनि को परखि लेय जो कोय।
समुझाये से क्या भया जब ज्ञान आपु से होय॥

शब्दार्थ—अललपच्छ= अलल नाम का पक्षी। कँहै= को। कुंजर= हाथी।

भावार्थ—समझाने से ज्ञान हुआ तो क्या हुआ, जब अपने आप से ज्ञान हो, तब उसकी विशेषता है। हंस को नीर-क्षीर अलग करने की सीख कौन देता है, वह स्वभाव से पानी को छोड़कर केवल दूध पी लेता है। अलल पक्षी आकाश में उड़ते-उड़ते अंडा दे देता है और आकाश में अंडा फूटकर उसमें से पक्षी निकल आता है और अपनी माता के साथ उड़ने लगता है। सिंह के बच्चे को कौन सीख देता है, वह हाथी को बात ही बात में मारकर गिरा देता है, देर नहीं करता। पलटू साहेब कहते हैं कि पूर्ण सद्गुरु की रहनी को जो परख लेता है, वह स्वयं संसार दृश्य को छोड़कर अपने आप में शांत हो जाता है। समझाने से ज्ञान हुआ तो क्या हुआ, जब स्वयं में ज्ञान जग जाय तब विशेषता है।

विशेष—हंस का नीर-क्षीर विवेक और अललपक्षी का आकाश में अंडा देना, दोनों बात को समझाने की कहावतें हैं। सद्गुरु के उपदेश की हर साधक को आवश्यकता है, परन्तु उसकी अपनी पकड़ भी आवश्यक है।

कुंडलिया-145

ज्ञान समाधि जाको मिली सो क्या लावै ध्यान॥
सो क्या लावै ध्यान ध्यान दुतिया कहवावै।
आप भया पासाह कौन के मुजरे जावै॥
भजनी से भा भजत कौन अब आवै जावै।
लिहा निसाना मारि कौन अब तीर चलावै॥
मन के संकल्प भजन रूप अपनो दरसावै।
जो इहवाँ सो उहाँ संकल्प को दूरि बहावै॥
पलटू लगी सो लगि गई कौन होय हैरान।
ज्ञान समाधि जाको मिली सो क्या लावै ध्यान॥

शब्दार्थ—दुतिया= द्वैत, अनात्म। पासाह= पाशा, बहुत बड़ा अफसर। मुजरे= सलाम-नमस्कार करना। भजनी= भजन करने वाला। भजत= जिसका भजन किया जाय।

भावार्थ—जो साधक सदैव ज्ञान समाधि में है, आत्मलीन है, वह ध्यान क्या लगावे? लोकधारणा के अनुसार तो ध्यान दूसरे का किया जाता है जो अनात्म होता है। जब स्वयं बड़ा अफसर हो गया तब वह किस अन्य का नमस्कार करने जाय? भजन करने वाला जब स्वयं भजन का विषय हो गया, तब वह क्यों आने-जाने की क्रिया में रहे? जब लक्ष्य बेध दिया, तब तीर चलाने की क्या आवश्यकता रह गयी? मन के संकल्प शांत हो जाने पर स्वरूप साक्षात्कार हो जाता है, यही सच्चा भजन है। हे साधक ! जो यहां है वही वहां है—सारा संसार माटी-गोबर तथा कूड़ा-कचड़ा है, अनात्म है, अतएव तुम सारे संकल्पों को दूर फेंक दो, संकल्प शून्य कर दो। पलटू साहेब कहते हैं, जिनकी आत्मज्ञान की अखंड समाधि लग गयी, उनकी निरंतर समाधि है। अब वह क्यों नाक दबाकर ध्यान के लिए हैरान हो? जिसको निरंतर आत्मज्ञान की समाधि की निमग्नता है, वह क्या ध्यान लगावे?

विशेष—यहां ध्यान करने का खंडन नहीं है। साधकों को नित्य एक-अनेक बार ध्यान करना चाहिए। किसी महापुरुष का ध्यान, ज्योति, नाद, बिन्दु, अनाहतनाद के नाम से शरीर में उठती हुई ध्वनि का ध्यान, ये सब क्रिया योग हैं, मन रोकने के आरंभिक साधन हैं; किन्तु ये लक्ष्य नहीं हैं। लक्ष्य तो आत्मलीनता है। वह दृश्यों के अभाव से होती है। यह संकल्प-शून्यता की दशा है। जिस साधक की यह अंतिम दशा हो गयी, वह सब समय समाधि में है। तो भी व्यवहारकाल में संकल्पों का उपयोग होता है। समाधि में संकल्प बंद हो जाते हैं, अतएव निरंतर आत्मलीन साधक को भी समय-समय से पूर्ण संकल्प-शून्य दशा में जाना चाहिए।

कुंडलिया-146

समुझे को समुझावै हीरा आगे पोत॥
हीरा आगे पोत ज्ञानी को मूढ़ बुझावै।
जहवाँ आँधी चलै बेना कै बतास चलावै॥
अटकर सेती अंध डिठियारे राह बतावै।
जैसे पंडित चतुर संत से बाद न आवै॥

सुधा क पीवनहार ताहि को छाछ दिखावै।
जेकरे बाजै तूर तहाँ का डफ्फ बजावै॥
पलटू दीपक का करै जहँ सूरज की जोत।
समुझे को समुझावै हीरा आगे पोत॥

शब्दार्थ—पोत= कांच का छोटा टुकड़ा। बतास= वायु, हवा। अटकर= अटकल, अंदाज। डिठियारे= आंख वाले। बाद= बाज, पीछे हटना, रुकना। सुधा= अमृत। तूर= उत्तम बाजा। डफ्फ= साधारण बाजा, डफला।

भावार्थ—पूर्ण ज्ञानी के सामने अपना ओछा ज्ञान बघारना हीरे के जौहरी के सामने कांच का टुकड़ा दिखाना है। कितने मूर्ख हैं जो अपने अहंकार में पड़कर पूर्ण ज्ञानी को समझाने में लग जाते हैं। जहां आंधी चल रही है, वहां पंखे से हवा झलने का काम व्यर्थ है। यह तो ऐसा ही है कि एक अंधा मनुष्य अपनी अटकल से आंख वाले को रास्ता दिखाने की व्यर्थ चेष्टा करे। ऐसे पंडित होते हैं जो संत के सामने विवाद करने से पीछे नहीं हटते। यह तो अमृत पीने वाले को छाछ पिलाने का व्यर्थ प्रयास है। जिसके दरवाजे पर उत्तम बाजे बज रहे हों, वह डफला बजाने का प्रयास क्यों करे? पलटू साहेब कहते हैं कि जहां सूर्य का प्रकाश फैला है, वहां दीपक का क्या काम है? ज्ञानी के सामने अपना ओछा ज्ञान झाड़ना हीरा के सामने कांच रखना है।

विशेष—परम श्रद्धेय संत पलटू साहेब की अद्‌भुत प्रतिभा एवं काव्यशक्ति थी। वे जो कुछ कहना चाहते हैं उसे सम्यक रूप से काव्य में गुंफित कर देते हैं।

कुंडलिया–147

अपनी अपनी करनी अपने अपने साथ॥
अपने अपने साथ करै सो आगे आवै।
बाप कै करनी बाप पूत कै पूतै पावै॥
जोरू कै जोरुहिं फलै खसम कै खसम कौ फलता।
अपनी करनी सेती जीव सब पार उतरता॥
नेकी बदी है संग और न संगी कोई।
देखौ बूझि बिचारि संग ये जैहैं दोई॥
पलटू करनी और की नहीं और के माथ।
अपनी अपनी करनी अपने अपने साथ॥

शब्दार्थ—जोरू= पत्नी। खसम= पति। नेकी= शुभ कर्म। बदी= बुरे कर्म।

भावार्थ—सब जीवों के साथ उनके अपने कर्म हैं। आदमी जो कुछ करता है, उसी का फल उसके सामने आता है। पिता अपने कर्मों के फल पाता है और पुत्र अपने कर्मों के फल पाता है। इसी प्रकार पत्नी और पति अपने-अपने कर्मों के फल पाते हैं। अपने शुभकर्मों से ही मनुष्य मन के विकारों से छूटकर शांति पाता है। जीव के साथ उसके अच्छे-बुरे कर्म के संस्कार-बीज जाते हैं, अन्य कोई और कुछ उसके साथ नहीं जाता। समझ-बूझ कर देखो कि अपने बनाये शुभाशुभ कर्म ही साथ चलते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि एक की करनी दूसरे के साथ नहीं चलती। सब जीव की अपनी-अपनी करनी ही अपने साथ रहती है।

कुंडलिया-148

सरबंगी जो नाम कै रहनी सहित बिबेक॥
रहनी सहित बिबेक एक करि सब कौ मानै।
खान पियन में जुदा नहीं एकै में सानै॥
लिये रहै मर्जाद तजै ना नेम अचारा।
धर्म सनातन सहित अशुभ शुभ करै बिचारा॥
बोलै सब्द अघोर भजन अद्वैता अंगी।
कारज निर्मल करै सोई पूरा सरबंगी॥
पलटू बाहर कुल धरम भीतर राखै एक।
सरबंगी जो नाम कै रहनी सहित बिबेक॥

शब्दार्थ—सरबंगी= सब में मिला हुआ, मानव एकता का पक्षधर, मस्तमौला संत। अघोर= सरल, जो घोर (कठिन) न हो, मीठा। अंगी= अंगों वाला। अद्वैता अंगी= अद्वैत भाव का आधार लेकर।

भावार्थ—जो सरबंगी नाम से जाने जाते हैं; सबको एक समान मानते हैं, वे भी विवेकपूर्वक अपनी रहनी रखते हैं। वे सब मनुष्यों को एक समान मानते हैं, परन्तु खान-पान में अलग रहते हैं। सर्वभक्षी और मलिन आचरण वालों में अपने को नहीं मिलाते हैं। वे पवित्र आचरण की मर्यादा का पालन करते हैं। वे शुद्ध खान-पान, रहन-सहन आदि के नियम और आचार निभाते हैं। वे अपने नियम-आचार को नहीं त्यागते। अपने पर संयम और दूसरों के

साथ शील का व्यवहार सनातन एवं शाश्वत धर्म है। वे इसको आधार बनाकर शुभ और अशुभ कर्मों का विचार करते हैं और अशुभ का त्यागकर शुभ का व्यवहार करते हैं। वे कोमल वचन बोलते हैं और अद्वैतभाव का आधार लेकर साधना करते हैं—द्वैत अनात्म को त्यागकर अपने केवल स्वरूप में स्थित होते हैं। जो अपने सभी कर्म निर्मल रखता है, वही पूर्ण सर्बंगी है। पलटू साहेब कहते हैं कि बाहरी व्यवहार में कुलधर्म की मर्यादा का पालन करे और मन में सबको एक समान समझकर सबके साथ समता का व्यवहार करे। जो सरबंगी नाम से जाने जाते हैं वे विवेकपूर्वक व्यवहार रखते हैं।

15. शरणाधीनता और दृढ़ता

कुंडलिया–149

करम धरम सब छाड़ि कै पड़े सरन में आय॥
पड़े सरन में आय तजी बल बुधि चतुराई।
जप तप नेम अचार नहीं जानौं कछु भाई॥
पूजा ज्ञान न ध्यान तिलक नहिं देवै जानौं।
जोग जुगत कछु नहीं नहीं तीरथ ब्रत मानौं॥
एक भरोसा पाय दिया सिर भार लराई।
पंक्षी को पछ गया रहा इक नाम सहाई॥
पलटू मैं जियतै मुवा नाम भरोसा पाय।
करम धरम सब छाड़ि कै पड़े सरन में आय॥

शब्दार्थ—लराई= गिरा दिया। पछ= पंख। नाम = सतनाम, आत्मज्ञान।

भावार्थ—दुनिया के सारे कर्म–धर्म छोड़कर सद्गुरु की शरण में जाकर समर्पित हो गया। मैंने अपनी शक्ति और बुद्धि की चतुरता छोड़ दी। हे भाई! जप, तप, नियम, आचार आदि मैं कुछ नहीं जानता हूं। न पूजा करना जानता हूं, न ज्ञान–ध्यान जानता हूं। यहां तक कि तिलक–चंदन लगाना भी नहीं जानता हूं। मैं कोई योग और युक्ति भी नहीं जानता हूं। तीर्थ–व्रत तो मानता ही नहीं हूं। एक सद्गुरु का भरोसा पाकर मन के अहंकार का बोझा सिर से गिरा दिया। मन–पक्षी के राग–द्वेष के पंख नष्ट हो गये। अब केवल सतनाम के अर्थस्वरूप आत्मज्ञान का सहारा रहा। पलटू साहेब कहते हैं कि आत्मज्ञान

का आधार पाकर मैं जीते जी मर गया—अहंकार-शून्य हो गया। अब सब सांसारिक कर्म-धर्म छोड़कर सद्गुरु की शरण में पड़ गया।

कुंडलिया-150

जौन काछ कौ काछिये नाच नाचिये सोय॥
नाच नाचिये सोय तबै तौ सोभा पावै।
बिना काछ कै नाच भाँड़ कै स्वाँग बनावै॥
आदि अंत मधि माहिं जो हरि कौ बर्त निबाहै।
जीवन ताकौ सुफल निगम दिन राति सराहै॥
बात जीव के संग नाहिं जो हारि ललकरी।
हरि भक्तन की रीति टेक पकरी सो पकरी॥
पलटू काछ औ नाच से तनिक न तजविज होय।
जौन काछ कौ काछिये नाच नाचिये सोय॥

शब्दार्थ—काछ= वेष, बाना। निगम= वेद। ललकरी= हौसला, उत्साह, सत्य प्रतिज्ञा। तजविज= तजावुज़, सीमा का उल्लंघन।

भावार्थ—जैसा वेष धारण करे, वैसा बरताव करे, तभी वेष की शोभा है। वेष उत्तम और आचरण खराब, यह तो भांड़ का स्वांग बनाने जैसा है। जो साधक आरंभ से मध्य और अंत तक ज्ञान की प्रतिज्ञा निभाता है, उसी का जीवन सफल होता है। वेद उसी की रात-दिन प्रशंसा करते हैं। जो साधक उत्साह नहीं छोड़ता, उसकी उसी के साथ सत्यप्रतिज्ञा रहती है। हरिभक्तों-ज्ञानियों की यही रीति है कि वे सत्यपक्ष पकड़ लेते हैं। उसे कभी नहीं छोड़ते। पलटू साहेब कहते हैं कि हे साधको ! वेष की मर्यादा से आचरण का थोड़ा भी सीमा का उल्लंघन नहीं होना चाहिए। जैसा वेष बनावे, वैसा आचरण करे।

कुंडलिया-151

साधु को ऐसा चाहिए ज्यों सिसु अड़नि अड़ै॥
ज्यों सिसु अड़नि अड़ै टेक अपनी नहिं टारै।
पुरजे पुरजे कटै कोऊ कितनौ जो मारै॥
धरन धरी सो धरी वही हरि के ब्रतधारी।
धोये तनिक न छुटै रंग जब चढ़ा करारी॥

धरन नीबाहै और साँच में दाग न लागै।
ज्यों पतिबर्ता नारि डिगै ना लाख डिगावै॥
पलटू लोह की मेख ज्यों पत्थर बीच गड़ै।
साधु को ऐसा चाहिये ज्यों सिसु अड़नि अड़ै॥

शब्दार्थ—सिसु=शिशु, बालक। निगम=वेद। अड़नि=हठ, अपने निश्चय में दृढ़। धरन=धारणा, निश्चय। करारी=पक्का। मेख=भाला की नोक।

भावार्थ—जैसे छोटा बालक अपने निश्चय में हठ करके अडिग रहता है, वैसे ही साधु को चाहिए कि वह अपने त्याग में दृढ़ रहे। साधु अपनी पवित्र रहनी का पक्ष न छोड़े। कोई कितना मारे, यहां तक शरीर का एक-एक अंग कट जाय, तो भी साधु जो अपने त्याग-वैराग्य की धारणा कर ली है, उससे कभी न डिगे। वही ज्ञान व्रत का धारण करने वाला है। जब कपड़े पर पक्का रंग चढ़ जाता है, तब वह धोने पर थोड़ा भी नहीं छूटता। साधु इसी तरह अपने त्याग का निर्वाह करे। वह अपने त्याग की धारणा में दृढ़ रहे और अपने सच्चे त्याग में दाग न लगने दे। जैसे पतिव्रता स्त्री को कोई लाख लालच देकर डिगावे, वह नहीं डिगती, वैसे साधु अपने त्याग से न डिगे। पलटू साहेब कहते हैं कि जैसे लोह का भाला पत्थर में गड़ जाता है, वैसे साधु का त्याग सच्चाई में गड़ जाता है। अतएव साधु अपने त्याग में पक्का रहे।

16. विनय और विनम्रता

कुंडलिया-152

पलटू पूछै हंस से बिनती कै कर जोर॥
बिनती कै कर जोर साच तुम बात बतावौ।
भई साहिबी तोर नर्क से जीव बचावौ॥
अंधा पंगुल लूल सबन कौ मिलै ठिकाना।
इक इक सबके हाथ नाम का द्यो परवाना॥
संत रूप अवतार लियौ परस्वारथ काजा।
चौरासी चौखान सबन के तुम हौ राजा॥
जीव तरै जब जक्त कौ तब तुम बंदीछोर।
पलटू पूछै हंस से बिनती कै कर जोर॥

शब्दार्थ—हंस= विवेकी संत। सार्बि= स्वामित्व, प्रभुता। द्यो= दीजिए। परवाना= प्रमाण पत्र। बंदीछोर= बंधन छुड़ाने वाले।

भावार्थ—पलटू साहेब विवेकी संतों से हाथ जोड़कर विनती करते हुए पूछते हैं कि आप सच्ची बात बतावें। कल्याण क्षेत्र में आपकी प्रभुता है। इसलिए आप जीवों को इस जन्म-मरण के नरक-चक्कर से बचावें। अंधे, पंगुले, लूले आदि सबको आत्मशांति मिले। इसलिए इन सभी मनुष्यों के हाथ में आत्मज्ञान एवं मोक्ष का प्रमाण पत्र दीजिए। आपने जीवों का उद्धार करने के लिए संत रूप में जगत में अवतार लिया है। चारों खानि रूप चौरासी चक्र के बंधन छुड़ाने वाले आप सर्वेसर्वा अधिकारी सम्राट हैं। जब आपके द्वारा संसार के जीव बंधनों से मुक्त हों तब आप बंधन छुड़ानेवाले कहला सकते हैं। इस प्रकार पलटू साहेब विवेकी संतों से हाथ जोड़कर विनयावनत हो पूछते हैं।

विशेष—श्रद्धेय संत पलटू साहेब कवि-हृदय हैं। इसलिए वे भावुकता में भी बातें करते हैं। यहां भावुकता का ही प्रकाशन है। कोई संत अपने दुखों से छूटने के लिए साधना करता है और दूसरों को भी उसका रास्ता बताता है। जो उनकी बात मानकर साधना में चले उसका दुख दूर होगा। कोई संत ऐसा समर्थ नहीं है कि मनुष्य की पात्रता बिना उसका उद्धार कर दे।

कुंडलिया-153

मन महीन करि लीजिए जब पिउ लागै हाथ॥
जब पिउ लागै हाथ नीच ह्वै सबसे रहना।
पच्छा पच्छी त्यागि ऊँच बानी नहिं कहना॥
मान बड़ाई खोय खाक में जीते मिलना।
गारी कोउ दै जाय छिमा करि चुपके रहना॥
सबकी करै तारीफ आप को छोटा जानै।
पहिले हाथ उठाय सीस पर सबको आनै॥
पलटू सोई सुहागिनी हीरा झलकै माथ।
मन महीन करि लीजिये जब पिउ लागै हाथ॥

शब्दार्थ—पिउ= पति, प्रियतम, आत्मा। ऊंच बानी= अहंकार पूर्ण वचन। सोहागिनी= पतिवाली, आत्मबोध सम्पन्न। हीरा= आत्मज्ञान। माथ= जीवन की ऊंची रहनी।

भावार्थ—हे मनोवृत्ति ! जब आत्मा रूपी पति मिल जाय–आत्मज्ञान हो जाय, तब अपने मन को विनम्र कर सबसे नीचे होकर जीवन बिताना। किसी का पक्षपात एवं मोह न करना और कभी अहंकार भरी वाणी न कहना। सारी मान-बड़ाई खोकर जीते जी मिट्टी में मिल जाना—अहंकार-शून्य हो जाना। कोई आपको गाली दे तो उसको पूर्ण क्षमा कर मौन रह जाना। सबको अपने से बड़ा मानकर उनकी प्रशंसा करना और अपने को सबसे छोटा समझना। किसी से मिलने पर पहले अपने हाथों को जोड़कर अपना सिर उसके सामने झुका लेना। पलटू साहेब कहते हैं कि वही मनोवृत्ति आत्म-पति का बोध पाकर सुहागिन है—वही बोधवान है जिसके जीवन की ऊंची रहनी में आत्मज्ञान का हीरा ज्योतित है। अतएव जब साधक को आत्मज्ञान मिल जाय, तब वह अपना मन अत्यन्त विनम्र बना ले।

विशेष—आत्मज्ञान हो जाने पर शरीर का अहंकार मर जाना चाहिए। अपने को सबसे पीछे और नीचे किये बिना कोई परम शांति नहीं पा सकता।

कुंडलिया–154

जोग जुगत ना ज्ञान कछु गुरु दासन को दास।
गुरु दासन को दास सन्तन ने कीन्ही दाया।
सहज बात कछु गहिनि छुड़ाइनि हरि की माया
ताकिनि तनिक कटाच्छ भक्ति भूतल उर जागी।
स्वस्ता मन में आई जगत की भ्रमना भागी॥
भक्ति अभय पद दीन्ह सनातन मारग वाकी।
अविरल ओकर नाम लगै ना कबहीं टाँकी॥
पलटू ज्ञान न ध्यान तप महापुरुष कै आस।
जोग जुगत ना ज्ञान कछु गुरु दासन को दास॥

शब्दार्थ—कटाच्क्ष= कटाक्ष, तिरछी नजर, कृपादृष्टि। भूतल=पृथ्वी पर। स्वस्ता= शांति। अविरल= सघन। टांकी= जोड़, जोड़ने का साधन।

भावार्थ—मेरे पास न योग है और न युक्ति है। मैं तो सद्गुरु के दासों का दास हूं। संतों ने कृपा की और उन्होंने रास्ता दिखाया और उनकी सीधी–

सादी कुछ बातें पकड़ने में आयीं। संतों ने सांसारिक माया-मोह छुड़ा दिया। सद्गुरु-संतों ने कृपादृष्टि से देखा और उनके उपदेश से संसार में भक्तिभाव का प्रचार हुआ। मन में शांति मिली और संसार में भोगों के लिए जो भटकन थी, वह दूर हो गयी। सद्गुरु की भक्ति निर्भय आत्मस्थिति-पद को देने वाली है। उसका पथ सनातन है। आत्मस्थिति में निरंतर विश्राम मिल गया। अब मुझमें कभी विखंडन नहीं होता है। पलटू साहेब कहते हैं कि मैं न ज्ञान जानता हूं और न ध्यान जानता हूं। केवल महान संत पुरुष की भक्ति की आशा है। मेरे पास न योग है, न युक्ति है। मैं सद्गुरु के दासों का दास हूं।

17. मान-बड़ाई

कुंडलिया-155

मान बड़ाई कारने पचि मूआ संसार॥
पचि मूआ संसार जती जोगी संन्यासी।
उनहूँ को है चाह गुफा के भीतर बासी॥
सिद्ध सिद्धई करै पर्भुता कारन जाई।
गोड़ धरावन हेतु महंत उपदेस चलाई॥
राजा रंक फकीर फिरै जो खाक लगाये।
सबके मन में चाह है खुसी बड़ाई पाये॥
पलटू हरि के भक्त से गई पर्भुता हार।
मान बड़ाई कारने पचि मूआ संसार॥

शब्दार्थ—पचि मूआ= अत्यंत पीड़ित, हैरान। जती= यती, त्यागी।

भावार्थ—संसार के लोग मान-बड़ाई पाने के लिए पच-पच कर मरते हैं। त्यागी, योगी, संन्यासी और गुफा के भीतर बैठे सिद्ध कहलाने वाले लोगों को भी प्रतिष्ठा की चाहना लगी है। सिद्ध कहलाने वाले लोग संपत्ति और स्वामित्व पाने के लिए अपनी झूठी सिद्धि दिखाते हैं। अनेक महंत अपने पैर पुजवाने के लिए धर्मोपदेश करने का धंधा करते हैं। राजा हो, दरिद्र हो और चाहे राख लगाये महात्मा वेषधारी हों, सबके मन में मान-बड़ाई की चाहना बनी है। सबको अपनी मान-बड़ाई पाने से प्रसन्नता होती है। पलटू साहेब कहते हैं कि हरि-गुरु की भक्ति से ही प्रभुता हारती है—सच्चे ज्ञान-भक्ति के

आचरण से मान-बड़ाई की कामना नष्ट होती है। अन्यथा संसार के लोग मान-बड़ाई पाने के चक्कर में पच-पचकर मरते ही हैं।

कुंडलिया-156

खुदी खोय को खोवै सोई है दुरबेस॥
सोई है दुरबेस रूह की करै सफाई।
दिल अन्दर दीदार नबी का दरसन पाई॥
बिन बादल बरसात अबर बिन बरसत पानी।
गरमी आतस बिना जबाँ बिन बोलत बानी॥
लामकान बेचून लाहुत को दिल दौड़ावै।
फना को करै कबूल सोई वह काबा पावै॥
पलटू जारै फिकर को रहै जिकर में पेस।
खुदी खोय को खोवै सोई है दुरबेस॥

शब्दार्थ—खुदी= अहंकार। खोय= आदत। दुरबेस= दरवेश, फकीर, त्यागी, संत। रूह= आत्मा। दीदार= दर्शन। नबी= ईश्वर का संदेशवाहक। अबर= अंबर, आकाश। आतस= आतिश, अग्नि। जबाँ= जबान, जिह्वा। लामकान= शून्य। बेचून= बेचूं= उपमारहित, अनुपम। लाहुत= लाहूत, संसार। फना= नाश, नाशवान। फिकर= फिक्र, चिंता। जिकर= जिक्र, चर्चा, सत्संग, आत्मस्मरण। पेस= पेश, आगे।

भावार्थ—जो अपने अहंकार की आदत को खो देता है वही सच्चा फकीर है। अहंकार को मिटाकर अपने आत्मा की शुद्धता करे, तब अपने दिल के अंदर ही आत्मदर्शन पायेगा और तब मानो वह अपने ही भीतर नबी का दर्शन कर लेगा। आत्मा की आवाज ही नबी है। वहां बिना बादल के वर्षा होती है और आकाश के बिना पानी बरसता है। वहां आग के बिना गरमी मिलती है और जबान के बिना वाणी का उच्चारण होता है—आत्म साक्षात्कार हो जाने पर सब प्रकार से आनन्द ही आनन्द हो जाता है। मनुष्य कल्पना में पड़कर शून्य में, किसी अनोखी वस्तु में और संसार में मन दौड़ाता है। वस्तुतः जो सारे उपलब्ध प्रपंच को हर क्षण नष्ट होते देखता है, वह अपने हृदय-काबा में खुदी-खुदा को पा जाता है—आत्मबोध में संतुष्ट हो जाता है। पलटू साहेब कहते हैं कि जो चिंता को भस्म कर सत्संग एवं आत्मचिंतन में तत्पर रहता है और अपने शारीरिक अभिमान को खो देता है, वह सच्चा फकीर है।

कुंडलिया-157

सब कोइ पीवै कूप जल खारी पड़ा समुन्द॥
खारी पड़ा समुन्द बड़े सो काम के नाहीं।
जैसे बड़ी खजूर पथिक को मिलै न छाँहीं॥
भक्त कहावैं बड़े भेष ना खाय को पावैं।
पूजैं नाहीं साध बड़े घर की कहवावैं॥
खान पियन को नाहिं बचन करकसे सुनावैं।
पर्बत बड़े कठोर नजर दूरहि से आवैं॥
पलटू सम्पति सूम की खरचै ना इक बुंद।
सब कोइ पीवै कूप जल खारी पड़ा समुन्द॥

शब्दार्थ—साध= साधु। करकसे= कठोर, कटु।

भावार्थ—सब कोई छोटे कुएं का जल पीते हैं, बड़ा जलाशय समुद्र का जल तो खारा होता है। उसे कोई नहीं पीता। इसलिए केवल बड़ा कहलाने से कोई काम नहीं होता। जैसे खजूर का पेड़ बड़ा होता है, परन्तु पथिक को उसकी छाया नहीं मिलती। कोई बड़ा भक्त कहलाता है, परन्तु उसके घर पर साधुओं को भोजन नहीं मिलता। वे बड़े घरवाले तो कहलाते हैं, परन्तु उनके घर में संतों की सेवा नहीं होती। वे संतों एवं अतिथियों को भोजन-जल तो नहीं देते हैं, प्रत्युत कठोर वचन कहते हैं। पर्वत बहुत बड़े होते हैं। वे दूर से ही दिखाई देते हैं परन्तु वे बड़े कठोर होते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि कंजूस मनुष्य अपनी संपत्ति में से एक छोटा अंश भी नहीं खर्च करना चाहता। विनम्र लोग साधु-संत एवं अतिथियों की सेवा करते हैं, कंजूस नहीं; जैसे कूप का जल सब पीते हैं, खारे समुद्र का जल नहीं।

कुंडलिया-158

बढ़ते बढ़ते बढ़ि गये जैसे बढ़ी खजूर॥
जैसी बढ़ी खजूर पथिक छाया नहिं पावै।
ज्यों ज्यों कै जो फरै ताहि कैसे कोउ खावै॥
पात में काँटा रहै छुवत कै लोहू आवै।
पेड़ सोऊ बेकाम कुवा को धरन बनावै॥
सम्पति में बढ़ि जाय दया बिन भला भिखारी।
जातिहु में बढ़ि जाय भक्ति बिन भला चमारी॥

पलटू सोभा दोऊ की दया भक्ति से पूर।
बढ़ते बढ़ते बढ़ि गये जैसे बढ़ी खजूर॥

शब्दार्थ—फरै= फल लगे। लोहू= रक्त।

भावार्थ—संपत्ति और प्रभुता बढ़ते-बढ़ते बहुत बढ़ गयी जैसे खजूर का पेड़, परंतु खजूर के पेड़ की छाया पथिक के काम नहीं आती है। उसमें फल भी लगे, तो उसको कोई कैसे खाने को पावे। उसके पत्ते भी धारदार होते हैं। छू जाने पर शरीर से रक्त निकल आता है। अतएव खजूर का पेड़ निरर्थक होता है। हां, उसे काटकर कुआं की धरन बना ली जाती है, जिस पर पैर रखकर लोग कुआं से पानी भरते हैं। संपत्ति बहुत बढ़ गयी, परन्तु दया न होने से उससे अच्छा भिक्षु है। कोई जाति-वर्ण में ऊंचा कहलाये, किन्तु भक्तिहीन है, तो उससे अच्छा भक्त चमार है। पलटू साहेब कहते हैं कि ऊंच-नीच कहलाने वाले सभी मनुष्यों की शोभा है, दया और भक्ति में पूर्ण रहना। खजूर की तरह बड़ा होने से क्या हुआ, जब मनुष्यता नहीं है।

18. रहस्य बोध

कुंडलिया-159

उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग॥
तिस में जरै चिराग बिना रोगन बिन बाती।
छः रितु बारह मास रहत जरतै दिन राती॥
सतगुरु मिला जो होय ताहि की नजर में आवै।
बिना सतगुरु कोउ होय नहीं वाको दरसावै॥
निकसै एक अबाज चिराग की जोतिहिं माहीं।
ज्ञान समाधी सुनै और कोउ सुनता नाहीं॥
पलटू जो कोई सुनै ताके पूरे भाग।
उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग॥

शब्दार्थ—रोगन= तेल।

भावार्थ—शरीर उलटा कुआं है। इसमें ज्ञान का दीपक जलता है जो बिना तेल और बिना बत्ती के है। यह छह ऋतुओं और बारहों महीने रात-दिन जलता है। जिसको आत्मबोध देने वाले सद्गुरु मिल जाते हैं, उसी को स्वरूपज्ञान होता है। बिना बोधवान सद्गुरु का उपदेश पाये कोई आत्मज्ञान नहीं पा सकता। इस ज्ञान-प्रकाश से एक आवाज निकलती है वह है आत्म-

अनुभव। जो आत्मज्ञान की समाधि में स्थित है, वही उसे सुनता है, अन्य बहिर्मुख व्यक्ति उसका अनुभव नहीं कर सकता। पलटू साहेब कहते हैं कि जो आत्म-अनुभव की आवाज सुनता है, वह पूर्ण भाग्यशाली है। इस उलटे कुएं शरीर में ज्ञान का दीपक जलता है।

विशेष—सिर में ज्योति और नाद भी अर्थ हो सकता है। परन्तु वह क्रियायोग तक ही सीमित है जो आरंभिक साधना मात्र है। अंतिम तथ्य है स्वरूपज्ञान और स्वरूपस्थितिजनित अनंत आत्मिक शांति। आत्मज्ञान ही दीपक है और समाधिजनित कैवल्य का अनुभव ही आवाज है।

कुंडलिया-160

चढ़ै चौमहले महल पर कुंजी आवै हाथ॥
कुंजी आवै हाथ सब्द का खोलै ताला।
सात महल के बाद मिलै अठएँ उँजियाला॥
बिनु कर बाजै तार नाद बिनु रसना गावै।
महा दीप इक बरै दीप में जाय समावै॥
दिन दिन लागै रंग सफाई दिल की अपने।
रस रस मतलब करै सिताबी करै न सपने॥
पलटू मालिक तुही है कोई न दूजा साथ।
चढ़ै चौमहले महल पर कुंजी आवै हाथ॥

शब्दार्थ—रस रस= धीरे-धीरे। मतलब= उद्देश्य। करै= साधे। सिताबी= शिताबी, शीघ्रता, जल्दीबाजी।

भावार्थ—मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार से ऊपर अपने आत्मा के महल पर चढ़ जाय, तब शाश्वत शांति रूपी खजाने की चाबी हाथ लगेगी। फिर निर्णय शब्दों का ताला खोले। आंख, नाक, कान, जीभ, चाम, मन तथा बुद्धि इन सात तलों के ऊपर अपने आत्मज्ञान में पहुंचने पर यथार्थ ज्ञान का प्रकाश मिलता है। वहां बिना हाथ के तार बजता है, बिना जीभ के गायन होता है। वहां आत्मज्ञान का महा दीपक जलता है। साधक अपने उस महा ज्ञान स्वरूप में स्थित हो जाता है। स्वरूपस्थिति की निरंतर साधना होने से दिनोदिन आत्मशांति की गहराई बढ़ती है और अंत:करण उत्तरोत्तर निर्मल होता जाता है। साधक को चाहिए कि वह इस साधना में धीरे-धीरे आगे बढ़े। स्वप्न में भी जल्दीबाजी न करे। पलटू साहेब कहते हैं कि हे साधक ! तू ही

अपना स्वामी है। तेरे साथ अन्य कोई नहीं है। जब मनुष्य चतुष्ट्य अंतःकरण से ऊपर उठकर आत्मलीन हो जाता है, तब शाश्वत शांति-खजाने की चाबी मिलती है।

विशेष—चौमहले तथा सात महल के ऊपर अठवें महल का अर्थ अन्य भी हो सकता है। संख्यावाचक कथन तथा रहस्यात्मक कथन के अर्थ भिन्न-भिन्न किये जाते हैं, किन्तु संदर्भ के अनुसार अर्थ होना चाहिए। इस कुंडलिया का सार तो इतने ही में है— "पलटू मालिक तुही है, कोई न दूजा साथ॥"

कुंडलिया-161

चाँद सुरज पानी पवन नहीं दिवस नहिं रात॥
नहीं दिवस नहिं रात नहीं उतपति संसारा।
ब्रह्मा बिस्नु महेश नाहिं तब किया पसारा॥
आदि जोति बैकुंठ सुन्य नाहीं कैलासा।
सेस कमठ दिग्पाल नाहिं धरती आकासा॥
लोक बेद पलटू नहीं कहौं मैं तबकी बात।
चाँद सुरज पानी पवन नहीं दिवस नहिं रात॥

शब्दार्थ—सेस= शेषनाग। कमठ= कच्छप।

भावार्थ—जब चांद, सूरज, पानी, पवन, दिन, रात, संसार की उत्पत्ति, ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा उनका कार्य विस्तार आदि ज्योति, बैकुंठ, शून्य, कैलाश, शेष, कच्छप, दिग्पाल, धरती, आकाश, लोक, वेद कुछ नहीं था, पलटू साहेब कहते हैं कि मैं उस समय की बात कहता हूं।

विशेष—वस्तुतः दृश्य-प्रपंच जगत तो अनादि-अनंत सब समय है किन्तु वह द्रष्टा चेतन के स्वरूप में तीनों काल में नहीं है। संत उसी स्वस्वरूप की बात कहते हैं और स्वरूपभाव में निरंतर रहते हैं। दृश्य-अभाव की साधना ही मोक्षप्रद है।

कुंडलिया-162

बिनु कागद बिनु अच्छरे बिनु मसि से लिखि देय॥
बिनु मसि से लिखि देय सोई पंडित कहवावै।
बिनु रसना कहै बेद अकथ की कथा सुनावै॥

छुटी बात अस्थूल सूछम में मिला ठिकाना।
फिर पोथी क्या पढ़ै अच्छर में आप समाना॥
निःअच्छर अब मिला अच्छर को क्या ले करना।
हीरा लगा हाथ पोत की कौन सरहना॥
पलटू पंडित सोई है कलम हाथ नहिं लेय।
बिनु कागद बिनु अच्छरे बिनु मसि से लिखि देय॥

शब्दार्थ—मसि= स्याही। अक्षर= अविनाशी आत्मा। निःअक्षर= वर्ण-मात्रा से परे आत्मा। अच्छर= वर्ण-मात्रात्मक शब्द। पोत= कांच का टुकड़ा। सरहना= सराहना, प्रशंसा।

भावार्थ—वही प्रशंसनीय पंडित है जो बिना कागज, कलम, स्याही और अक्षर के लिख दे। बिना जीभ के वेद पाठ करे और कथन में न आने वाले आत्मज्ञान की कथा सुनावै। उच्च संत की अस्थूल बातें छूट जाती हैं। वह सूक्ष्म आत्मस्वरूप में स्थित हो जाता है। जब अक्षरों के उपदेश के सार रूप में अविनाशी स्वस्वरूप में निरंतर स्थिति है, तब फिर पोथी को क्या पढ़े! जब वर्ण-मात्रा के ऊपर स्वरूप-अनुभव में डूबा है, तब अक्षर-मात्रा की गांठ-जोड़ को लेकर क्या करना! जब हीरा मिल गया तब कांच के टुकड़े की क्या प्रशंसा रही? पलटू साहेब कहते हैं कि सच्चा पंडित वही है जो हाथ में लेखनी न पकड़े और बिना कलम, कागज, स्याही और वर्ण-मात्रा के लिख दे।

विशेष—उपर्युक्त कथन का अर्थ यह नहीं है कि लिखने, पढ़ने और पुस्तक का यहां निषेध है। प्रायः सारा कथन सापेक्ष होता है। यहां का सार भाव यह है कि लिख-पढ़ कर जो अंतिम काम करना है, वह है दृश्य अभाव। चित्त एवं मन दृश्य है। जब इसका अभाव कर दिया तो सारे जड़ दृश्य का अभाव हो गया। तब वहां पोथी कहां है! परंतु इस उच्चतम स्थिति तक पहुंचने के लिए पोथी पढ़ने की आवश्यकता होती है और जीवनपर्यन्त उसका आधार लिये रहना साधक का कर्तव्य है। परन्तु साधक ध्यान रखे कि दृश्य-अभाव हुए बिना परम शांति एवं मोक्ष नहीं मिल सकता।

कुंडलिया-163

झंडा गड़ा है जाय के हद बेहद के पार॥
हद बेहद के पार तूर जहँ अनहद बाजै।
जगमग जोति जड़ाव सीस पर छत्र बिराजै॥

मन बुधि चित रहे हार नहीं कोउ वह घर पावै।
सुरत सब्द रहै पार बीच से सब फिरि आवै॥
बेद पुरान की गम्म सकै ना उहवाँ जाई।
तीन लोक के पार तहाँ रोसन रोसनाई॥
पलटू ज्ञान के परे है तकिया तहाँ हमार।
झंडा गड़ा है जाय के हद बेहद के पार॥

शब्दार्थ—हद= सीमा, गृहस्थी मर्यादा। बेहद= सीमातीत, विरक्ति मर्यादा। पार= इन दोनों के पार गुणातीत दशा। तूर= बाजा। अनहद= आत्म-अनुभव। जड़ाव= जमाया हुआ। तकिया= विश्राम स्थल, आश्रय।

भावार्थ—मेरा झंडा हद और बेहद के पार गड़ा है। गृहस्थी-मर्यादा और विरक्ति वेष-मर्यादा के परे गुणातीत दशा में मैं स्थित हूं। वहां निरंतर आत्म-अनुभव का बाजा बजता है। वहां आत्मज्ञान का ज्योतित प्रकाश है और मेरे सिर पर निष्काम दशा रूप बादशाहत का राज-छत्र विराजता है। मन, बुद्धि, चित्त आदि थककर शांत हो जाते हैं। वे वहां नहीं पहुंचते। मनोवृत्ति और शब्द से स्वरूपस्थिति परे है। सारा मानस जगत बीच से ही लौट आता है। वहां वेद और पुराण की भी पहुंच नहीं होती। स्वरूपस्थिति संपूर्ण जगतप्रपंच से परे है। वहां केवल आत्मज्ञान का प्रकाश है जो स्वयं ज्योतित है। पलटू साहेब कहते हैं कि मेरा विश्राम स्थल ज्ञान से परे है जो हद-बेहद से पार है।

विशेष—जगत-ज्ञान जहां शांत हो जाता है, वहां हमारा तकिया है, विश्राम-स्थल है। दृश्य-अभाव का स्थान स्वरूपस्थिति है।

कुंडलिया-164

जागत में एक सूपना मोहिं पड़ा है देख॥
मोहिं पड़ा है देख नदी इक बड़ी है गहिरी।
तामें धारा तीन बीच में सहर बिलौरी॥
महल एक अँधियार बरै तहँ गैब की बाती।
पुरुष एक तहँ रहै देखि छबि वाकी माती॥
पुरुष अलापै तान सुना मैं एक ठो जाई।
वाहि तान के सुनत तान में गई समाई॥
पलटू पुरुष पुरान वह रंग रूप नहि रेख।
जागत में एक सूपना मोहिं पड़ा है देख॥

शब्दार्थ—बिलौरी= बिल्लौर का; बिल्लौर= पारदर्शक पत्थर, स्फटिक पत्थर, स्वच्छ शीशा। गैब= अदृश्य।

भावार्थ—मैंने जागते-जागते एक स्वप्न देखा कि एक गहरी नदी बह रही है। उसकी तीन धाराएं हैं और उसके बीच एक शहर बसा है जो स्फटिक पत्थरों से बना है। वहां अंधकार में डूबा एक भवन है, जिसमें अदृश्य की ज्योति जल रही है। वहां एक चेतन पुरुष है, उसका सौंदर्य देखकर मेरी मनोवृत्ति मतवाली हो गयी। वह पुरुष संगीत का आलाप कर रहा था। मैंने एकाग्र होकर उसको सुना। उसको सुनते ही मेरी मनोवृत्ति उसी संगीत में डूब गयी। पलटू साहेब कहते हैं कि वह पुरुष पुराना है, शाश्वत है। उसके रंग-रूप नहीं हैं। वह अदृश्य चेतन है। इस प्रकार जागते-जागते मैंने एक सपना देखा।

विशेष—संसार एक गहरी नदी है। इसमें सत, रज तथा तम गुण की तीन धाराएं बह रही हैं। इस संसार-नदी के बीच में मेरा शरीर पारदर्शी पत्थरों का एक शहर है। इसमें एक हृदय-भवन है, जो अज्ञान-अंधकार में डूबा है। परंतु इसमें एक अदृश्य ज्योति जीवात्मा ज्योतित है। यही चेतन पुरुष है। उसका सौंदर्य कैवल्य एवं प्रपंचशून्यता है। मेरी मनोवृत्ति मस्त होकर उसमें डूब गयी। उस चेतन का तान-संगीत कैवल्य ही है। जिसमें मेरी मनोवृत्ति डूब गयी है। वह चेतन, मेरा आत्मस्वरूप और भौतिक रूप-रंग-रहित शुद्ध मात्र शाश्वत है।

कुंडलिया-165

खसम बिचारा मरि गया जोरू गावै तान॥
जोरू गावै तान फिरा अहिबात हमारा।
झूठ सकल संसार माँग भरि सेंदुर धारा॥
हम पतिबरता नारि खसम को जियतै मारी।
वाको मूड़ौं मूड़ सरबर जो करै हमारी॥
दुतिया गइ है भागि सुनौ अब राँध परोसिन।
पिया मरे आराम मिला सुख मोकहँ दिन दिन॥
पलटू ऐसे पद कँहै बूझै सोइ निरबान।
खसम बिचारा मरि गया जोरू गावै तान॥

शब्दार्थ—खसम= स्वामी, पति ! बिचारा= बेचारा, दीन, गरीब, लाचार। अहिबात= सुहाग। सरबर= सरवर, बराबरी।

भावार्थ—नकली पति अहंकार था। वह बेचारा आत्मज्ञान होने पर मर गया। अब मनोवृत्ति रूपी पत्नी बड़े तान से आलाप कर आनंद का गीत गाती है और कहती है कि अब मेरा असली पति आत्मा मिल गया, इसलिए मेरा शाश्वत सुहाग लौट आया। सारा संसार झूठा है, दो दिन का मेला है। अब आत्म-पति मिल जाने पर मैंने सुहाग का शृंगार मांग भर सेंदुर लगाया। मैं आत्मा रूपी पति की अनन्य पतिव्रता पत्नी हूं। मैंने नकली पति अहंकार को, जो बड़ा जीवंत लगता था, उछलता-कूदता था, मार डाला। यदि कोई मेरा सामना करेगा, तो उसका मूड़ मूड़ाकर उसे भी अपना गुलाम बना लूंगी। ऐ आस-पास के लोगो ! सुनो, अब द्वैत भाग गया, माया लुप्त हो गयी। अब तो असंग आत्मा का राज्य हो गया। अहंकार रूपी नकली पति के मरने पर मुझे शांति मिल गयी। अब आगे दिन-दिन मेरा सुख बढ़ता जा रहा है। पलटू साहेब कहते हैं कि मेरे ऐसे कहे हुए पद को जो समझकर उसका आचरण करेगा, वह परम शांति पायेगा। अहंकार के मर जाने पर मनोवृत्ति आनन्दमय हो गयी।

कुंडलिया-166

खसम मुवा तौ भल भया सिर की गई बलाय॥
सिर की गई बलाय बहुत सुख हम ने माना।
लागे मंगल होन बजन लागे सदियाना॥
दीपक बरै अकास महल पर सेज बिछाया।
सूतौं महीं अकेल खबर जब मुए की पाया॥
सूतौं पाँव पसारि भरम की डोरी टूटी।
मने कौन अब करै खसम बिनु दुबिधा छूटी॥
पलटू सोई सुहागिनी जियतै पिय को खाय।
खसम मुवा तौ भल भया सिर की गई बलाय॥

शब्दार्थ—बलाय= बला, आफत, विपत्ति। सदियाना= प्रसन्नता का बाजा।

भावार्थ—(विवेकवती मनोवृत्ति कहती है कि) अहंकार-पति मर गया तो अच्छा हुआ, सिर की विपत्ति दूर हो गयी। मुझे बड़ा सुख मिला। अब तो जीवन में मंगल गीत होने लगा और प्रसन्नता का बाजा बजने लगा। अब मेरे चित्ताकाश में विवेक की ज्योति जल गयी और हृदय-महल में शांति की शय्या बिछ गयी। जब मैं समझ पायी कि अहंकार-पति मर गया तब शांति की शय्या पर मैं अकेली पांव पसार कर निश्चिंत सोती हूं क्योंकि अब बाहर

से कुछ पाने के भ्रम की डोरी कट गयी। अहंकार के मिट जाने पर परोक्ष की दुविधा छूट गयी, तो शांति से रहने में कौन अवरोध करेगा? पलटू साहेब कहते हैं कि वही मनोवृत्ति आत्म-पति को पाकर शाश्वत सुहागिन हो जाती है जो जीवित (बढ़े-चढ़े) अहंकार-पति को खा जाती है। अहंकार मर गया तो अच्छा हुआ, सिर की विपत्ति टल गयी।

19. मन-माया का रहस्य

कुंडलिया-167

मन मारे मरता नहीं कीन्हे कोटि उपाय॥
कीन्हे कोटि उपाय नहीं कोइ मन की जानै।
मन के मन में और कोई जनि मन की मानै॥
हाड़ चाम नहिं मास नहीं कछु रूप न रेखा।
कैसे लागै हाथ नहीं कोउ मन को देखा॥
छिन में कथै बैराग छिनै में होवै राजा।
छिन में रोवै हँसै छिनै में आपु बिराजा॥
पलटू पलकै भरे में लाख कोस पर जाय।
मन मारे मरता नहीं कीन्हे कोटि उपाय॥

शब्दार्थ—आपु बिराजा= स्वयं सर्वेसर्वा बन बैठता है।

भावार्थ—करोड़ों उपाय करके मारो, मन मारने से नहीं मरता। कोई मन का भेद समझ नहीं पाता है। मन के मन में तो कुछ अन्य ही बात है। इसलिए कोई साधक मन के भुलावा में न पड़े। मन के न हाड़ है, न चाम है, न मांस है और न उसकी रूपरेखा है। आज तक कोई मन को आंखों से देखा नहीं है, तो वह कैसे पकड़ में आवे? यह मन क्षण में वैराग्य की बात करता है और क्षण में राजा-महाराजा बनता है। यह क्षण में दुखी होकर रोता है, क्षण में प्रसन्न होकर हंसता है और क्षण में स्वयं सर्वेसर्वा होकर विराजता है। पलटू साहेब कहते हैं कि मन क्षण में लाख कोस उड़ जाता है। यह करोड़ों उपाय करके मारने पर भी नहीं मरता है।

विशेष—मन से अपनी सत्ता समेट लेने पर वह मरता है। संकल्पों का त्याग मन को मारने का साधन है। मन कोई स्वतंत्र द्रव्य नहीं है। जब जीव अपनी सत्ता मन से खींच लेता है तब वह मर जाता है, क्योंकि मन मान्यता मात्र है।

कुंडलिया-168

माया ठगनी जग ठगा इकहै ठगा न कोय॥
इकहै ठगा न कोय लिये है तिर्गुन गाँसी।
सुर नर मुनि देय डिगाय करै यह सब की हाँसी॥
इंद्रहु को यह ठगा ठगा दुर्बासै जाई।
नारद मुनि को ठगा चली ना कछु चतुराई॥
सिवसंकर को ठगा बड़े जो नेजाधारी।
सिंगी ऋषी जवान बीछ कै बन में मारी॥
पलटू इह को सो ठगा जो साचा भक्त होय।
माया ठगनी जग ठगा इकहै ठगा न कोय॥

शब्दार्थ—इकहै= इसको, माया को। नेजा= भाला, बरछा। बीछकै= छांटकर, चुनकर।

भावार्थ—माया ठगिनी ने जगत के लोगों को ठग लिया, परंतु इसको कोई नहीं ठग पाया। यह माया सत, रज, तम रूपी त्रिगुण का फंदा लेकर सबको फंसाती है। यह सुर, नर, मुनि आदि सबको विचलित कर देती है और सबकी हंसी करवा देती है। इसने इंद्र को ठगा, दुर्वासा को ठगा और नारद मुनि को ठगा। इन सबकी बुद्धिमानी माया के सामने नहीं चली। महादेव जी जो अस्त्र-शस्त्र के बड़े मालिक थे, उनको भी माया ने ठगा। ऋष्य शृंग एक युवक वनवासी साधक थे। माया ने उन्हें वन में जाकर और चुनकर मार गिराया। पलटू साहेब कहते हैं कि इस माया को उसने ठगा जो सद्गुरु का सच्चा भक्त हुआ। अन्यथा माया ठगिनी ने सबको वश में कर लिया, किन्तु माया को कोई वश में नहीं कर पाया।

विशेष—सद्गुरु का सच्चा विनम्र सेवक मन-माया को जीत पाता है। शेष अहंकारी तथाकथित भक्त, ज्ञानी माया के जाल में फंस जाते हैं।

कुंडलिया-169

माया बड़ी बहादुरी लूटि लिहा संसार॥
लूटि लिहा संसार केहू को मानै नाहीं।
तनिक उजुर जो करै ताहि को कच्चा खाही॥
कहूँ कनक कहुँ कामिनि सुन्दर भेष बनावै।
ताकै जेकरी ओर नजर से मारि गिरावै॥

जोगी जती औ तपी गुफा से पकरि मँगावै।
बचै न कोऊ भागि दुपहरै लूटा जावै॥
पलटू डरपै संत से वे मारैं पैजार।
माया बड़ी बहादुरी लूटि लिहा संसार॥

शब्दार्थ—उजुर= उज्र, आपत्ति, विरोध। पैजार= पैज़ार, जूता।

भावार्थ—माया बड़ी वीर है। यह संसार के लोगों को लूटती है। यह किसी का डर नहीं मानती। जो मनुष्य इसके सामने थोड़ा भी विरोध करता है, उसको यह कच्चा खा जाती है। यह माया कहीं धन-संपत्ति का और कहीं कामिनी का सुंदर वेष बनाती है। यह जिसकी तरफ अपनी दृष्टि घुमाती है, उसी को मार गिराती है। कितने योगी, त्यागी और तपस्वी को जो गुफा में बैठे योग एवं तप कर रहे हैं, उन्हें वहां से पकड़कर खींच लाती है और मोह में पटक देती है। कोई भागकर बच नहीं पाता। सब इस मानव शरीर रूपी ज्ञान के उजाले में लूटे जाते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि माया संत से डरती है, क्योंकि वे इसे जूते मारते हैं। माया बड़ी बलवान है। इसने सबको लूट लिया।

विशेष—काव्य में माया का व्यक्तिकरण हो गया है। माया कोई जानदार प्राणी नहीं है जो स्वतंत्र होकर किसी को बंधन दे। वस्तुतः हमारे मन का मोह ही माया है, जो हमें बांधता है। मोह को त्याग देने वाला माया से मुक्त है।

कुंडलिया-170

माया की चक्की चलै पीसि गया संसार॥
पीसि गया संसार बचै ना लाख बचावै।
दोऊ पट के बीच कोऊ ना साबित जावै॥
काम क्रोध मद लोभ चक्की के पीसनहारे।
तिरगुन डारै झीक पकरि कै सबै निकारे॥
दुरमति बड़ी सयानि सानि कै रोटी पोवै।
करम तवा में धारि सेंकि कै साबित होवै॥
तृस्ना बड़ी छिनारि जाइ उन सब घर घाला।
काल बड़ा बरियार किया उन एक निवाला॥

पलटू हरि के भजन बिनु कोऊ न उतरै पार।
माया की चक्की चलै पीसि गया संसार॥

शब्दार्थ—झीक= झींका, अन्न की वह मात्रा जो पीसने के लिए चक्की में एक बार डाली जाय। निवाला= ग्रास।

भावार्थ—माया की चक्की चलती है जिसमें संसार के सारे प्राणी पिसते हैं। लाख बचाने पर भी लोग नहीं बचते। माया की चक्की के दो पाट हैं प्रत्यक्ष और परोक्ष—स्थूल भोग और मन की कल्पनाएं। इन दोनों पाटों के बीच में सब पिसते हैं। इनसे कोई बाहर नहीं जा पाता है। काम, क्रोध, मद, लोभ आदि मनोविकार चक्की के पीसने वाले हैं। त्रिगुण झींका डालते हैं। वे सबको पकड़कर निकाल लेते हैं और चक्की में डालकर उन्हें पीस देते हैं। दुर्बुद्धि बड़ी बलवान है। वह सब पिसे हुए को सानकर उसकी रोटी बनाती है और राग-द्वेषात्मक कर्म-तवा पर सेंककर पूरा तैयार करती है। तृष्णा बड़ी भ्रष्ट है। इसने सबका पतन किया है। काल बड़ा बलवान है। वह सबको एक ग्रास में खा जाता है। पलटू साहेब कहते हैं कि हरि-भजन के बिना कोई जीव माया-सागर से पार नहीं जा सकता। इस माया की चलती चक्की में सब जीव पिसते हैं।

विशेष—हरिभजन है आत्म-स्मरण, आत्मविश्वास, आत्मसंयम। इसके बिना कोई माया से नहीं उबर सकता।

कुंडलिया-171

नागिनि पैदा करत है आपुइ नागिनि खाय॥
आपुइ नागिनि खाय नागिनि से कोउ न बाचे।
नेजाधारी सम्भु नागिनि के आगे नाचे॥
सिंगी ऋषि को जाय नागिनि ने बन में खाई।
नारद आगे पड़े लहर उनहूँ को आई॥
सुन नर मुनि गनदेव सभन को नागिनि लीलै।
जोगी जती औ तपी नहीं काहू को ढीलै॥
संत बिबेकी गरुड़ हैं पलटू देखि डेराय।
नागिनि पैदा करत है आपुइ नागिनि खाय॥

शब्दार्थ—नेजाधारी= भालाधारी, अस्त्र-शस्त्रधारी। ढीलै= छोड़े।

भावार्थ—सर्पिणी अपने पैदा किये हुए बच्चों को स्वयं खा जाती है, वैसे यह माया अपने पैदा किये हुए प्राणियों को खाती है। इस सर्पिणी से कोई नहीं बचता। अस्त्र-शस्त्रधारी महादेव बड़े वीर बनते थे किन्तु वे माया-नागिनि के सामने नाचते रहे। इस माया-नागिनि ने वन में जाकर ऋष्य शृंग को खा लिया। नारद माया की लहर के सामने पड़ गये इसलिए वे भी उसमें बह गये। सुर, नर, मुनि तथा देवगण सबको माया-नागिनि खा जाती है। वह योगी, त्यागी और तपस्वी किसी को नहीं छोड़ती है। पलटू साहेब कहते हैं कि विवेकी संत गरुड हैं, उनको देखकर माया भयभीत हो जाती है। यह माया-सर्पिणी अपने पैदा किये हुए को खा जाती है।

कुंडलिया-172

कुसल कहाँ से पाइये नागिनि के परसंग॥
नागिनि के परसंग जीव कै भच्छक सोई।
पहरू कीजै चोर कुसल कहवाँ से होई॥
रुई के घर बीच तहाँ पावक लै राखै।
बालक आगे जहर राखि करिके वा चाखै॥
कनक धार जो होय ताहि ना अंग लगावै।
खाया चाहै खीर गाँव में सेर बसावै॥
पलटू माया से डेरै करै भजन में भंग।
कुसल कहाँ से पाइये नागिनि के परसंग॥

शब्दार्थ—परसंग= संग, आसक्ति। कनक धार= अत्यंत मोहक।

भावार्थ—माया-नागिनि की आसक्ति और संगत करके जीव का कल्याण कहां होगा? वह तो जीव के कल्याण का नाशक है। यदि चोर को ही पहरेदार बनाया जाय तो कहां कुशल होगा? रुई के गोदाम में आग जलाने से रुई की सुरक्षा कैसे होगी? अबोध बालक के सामने विष रख दिया जाय तो वह उसे खायेगा ही। अतएव यह माया चाहे जितनी चमक-दमक से मिले इसको अपने अंग न छूने दे। गांव में खुला शेर रखकर मनुष्य कैसे सुख से रह सकता है? पलटू साहेब कहते हैं कि माया भजन-भंग करती है, इसलिए इससे डरकर दूर रहना चाहिए। नागिन से सम्बन्ध करके कहां कुशल है?

कुंडलिया–173

पूरब पच्छिम उत्तर दक्खिन देखा चारिउ खूँट॥
देखा चारिउ खूँट माया से बचै न कोई।
राजा रंक फकीर माया के बसि में होई॥
सब को बसि में करै जगत को माया जीती।
आपु न बसि में होय रहै वह सब से रीती॥
हरि को देइ भुलाय अमल वह अपना करती।
ऐसी है वह नारि खसम को नाहीं डेरती॥
पलटू सब संसार को माया लीन्हों लूट।
पूरब पच्छिम उत्तर दक्खिन देखा चारिउ खूँट॥

शब्दार्थ—खूँट= कोना। रीती= खाली, पकड़ के बाहर। अमल= अधिकार, शासन। खसम= पति, आत्मा।

भावार्थ—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों कोनों में देख लिया। चाहे राजा हो और चाहे दरिद्र, माया से कोई बचता नहीं है। माया सबको अपने वश में कर लेती है और सबको जीत लेती है। माया स्वयं किसी के वश में नहीं रहती है। वह पकड़ के बाहर रहती है। माया अपना अधिकार जमाकर आत्मज्ञान का विस्मरण करा देती है। यह माया नारी ऐसी ढीठ है कि यह आत्मा–पति को नहीं डरती है। पलटू साहेब कहते हैं कि माया ने सारे संसार को लूट लिया। मैंने इसे सभी दिशाओं के कोनों में देख लिया है।

कुंडलिया–174

मन माया छोड़ै नहीं बझै आपु से जाय॥
बझै आपु से जाय गही ज्यों मरकट मूठी।
ज्यों नलनी का सुआ बात सब ऐसी झूठी॥
छोड़ै नाहीं आपु भरम में पड़ा गँवारा।
खैंचि लेय जो हाथ कोऊ ना पकड़नहारा॥
जिव लै बचै तो भागु भूलि गइ सब चतुराई।
रोवन लागै पूत काल ने पकरा आई॥
पलटू आसा बधिक है लालच बुरी बलाय।
मन माया छोड़ै नहीं बझै आपु से जाय॥

शब्दार्थ—नलनी= ललनी, सुगा फंसाने की चरखी।

भावार्थ—मनुष्य का मन माया को छोड़ता नहीं है। वह स्वयं प्रलोभन-वश जाकर माया में फंस जाता है। जैसे बंदर चना के लोभ से सुराही में हाथ डालकर मुट्ठी में चना लेता है। बंद मुट्ठी सुराही से निकलती नहीं और चना के लोभ से वह मुट्ठी खोलता नहीं। फलतः वह कलंदर के हाथों पकड़ा जाता है। जैसे चरखी में लगे हुए मिरचे को खाने के लिए सुगा चरखी पर बैठता है और उसमें फंस जाता है, वैसे मनुष्य प्रलोभन में पड़कर माया में स्वयं फंसता है। मूर्ख मनुष्य समझता है कि माया ने मुझे पकड़ लिया है, किन्तु यह उसका भ्रम है। वस्तुतः मनुष्य ने स्वयं अपनी भूल से माया को पकड़ रखा है। यदि मनुष्य अपना हाथ माया-मोह से खींच ले तो इसको कोई पकड़ने वाला नहीं है। यदि तुम अपने जीव को माया-मोह से छुड़ाना चाहते हो, तो उससे भागो, अन्यथा तुम्हारी सारी बुद्धिमानी मिट्टी में मिल जायगी। जब मौत आ जायगी तब मनुष्य को केवल रोना रहेगा। पलटू साहब कहते हैं कि भोगों की आशा हत्यारिनी है और लालच भयंकर विपत्ति है। मनुष्य स्वयं अपनी भूल से माया में फंसता है।

20. अज्ञानदशा

कुंडलिया-175

घर में जिंदा छोड़ि कै मुरदा पूजन जायँ॥
मुरदा पूजन जायँ भीति को सिरदा नावैं।
पान फूल और खाँड़ जाइ कै तुरत चढ़ावैं॥
ताल कि माटी आनि ऊँच के बाँधिनि चौरी।
लीपि पोति के धरिनि पूरी औ बरा कचौरी॥
पीयर लूगा पहिरि जाय कै बैठिनि बूढ़ा।
भरमि भरमि अभुवाइँ माँगत हैं खसी कै मूँड़ा॥
पलटू सब घर बाँटि कै लै लै बैठे खायँ।
घर में जिंदा छोड़ि कै मुरदा पूजन जायँ॥

शब्दार्थ—भीति= दीवार। सिरदा= सिजदा, प्रणाम, नमस्कार। चौरी= देवपिंड। लूगा= साड़ी। खसी= बकरा।

भावार्थ—अपने घर के लोग जीते-जागते देवता हैं। उनकी पूजा एवं सत्कार करना छोड़कर काष्ठ-पत्थर, धातु आदि से बने जड़ पिंडों

को देवता मानकर उनकी पूजा करने जाते हैं। मुसलमान मस्जिद में जाकर नमाज पढ़ते हैं और जहां वे नमस्कार करते हैं वह जड़ दीवार रहती है। हिन्दू जड़ पिंडों को देवता मानकर उनके सामने पत्ते, फूल और मिष्ठान्न चढ़ाते हैं। लोग तालाब से मिट्टी लाकर ऊंचा चौरा या चौरी बांधते हैं और उसको लीप-पोत कर देवी-देवता बनाते हैं फिर उसके सामने पूड़ी, कचौड़ी तथा बरा चढ़ाते हैं। पीली साड़ी पहनकर घर की बूढ़ा वहां जाकर बैठ गयीं और भ्रमित होकर अभुवाने लगीं-सिर हिला-हिलाकर झूमने लगीं और कहने लगीं कि मैं अमुक देवी या देवता हूं। मेरे नाम पर बकरा का सिर काट कर चढ़ाओ। इसके बाद परिवार के सभी लोग उस बकरे के मांस को प्रसाद मानकर पकाकर खाते हैं। ऐसे लोग भटके हुए हैं जो घर के जीवित देवता परिवार की सेवा छोड़कर मुरदा जड़ देवता पूजने जाते हैं।

कुंडलिया-176

जियतै देइ गिरास ना मुये परावै पिंड॥
मुये परावै पिंड कौन है खावनहारो।
राँध परोसिनि नेवति खवावै ससुरा सारो॥
पितरन के मुँह छार धोख दै लेइ बड़ाई।
मुए बैल को घास देहु कहु कैसे खाई॥
अपने परुसा लेइ पित्र को छोड़ै पानी।
करै पित्र से भूत बड़ो मूरख अज्ञानी॥
पलटू पुरषा मुक्ति में करत भंड औ भिंड।
जियतै देइ गिरास ना मुये परावै पिंड॥

शब्दार्थ—गिरास=ग्रास, कौर। परुसा=परोसा, भोजन परोसा। भंड=भांड, अश्लील व्यवहार।

भावार्थ—लोग जीवित पिता-माता को तो आदर से भोजन नहीं देते हैं और उनके मर जाने पर उनके नाम पर पुरोहित से पिंड पड़वाते हैं। वहां भला आटा के पिंड को खाने वाला कौन है? वस्तुतः श्राद्ध के नाम पर पड़ोसी तथा ससुर-साले को बुलाकर खिलाते हैं। यह तो मरे पितरों के उपलक्ष्य में श्राद्ध के नाम पर उनके मुख में धूल ही झोंकना हुआ। यदि मरे हुए बैल के मुंह के सामने घास रखी जाय तो वह कैसे खायेगा? वस्तुतः श्राद्ध के नाम पर

भोजन-पकवान परोस कर स्वयं खाते हैं और मृत पितर के नाम पर केवल पानी उछालते हैं। ऐसे लोग बड़े मूर्ख और अज्ञानी हैं जो अपने पितर को भूत-प्रेत बनाते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि मृत पितर के नाम पर श्राद्ध करके केवल भांडपन एवं नाटक करना रहता है। इसलिए जीवित माता-पिता की सेवा करना चाहिए। मुये माता-पिता के श्राद्ध के नाम पर भांडपन नहीं करना चाहिए।

कुंडलिया-177

पानी काको देइ प्यास से मुवा मुसाफिर॥
मुवा मुसाफिर प्यास डोर औ लुटिया पासै।
बैठ कुवाँ की जगत जतन बिनु कौन निकासै॥
आगे भोजन धरा थारि में खाता नाहीं।
भूख भूख करै सोर कौन डारै मुख माहीं॥
दीया बाती तेल आगि है नाहिं जरावै।
खसम सोया है पास खसम को खोजन जावै॥
पलटू डगरा सूध अटकि कै परता गिर गिर।
पानी काको देइ प्यास से मुवा मुसाफिर॥

शब्दार्थ—खसम= पति, स्वामी, आत्मा। डगरा= रास्ता, पथ। सूध= सीधा।

भावार्थ—तू किसके नाम से पानी उलीचता है? वहां कोई पीने वाला नहीं है। हे यात्री मनुष्य! तू स्वयं प्यास से मर रहा है। तू कुआं के पास बैठा है, परन्तु उद्योग किये बिना कुआं से पानी कौन निकालेगा? थाली में भोजन परोसा सामने रखा है, किन्तु उसको खाता नहीं है। भूखा हूं, भूखा हूं कहकर चिल्लाता है, परन्तु तेरे मुख में भोजन कौन डालेगा? दीपक, तेल, बत्ती तथा आग सब कुछ मौजूद है, परन्तु दीपक जलाता नहीं है। इसी प्रकार आत्मा रूपी परमात्मा तो अपने ही में विद्यमान है, परन्तु लोग भूलवश परमात्मा को अलग खोजने जाते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि कल्याण का रास्ता सीधा आत्मज्ञान और उसके आचरण में चलना है, परन्तु लोग अज्ञान-वश भ्रम-पथ पर चलकर गिर-गिर पड़ते हैं। यह भूला पथिक स्वयं प्यासा है और दूसरों को पानी देते फिरता है।

कुंडलिया-178

लहँगा परिगा दाग फूहरि साबुन से धोवै॥
फूहरि धोवै दाग छुटै ना और बढ़ावै।
ज्यों ज्यों मलै बनाय सारे लहँगा फैलावै॥
गाफिल में गइ सोय खसम को दोष लगावै।
ऐसी फूहरि नारि आप को नाहिं बचावै॥
धोबी को नहिं देइ घरहिं में आपु छुड़ावै।
इक बेर दिहिसि निखारि लाज से नाहिं दिखावै॥
पलटू परदा खोलि आपनो घर घर रोवै।
लहँगा परिगा दाग फूहरि साबुन से धोवै॥

शब्दार्थ—लहँगा= घाघरा, स्त्रियों का कमर से नीचे पैर तक का पहनावा।

भावार्थ—लहंगा में दाग लग गया है। बेशऊर स्त्री साबुन से धोती है। उसके जोर लगाकर धोने पर भी दाग नहीं छूटता है। वह जैसे-जैसे जोर से धोती है वैसे-वैसे दाग पूरे लहंगा में फैलता है। वह असावधानी से सोती है और पति को दोष लगाती है। ऐसी बेशऊर नारी है कि अपने आप को सुरक्षित नहीं रख पाती है। वह अपना लहंगा धोबी को धोने के लिए नहीं देती, अपितु अपने घर में ही धोकर उसका दाग छुड़ाना चाहती है। उसने एक बार अपनी समझ से धोकर साफ मान लिया। लज्जा से अपने लहंगा का दाग किसी धोबी को दिखाती नहीं है। पलटू साहेब कहते हैं कि यह बेशऊर नारी अपनी मर्यादा खोलकर घर-घर रोती है। इस प्रकार अपने लहंगा के दाग को वह साबुन से धोती है।

विशेष—यहां संत श्री पलटू साहेब फूहर, बेशऊर स्त्री का रूपक देकर मनुष्य की भटकी हुई मनोवृत्ति का नक्शा खींचते हैं। मनुष्य की अहंकारी मनोवृत्ति सच्चे सद्गुरु का आधार न लेकर अपनी घमंडी बुद्धि से अपनी पवित्रता और कल्याण चाहती है। मनुष्य अपनी भटकी हुई मनोवृत्ति के कारण घर-घर अपना दुख रोता है, देवी-देवता मानता है, आत्मा रूपी परमात्मा का बोध न होने से ठोकरें खाता है।

कुंडलिया-179

अंधरन केरि बजार में गया एक डिठियार॥
गया एक डिठियार सबै अंधा उठि धाये।
अहमक आये आजु सबै मिलि तारी लाये॥

डारौ आँखी फोरि रहौ तुम हमरी नाईं।
सब अंधरन मिलि अंध अंध वाको ठहराई॥
जँहवाँ लाखन अंध एक क्या करै बिचारा।
सुनै न वाकी कोऊ तहाँ डिठियारै हारा॥
पलटू दास यहि बात को कोऊ न करै बिचार।
अंधरन केरि बजार में गया एक डिठियार॥

शब्दार्थ—डिठियार= डिठार, दृष्टिवाला, आंखवाला। अहमक= मूर्ख।

भावार्थ—अंधों के बीच में आंख वाला चला गया तो सारे अंधे उसके पास दौड़ आये। उन्होंने सोचा कि आज एक मूर्ख हम लोगों में आ गया है। सब अंधे ताली बजाकर उसका परिहास करने लगे। वे उससे कहने लगे कि तुम अपनी आंखें फोड़कर हम लोगों के समान अंधे बनकर रहो। सब अंधे मिलकर कहने लगे कि यह अंधा है। जहां लाखों अंधे हैं, वहां आंख वाला बेचारा क्या करे! वहां उसकी बात कोई सुनने वाला नहीं है। वहां तो आंख वाला ही हार जाता है। पलटू साहेब कहते हैं कि आंख वाले की बात पर उन अंधों में कोई विचार नहीं करता है। अंधों की भीड़ में आंख वाला अकेला क्या करे!

विशेष—विवेकहीनों के बीच में से विवेकवान मौन होकर चल देते हैं। घोर विवेकहीन विवेकवान को ही विवेकहीन बताते हैं। अतएव विवेकवान अपने विवेक में मस्त रहते हैं, अनधिकारी को चेताने नहीं चलते।

कुंडलिया-180

सब अँधरन के बीच एक है काना राजा॥
काना राजा रहै ताहि कै रैयत आँधा।
काना को अगुवाइ एक इक पकरिनि काँधा॥
बीच मिला दरियाव अंध को ठाढ़ कराई।
लेन गया वह थाह सूँसि लैगा घिसियाई॥
साँझ आइ नियरानि अंध सब करैं बिचारा।
लाग खान को करन बड़ा सरदार हमारा॥
आधी रात के बीच सबै मिलि गौगा लाई।
भेड़हा बोला आय चलो इक एक बुलाई॥

एक एक तुम चलो नाहिं है बासन दूजा।
गरदन धै लै जाय करै ताही की पूजा॥
पलटू सबको खाय मगन ह्वै भेड़हा गाजा।
सब अँधरन के बीच एक है काना राजा॥

शब्दार्थ—रैयत= प्रजा, रियाया। सूंसि= सूंस, चार-पांच हाथ लंबा जानवर जो नदियों में रहता है, वह जानवरों को पकड़कर खा लेता है। लाग खान को करन= खाने लगा, भोजन करने लगा। गौगा= हल्ला, शोर-शराबा। भेड़हा= भेड़िया, एक शिकारी जानवर। बासन= बरतन। गाजा= गरजा, गर्जना किया।

भावार्थ—सब अंधों के बीच में एक काना गया और वह उनमें राजा बनकर बैठ गया। उस काना राजा की पूरी प्रजा अंधी थी। काना राजा को आगे करके सारी अंधी प्रजा एक-दूसरे का कंधा पकड़कर चलने लगी। बीच में नदी मिल गयी। काना राजा सभी अंधों को खड़ाकर नदी की थाह लेने गया, तो एक सूंस या घड़ियाल उसे घसीटकर गहरे पानी में ले गया और उसे खा लिया। देरी हुई, संध्या हो गयी। सब अंधे विचार करने लगे कि हमारा काना राजा, मालूम होता है, भोजन करने लगा। जब आधी रात हो गयी तब सब अंधे हल्ला मचाने लगे। इतने में एक भेड़िया आ गया और उसने कहा कि आप घबरायें नहीं। आपका सरदार भोजन कर रहा है। आप भी एक-एक करके भोजन करने चलें; क्योंकि एक ही थाली है। फलतः भेड़िया एक-एक अंधे को भोजन कराने के बहाने ले जाता और उन्हें खा लेता। पलटू साहेब कहते हैं कि भेड़िया एक-एक को खाकर प्रसन्न होकर गर्जना करने लगा। सब अंधों के बीच काना राजा तथा उसकी अंधी प्रजा की ऐसी दशा हुई।

विशेष—विवेकहीन गुरु तथा विवेकहीन चेलों की दशा का चित्रण करते हुए संत पलटू साहेब ने कैसा खाका खींचा है! वे जो चाहते थे काव्य में बांध देते थे। उनकी अद्‌भुत शक्ति थी।

21. दुष्ट प्रकृति

कुंडलिया-181

अपकारी जिव जाहिंगे, पलटू अपने आप॥
पलटू अपने आप संत का सरल सुभाऊ।
सबको मानहिं भला नाहिं कछु करहिं दुराऊ॥

लाख दुष्ट जो होइ भला तेहू का मानैं।
आपन ऐसा जीव संत जन सब का जानैं॥
अपनी करनी जाय होय जो निंदक कोई।
आन को गड़हा खनै परैगा आपुहि सोई॥
जब देखै वह संत को तब चढ़ि आवै ताप।
अपकारी जिव जाहिंगे पलटू अपने आप॥

शब्दार्थ—अपकारी= बुरे कर्म करने वाले। दुराऊ= भेदभाव, कपट। गड़हा= गड्ढा, खाई। ताप= बुखार, क्रोध।

भावार्थ—पलटू साहेब कहते हैं कि बुरे कर्म करने वाले स्वयं नीची गति में जायेंगे। सज्जन-संत का स्वभाव सरल होता है। वे सबको अच्छा मानते हैं। किसी से छल-कपट एवं भेदभाव नहीं करते हैं। किसी में लाखों दुष्टता हो, उसमें भी संत केवल उसमें रही हुई अच्छाई पर ही नजर रखते हैं। संतजन अपने आत्मा के समान सबको मानते हैं। यदि कोई सबकी बुराई देखने और कहने वाला होता है, तो वह अपने पापकर्म के परिणाम में स्वयं नीची गति को जाता है। जो दूसरे के लिए रास्ते में खाई खोदता है, वह स्वयं खाई में गिरता है। दुष्ट लोग सज्जन-संत को देखकर क्रोध में जल उठते हैं; किन्तु ऐसे लोग अपनी करनी का फल स्वयं पाते हैं।

कुंडलिया-182

बनियाँ बानि न छोड़ै पसँघा मारे जाय॥
पसँघा मारे जाय पूर को मरम न जानी।
निसु दिन तौलै घाटि खोय यह परी पुरानी॥
केतिक कहा पुकारि कहा नहिं करै अनारी।
लालच से भा पतित सहै नाना दुख भारी॥
यह मन भा निरलज्ज लाज नहिं करै अपानी।
जिन हरि पैदा किया ताहि का मरम न जानी॥
चौरासी फिरि आइ कै पलटू जूती खाय।
बनियाँ बानि न छोड़ै पसँघा मारे जाय॥

शब्दार्थ—बानि= आदत। पसँघा= पासंग, तराजू की डांड़ी का ऊपर-नीचे होना। खोय= आदत।

भावार्थ—बनिया अपनी गलत आदत नहीं छोड़ता है। वह माल बेचते-खरीदते समय तराजू की डांड़ी को ऊपर-नीचे करके अपना माल कम देता है और दूसरे का माल अधिक लेता है। वह यह भेद नहीं जानता कि सही लेन-देन ही सुखदायी है। वह रात-दिन बेचते समय अपना माल कम तौलता है और खरीदते समय दूसरे का माल अधिक तौल लेता है। यह उसकी पुरानी आदत है। कितना जोर देकर कहा गया किन्तु मूर्ख मनुष्य इस पर ध्यान नहीं देता। मनुष्य लोभ-लालच से नीचे गिरता है और अनेक प्रकार के भारी दुख सहता है। पतित मनुष्य का मन निर्लज्ज हो जाता है। वह अपने कर्म की लाज नहीं करता। जिस कर्म-विधान से देह धारण हुआ है उसका रहस्य नहीं समझता। अपने कर्मवासनात्मक चक्र में पड़कर ही जीव चौरासी योनियों में भटकता है और अपने शुभाशुभ कर्मों के फलों को भोगता है। पलटू साहेब कहते हैं कि जीव अपने कर्मों के परिणाम में जूते खा रहा है, परन्तु यह बनिया-मन अपनी आदत नहीं छोड़ता है।

विशेष—अपने कर्म ही हरि हैं। उन्हीं के फल हमें मिलते हैं। अतएव हम सदैव सत्कर्म में रत रहें।

कुंडलिया-183

संत रतन की कोठरी कुंजी दुष्टन हाथ॥
कुंजी दुष्टन हाथ अटकि के खोलहिं जाई।
संत भये परसिद्ध परभुता नाम दिखाई॥
चकमक भये हैं दुष्ट संत जन जैसे पथरी।
हरि की प्रभुता आगि प्रगट ह्वै वासे निकरी॥
आगि देखि सब डेरे जगत में भय तब ब्यापी।
दुष्टन के परताप बस्तु परगट भई ढाँपी॥
पलटू परदा खुलि गया सबै नवावै माथ।
संत रतन की कोठरी कुंजी दुष्टन हाथ॥

शब्दार्थ—अटकि के= उलझकर। चकमक= एक प्रकार का पत्थर जिस पर चोट करने पर आग निकलती है। हरि की प्रभुता= आत्मज्ञान और सद्गुणों का ऐश्वर्य। डेरे= डरे, भयभीत हुए। ढांपी= ढंकी हुई, छिपी हुई।

भावार्थ—संत आत्मज्ञान और सद्गुणों की कोठरी हैं। उसको खोलने की चाबी दुष्टों के हाथों में है। वे संतों से उलझकर उनकी चारों तरफ निन्दा

करते हैं, तो इससे संत प्रसिद्ध हो जाते हैं और उनके नाम की प्रभुता फैल जाती है और उनके सतनामबोधक आत्मज्ञान का प्रचार होता है। संतजन तो मानो साधारण पत्थर हैं, दुष्ट ही चक़मक़ पत्थर हैं। सद्‌गुण तथा आत्मज्ञान की प्रभुत्व रूपी आग दुष्टों द्वारा विरोध करने पर संतों से निकलती है। उस आग को देखकर लोग संतों से डरने लगते हैं और उनके मन में यह भय व्याप्त हो जाता है कि यदि संतों को दुख देंगे तो हमारा कुशल नहीं है। इस प्रकार जो संतों के जीवन में उनका आत्मज्ञान तथा सद्‌गुण रूपी उनकी वस्तु ढकी-लुकी थी, वह दुष्टों के विरुद्ध प्रचार से प्रकट हो गयी। इस प्रकार दुष्टों के विरोधी प्रचार से संतों की सच्चाई प्रकट हो गयी और सज्जन लोग उनके सामने विनयावनत होने लगे। पलटू साहेब कहते हैं कि संतजन आत्मज्ञान और सद्‌गुणों की कोठरी हैं। दुष्टों ने ईर्ष्यावश उनका विरोध करके मानो उनका उद्‌घाटन कर दिया।

विशेष—ऊपर दुष्टों पर व्यंग्य है। वे संतों का विरोध करके मानो उनका उद्‌घाटन करते हैं।

22. कर्म-भ्रम-देवी-देवादि

कुंडलिया-184

अंजन देय न ज्ञान का अंधा भया बनाय॥
अंधा भया बनाय बैद की बात न मानै।
बिषय बयाला खाय करे संजम ना जानै॥
लालच रोगिया करै बैद को दोष लगावै।
तनिक नहीं बिस्वास आँखि कहवाँ से पावै॥
एक होय तो कहौं गाँव का गाँवै बिगरा।
दिवसै दीपक बारि पाप का सेते डगरा॥
पलटू सब संसार के माड़ा गया है छाय।
अंजन देय न ज्ञान का अंधा भया बनाय॥

शब्दार्थ—अंजन= काजल, सुरमा, आंख की दवा। बनाय= अच्छी तरह, बिलकुल। बयाला= छेद, हवा। डगरा= रास्ता, मार्ग। माड़ा= परदा।

भावार्थ—लोग आत्मज्ञान का अंजन नहीं लगाते हैं, पूरे के पूरे अंधे बने बैठे हैं। वे सद्‌गुरु-वैद्य की बात नहीं मानते। लोग विषयों की हवा खा रहे हैं, आत्मसंयम करना नहीं जानते। रोगी लपंटता से असंयम करता है और वैद्य

के मत्थे दोष मढ़ता है। जब उसे सद्गुरु-वैद्य के उपदेशों पर थोड़ा भी विश्वास नहीं है, तब उसे आत्मज्ञान की आंख कैसे मिले? यदि एक व्यक्ति बिगड़ा हो तो उसको समझाने का परिश्रम किया जाय, गांव का गांव बिगड़ा है। दिन में दीपक जलाकर पाप पथ का सेवन करते हैं—जान-बूझकर गड्ढे में गिरते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि संसार के सारे लोगों की आंखों पर परदा पड़ा है। ये ज्ञान का अंजन नहीं लगाते, अपितु निरे अंधे बने भटक रहे हैं।

विशेष—लोग वही सोच, बात तथा कर्म करते हैं जिनसे दुख तथा अशांति बढ़े। गुरुजनों के समझाने पर भी नहीं सुधरते, तो उनके कल्याण का क्या रास्ता है !

कुंडलिया-185

जौं लगि परदा पड़ा है धोखा रहा समाय॥
धोखा रहा समाय जानै दूजा है कोई।
भीतर बाहर एक तसल्ली देखे होई॥
जो देखा सो गया रहा जो देखा नाहीं।
चोकर लड्डू खाँड़ खाय दोऊ पछिताहीं॥
जोई पहुँचा जाय सोई उस घर का मालिक।
रहे नाम में डूबि ठिकाने पहुँचे सालिक॥
पलटू परदा टारि दे दिल का धोखा जाय।
जौं लगि परदा पड़ा है धोखा रहा समाय॥

शब्दार्थ—परदा= अविद्या। तसल्ली= ढाढ़स, शांति, धैर्य। सालिक= पथिक; नैतिक आचरण में चलने वाला।

भावार्थ—जब तक आत्मज्ञान पर अविद्या का परदा पड़ा है, तब तक मन में यही धोखा समाया रहता है कि स्वर्ग, परमतत्त्व तथा मोक्ष मुझसे अलग दूसरे अस्तित्व वाला है। शांति तब मिलती है जब यह बोध हो कि वह मेरे भीतर आत्म तत्त्व है और वैसे ही अन्य लोगों के भीतर वही सत्य तत्त्व विद्यमान है। संसार की तो जो चीज देखी गयी वह बीत गयी और जो अभी नहीं देखी गयी है उसकी कामना बनी है। चाहे चोकर का लड्डू हो चाहे खाड़ का, दोनों खाकर पीछे पश्चाताप करना पड़ता है, क्योंकि संसार की सारी प्रिय अप्रिय वस्तुएं सारहीन हैं। जो साधक प्रिय-अप्रिय से ऊपर उठकर आत्मलीनता में पहुंच गया, वह अपने स्वरूपस्थिति आनंद-भवन का स्वामी हो गया। अपनी स्थिति में वही पहुंचता है जो नैतिक आचरण एवं साधना में

चलता है। पलटू साहेब कहते हैं कि हे शांति-इच्छुक ! दिल का द्वैत-परदा हटा दे। आत्मा के अलावा कुछ नहीं पाना है। जब तक अपने से भिन्न कुछ पाने का भ्रम है तब तक धोखे में भटकना है।

कुंडलिया-186

बस्तु धरी है पाछे आगे लिहिन तकाय॥
आगे लिहिन तकाय पाछे की मरम न जानी।
ज्यों ज्यों आगे जाय दिनों दिन अधिक दुरानी॥
फिरि के ताकै नाहिं बस्तु कहवाँ से पावै।
ज्यों मिरगा कै बास भरम कै जन्म गँवावै॥
अरुझा बेद पुरान ज्ञान बिनु को सुरझावै।
सतसंगत से बिमुख बस्तु कहवाँ से पावै॥
पलटू छूटै कर्म ना कैसे सकै उठाय।
बस्तु धरी है पाछे आगे लिहिनि तकाय॥

शब्दार्थ—तकाय= चल दिये।

भावार्थ—वस्तु पीछे छूट गयी और आगे चल दिये। पीछे छुटी हुई वस्तु का भेद नहीं पाये। जैसे-जैसे आगे चलते हैं, वैसे-वैसे अपनी वस्तु दूर होती जाती है। जब लौटकर अपनी ओर नहीं देखता है, तब आत्मा रूपी वस्तु का बोध कैसे हो? जैसे मृग अपनी नाभि की कस्तूरी की सुगंधी का आश्रय अलग समझकर उसे बाहर खोजता है, वैसे अपने आत्मा की शांति-पिपासा को बाहर से बुझाने का भ्रम पालकर मनुष्य जीवन खोता है। लोग वेद-पुराणों की नाना विरोधी बातों में उलझकर भटकते हैं। सच्चे ज्ञान के बिना उन्हें कौन सुलझा सकता है? विवेकवानों की संगत से उलटा चलकर आत्मबोध रूपी वस्तु कहां से मिलेगी? पलटू साहेब कहते हैं कि जब तक बाहर से पाने का कर्म नहीं छूटता, तब तक आत्मबोध नहीं मिलेगा। लोग स्वरूपबोध को पीछे ठेलकर बाहर से सत्य पाने के लिए नाना भ्रांतियों में आगे बढ़ते जाते हैं।

कुंडलिया-187

झूठ में सब जग चला छिल छिल जाता अंग॥
छिल छिल जाता अंग धसन भेड़ी की देखा।
करम बड़ा परधान गड़ी पत्थर पर मेखा॥

साच बात को मेटि झूठ कौ जाल पसारा।
जल पषान के बीच बहै सब सूधी धारा॥
परघट है भगवान सकल घट सूझत नाहीं।
जीव से करते द्रोह भरमना पूजन जाहीं॥
पलटू मैं कासे कहौं कुवाँ पड़ी है भंग।
झूठै में सब जग चला छिल छिल जाता अंग॥

शब्दार्थ—मेखा= मेख़, खूंटी, कील।

भावार्थ—संसार के लोग असत्य के प्रचार के प्रभाव में ऐसी भीड़ में बहते हैं जहां अंग छिल-छिल जाते हैं। जैसे आगे की भेड़ी चली वैसे पीछे की भेड़ चलती जाती है। संसार भेड़ियाधसान है। पत्थर पर मजबूत रुकी हुई कील के समान लोग कर्मकाण्ड से सत्य पाना चाहते हैं। सत्य निर्णय को छोड़कर लोग असत्य का जाल फैलाते हैं। कल्याण की धारा आत्मबोध तथा आत्मशोधन है जो सीधी सरल है, किन्तु लोग जल-पत्थर में उसे खोज रहे हैं। सब घट में चेतन आत्मा बैठा है, वही परमात्मा है, परन्तु लोगों को इसका बोध नहीं है। लोग जीव रूपी भगवान से द्रोह करते हैं और भ्रम-वश निर्जीव पिंडियों को पूजने जाते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि मैं किससे कहूं, कुआं में भांग पड़ी है और उसका जल पीकर सब विक्षिप्त हैं और असत्य की भेड़ियाधसान में डूब रहे हैं।

कुंडलिया-188

लड़िका चूल्हे में लुका ढूँढ़त फिरै पहार॥
ढूँढ़त फिरै पहार नहीं घट की सुधि जानै।
जप तप तीरथ बरत जाय के तिल तिल छानै॥
गई आप को भूलि और की बात न मानै।
चूल्है लड़िका रहै चतुरई अपनी ठानै॥
भरमी फिरै भुलान जाइ कै देस देसान्तर।
लड़िका से नहिं भेट मिलत है पानी पाथर॥
पलटू सतसंगति करै भूल में वाही सार।
लड़िका चूल्हे में लुका ढूँढ़त फिरै पहार॥

शब्दार्थ—सार= सत्य, लाभ।

भावार्थ—बालक चूल्हे में छिपा बैठा है, परन्तु माता उसे पहाड़ में खोज रही है, वैसे परमात्मा हृदय में बैठा है, परन्तु मनुष्य देश-देशांतर में खोज रहा

है। लोग अपने हृदय में स्थित आत्मा का बोध नहीं रखते अपितु जप, तप, तीर्थ, व्रत आदि करते हुए परमात्मा को जहां-तहां खोजते रहते हैं। जीव स्वयं को भूला है, विवेकियों की बात मानता नहीं है। 'लड़िका कांधे गांव गोहार' में अपनी बुद्धिमानी समझते हैं। दुनिया के लोग अपने आत्म-अस्तित्व को भूलकर भ्रमवश देश-देशांतर में परमात्मा ढूंढ़ते हैं। वहां परमात्मा नहीं मिलता है—अपितु केवल पानी-पत्थर मिलते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि विवेकवान संतों का सत्संग करना चाहिए। भूल मिटाने के लिए यही सही रास्ता है। 'लड़िका कांधे गांव गोहार' चरितार्थ न करे।

कुंडलिया-189

सूधी मारग मैं चलौं हँसै सकल संसार॥
हँसै सकल संसार करम की राह बताई।
लोक बेद की राह चला हम से नहिं जाई॥
सूधी लिहा तकाय राह संतन की पाई।
मन में भया अनन्द छूटि गइ सब दुचिताई॥
उन कै इहवै हेतु राह यह हमरी आवै।
इहै बूझि कै हँसै हाथ से निबुका जावै॥
पलटू सबका एक मत को अब करै बिचार।
सूधी मारग मैं चलौं हँसै सकल संसार॥

शब्दार्थ—तकाय= चल दिया। दुचिताई= दुविधा। इहवै हेतु= यही उद्देश्य। निबुका जावै= निकाला जा रहा है।

भावार्थ—मैं आत्मज्ञान के सीधे रास्ते पर चलता हूं, परन्तु संसार के लोग हमारी रहनी पर हंसते हैं। वे कर्मकांड का रास्ता बताते हैं; किन्तु मुझसे तो लोक-वेद के रास्ते पर चला नहीं जाता है। मैं संतों का दिया हुआ आत्मज्ञान का सीधा रास्ता पकड़कर चल दिया हूं। मेरे मन की दुविधा मिट गयी है कि परमात्मा बाहर मिलता है। मैं आत्मज्ञान में डूबकर आनन्दमग्न हो गया हूं। भ्रांत लोगों का केवल यही एक उद्देश्य है कि यह हमारी राह पर आ जाय। वे यही समझकर हंसते हैं कि यह हमारे हाथ से छूटकर अलग जा रहा है। पलटू साहेब कहते हैं कि इन भूले हुए सब लोगों का एक विचार है कि परमात्मा हमसे अलग है, फिर उनमें अब कौन सत्य-असत्य का विचार करेगा? वे मेरे सीधे आत्मज्ञान के पथ की हंसी उड़ाते हैं।

कुंडलिया–190

भरमि भरमि सब जग मुवा झूठा देवा सेव॥
झूठा देवा सेव नाम को दिया भुलाई।
बाँधे जमपुर जाहि काल चोटी घिसियाई॥
पानी से जिन पिंड गरभ के बीच सँवारा।
ऐसा साहिब छोड़ि जन्म औरै से हारा॥
ऐसे मूरख लोग खबर ना करैं अपानी।
सिरजनहारा छोड़ि पूजते भूत भवानी॥
पलटू इक गुरुदेव बिनु दूजा कोय न देव।
भरमि भरमि सब जग मुवा झूठा देवा सेव॥

शब्दार्थ—घिसियाई= घसीटता है। साहेब= स्वामी।

भावार्थ—काल्पनिक और जड़ पिंड रूप झूठे देवी–देवता को पूजकर संसार के सारे लोग भ्रमित हो भटक–भटककर मरते हैं। ये सत नाम के अर्थ स्वरूप स्वस्वरूप आत्मा को भुला दिये हैं। अतएव ये जड़ वासना में बंधकर काल–कवलित संसार में भटकेंगे और काल इनकी चोटी पकड़कर घसीटेगा। आत्मा रूपी स्वामी के कर्मों के जोर से माता के गर्भ में रज–वीर्य से यह शरीर बना है। ऐसे आत्मस्वरूप का विस्मरण कर अपने जीवन को अनात्म वस्तुओं में लगाया और जीवन भटकाव में खो दिया। ऐसे मूर्ख लोग अपने आत्मा का स्मरण नहीं करते हैं। सारे ज्ञान–विज्ञान के सृजेता अपने आत्मा का तिरस्कार कर भूत–भवानी पूजने में लग गये। पलटू साहेब कहते हैं कि आत्मज्ञान का बोध देने वाला सद्गुरु ही एक देवता है जो पूजने योग्य है। इसके अलावा कोई देव नहीं है, लेकिन संसार के लोग झूठे देवी–देवता को पूजकर भटकते–मरते हैं।

कुंडलिया–191

संत चरन को छोड़ि कै पूजत भूत बैताल॥
पूजत भूत बैताल मुए पर भूतै होई।
जेकर जहवाँ जीव अन्त को होवै सोई॥
देव पितर सब झूठ सकल यह मन की भ्रमना।
यही भरम में पड़ा लगा है जीवन मरना॥
देई देवा सेइ परम पद केहि ने पावा।
भैरो दुर्गा सीव बाँधि कै नरक पठावा॥

पलटू अंत घसीटिहैं चोटी धरि धरि काल।
संत चरन को छोड़ि कै पूजत भूत बैताल॥

शब्दार्थ—बैताल= एक कल्पित प्रेत-योनि। काल= वासना।

भावार्थ—संसार के लोग विवेकी संतों का सेवा-सत्संग त्यागकर भूत-बैताल पूजते हैं। तो ऐसे लोग मरकर भूत-बैताल ही होंगे, क्योंकि जिनका मन जहां लगा रहता है, अंत में वह वही होता है। याद रखो कल्पित देव-पितर सब झूठे हैं। ये मन के कल्पित मात्र होने से मन के भटकाव के फल हैं। ऐसी ही अनात्म वस्तुओं और कल्पनाओं में पड़कर जीवन का जन्मना-मरना लगा है। कल्पित देवी-देवता पूजकर स्वरूपस्थिति रूपी परम पद किसने पाया है? भैरव, दुर्गा, शिव आदि की मानसिक कल्पनाएं जीव को वासना में बांधकर भवचक्र रूपी नरक में घसीटती हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि याद रखो, अनात्म वस्तुओं की वासना रूपी काल अंत में जीव की चोटी पकड़कर संसार में घसीटेगी। मूढ़ लोग विवेकी संतों की चरण-सेवा छोड़कर भूत-बैताल पूजते हैं।

विशेष—भूत-प्रेत होते ही नहीं, तो उनके पूजने वाले भूत-बैताल क्या होंगे, संसार में भटकेंगे। भूत पूजने की मूढ़ता पर ग्रंथकार ने उन्हें भूत-प्रेत होने की बात परिहास में कही है।

कुंडलिया-192

लिये कुल्हाड़ी हाथ में मारत अपने पाँय॥
मारत अपने पाँय पूजत है देई देवा।
सतगुरु संत बिसारि करै भूतन की सेवा॥
चाहै कुसल गँवार अमी दै माहुर खावै।
मने किये से लड़ै नरक में दौड़ा जावै॥
पौंड़े जल के बीच हाथ में बाँधे रसरी।
परै भरम में जाइ ताहि को कैसे पकरी॥
पलटू नर तन पाइ कै भजन मँहै अलसाय।
लिये कुल्हाड़ी हाथ में मारत अपने पाँय॥

शब्दार्थ—अमी= अमृत। माहुर= विष। पौंड़ें= लेटे, तैरें।

भावार्थ—लोग अपने हाथों से अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारते हैं। ये सब कल्पित देवी-देवता को पूजने में लगे हैं। ये सद्गुरु-संतों से विमुख

होकर कल्पित भूत-प्रेतों की आराधना करते हैं। ये मूढ़ लोग अमृत को त्यागकर विष खाते हैं और इसी में अपना कल्याण समझते हैं। यदि इनको इस भ्रम-पथ पर चलने से रोका जाय तो विवाद करते हैं, प्रत्युत उत्तरोत्तर भ्रम-पथ में ही दौड़े जा रहे हैं। ये हाथ में रस्सी बांधकर जलाशय तैरना चाहते हैं। जो इस प्रकार हठपूर्वक भ्रम-पथ में चलता है उसको जबर्दस्ती पकड़कर कैसे सही रास्ते पर लाया जाय ! पलटू साहेब कहते हैं कि लोग कल्याणदायी मानव शरीर पाकर अपना कल्याण-कार्य नहीं करते। ये आत्म-शोधन कार्य में आलस्य करते हैं। ये अपने हाथों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारते हैं।

कुंडलिया-193

सात पुरी हम देखिया देखे चारों धाम॥
देखे चारों धाम सबन माँ पाथर पानी।
करमन के बसि पड़े मुक्ति की राह भु लानी॥
चलत चलत पग थके छीन भइ अपनी काया।
काम क्रोध नहिं मिटे बैठ कर बहुत नहाया॥
ऊपर डाला धोय मैल दिल बीच समाना।
पाथर में गयो भूल संत का मरम न जाना॥
पलटू नाहक पचि मुए सन्तन में है नाम।
सात पुरी हम देखिया देखे चारों धाम॥

शब्दार्थ—नाम= सत्यनाम, सत्य आत्मा का परिचय, निर्णय वचन।

भावार्थ—हमने सातों पुरियों और चारों धामों को देखा तो सब में देवी-देवता तथा ईश्वर के नाम पर केवल पानी-पत्थर पाया। लोग इनमें भटककर स्थूल कर्मकांड में पड़े हैं। ये द्रष्टा-दृश्य-विवेक रूप मोक्ष का रास्ता भूल गये हैं। तीर्थों में चलते-चलते पैर थक गये और इनकी अपनी काया क्षीण हो गयी। तीर्थों के जल में बैठकर ये बहुत स्नान किये, किन्तु इनके मन के काम-क्रोधादि मनोविकार नहीं नष्ट हुए। ऊपरी देह तो तीर्थों में धो डाला, किन्तु मन में कामादि मल जमे हैं। ये लोग पत्थर की पिंडियों की पूजा में अपने आप को भूल गये। ये विवेकवान संतों का रहस्य नहीं समझे कि उनसे आत्मज्ञान की सीख लें। पलटू साहेब कहते हैं कि ये लोग व्यर्थ में पानी-पत्थर में भटक-भटक एवं पच-पच कर मरते हैं। वस्तुतः आत्मज्ञान परिचायक निर्णय वचन विवेकी संतों में मिलेंगे, जिनसे आत्मबोध होगा।

कुंडलिया-194

घर में मेवा छोड़ि कै टेंटी बीनन जाय॥
टेंटी बीनन जाय जानै येही है मेवा।
तीरथ मँहै नहाय करै मूरति की सेवा॥
छोड़ि बोलता ब्रह्म करै पथरे की पूजा।
खसम न आवै पास नारि जब खोजै दूजा॥
सूखा हाड़ चबाय स्वान मुख आवै लोहू।
रहै हाड़ के भोर भेद ना जानै वोहू॥
पलटू आगे धरा है आप से नाहीं खाय।
घर में मेवा छोड़ि के टेंटी बीनन जाय॥

शब्दार्थ—टेंटी= करील के नीरस फल। खसम= पति, स्वामी। लोहू= रक्त, खून। भोर= भूल।

भावार्थ—लोग घर में रखे मेवे को छोड़कर बाहर वन में करील के नीरस फल बीनने जाते हैं। वे समझते हैं कि ये ही मेवे हैं। लोग तीर्थों के जल में स्नान कर और जड़-मूर्तियों की पूजा कर कल्याण-प्राप्ति का भ्रम करते हैं। लोग बोलते हुए आत्मा रूपी ब्रह्म को छोड़कर पत्थर की पूजा करते हैं। जब स्त्री दूसरे पुरुष की खोज में है, तब उसे अपना पति नहीं मिल सकता—जब मनुष्य परोक्ष में अपना लक्ष्य खोजता है तब उसे अपने अपरोक्ष आत्मस्वरूप का बोध कैसे हो? कुत्ते सूखी हड्डी चाभते हैं तो उनके अपने ही मुख से खून निकलता है और उसी का स्वाद लेकर वे समझते हैं कि हड्डी से रक्त आ रहा है। मूढ़ कुत्ते इस भूल में रहते हैं कि हड्डी से रक्त आ रहा है। वे यह भेद नहीं जानते कि रक्त उनके जबड़े से ही आ रहा है। इसी प्रकार शांति अपने चित्त की स्थिरता में है। अनात्म वस्तुएं तो सूखी हड्डी के समान हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि आगे व्यंजन परोसा है किंतु उसे लोग स्वयं नहीं खाते। घर के मेवे छोड़कर वन में करील के नीरस दाने बीनने जाते हैं।

कुंडलिया-195

लम्बा घूँघट काढ़ि कै लगवारन से प्रीति॥
लगवारन से प्रीति जीव से द्रोह बढ़ावै।
पूजत फिरै पषान नहीं जो बोलै खावै॥

सम्मै पूरन ब्रह्म ताहि को तनिक न मानै।
कर नटी को काम लोक पतिबर्ता जानै॥
उदर पालना करै नाम ठाकुर को लेई।
सब जीव भगवान ताहि को तनिक न सेई॥
पलटू सबै सराहिये जरै जगत की रीति।
लम्बा घूँघट काढ़ि कै लगवारन से प्रीति॥

शब्दार्थ —लगवारन= पर-पुरुष। नटी= वेश्या। ठाकुर= भगवान।

भावार्थ—जैसे एक कुलटा स्त्री लम्बा घूंघट मुंह पर डालकर पर-पुरुषों से प्रेम करे—पातिव्रत्य का दिखावा कर पर-पुरुष में रत रहे, वैसे वे धार्मिक कहलाने वाले हैं जो धर्म का वेष बनाकर कल्पित ईश्वर की पूजा करते हैं और जीवों से वैर करते हैं। ऐसे लोग ऐसे पत्थर के देवता पूजते फिरते हैं जो न बोलते हैं और न खाते हैं। सब प्राणियों में बैठे चेतन जीव साक्षात ब्रह्म हैं। परन्तु ये लोग उन्हें तनिक भी नहीं मानते हैं। ये वेश्या का काम करते हैं और ढोंग ऐसा दिखाते हैं कि लोग इन्हें पतिव्रता समझें। ये लोग भगवान का नाम लेकर केवल अपना पेट-पालन करते हैं। सभी जीव साक्षात भगवान हैं, परन्तु ये लोग उनकी सेवा तनिक भी नहीं करते। पलटू साहेब कहते हैं कि उसकी सब प्रकार से प्रशंसा करना चाहिए जो संसार की भ्रामक मान्यताओं एवं रीति-रिवाजों को आत्मज्ञान की आग में जला दे। पातिव्रत्य के दिखावा में व्यभिचार वृत्ति न हो।

कुंडलिया-196

बहुत पुरुष के भोग से बिस्वा होइ गई बाँझ॥
बिस्वा होइ गई बाँझ जाहि के पुरुष घनेरे।
नाहिं एक की आस फिरै घर घर बहुतेरे॥
एक केरि होइ रहै दूसर से होइ गलानी।
तुरत गरभ रहि जाइ सिवाती चात्रिक पानी॥
राम पुरुष को छोड़ि करै देवतन की पूजा।
बिस्या की यह रीति खसम तजि खोजै दूजा॥
पलटू बिना बिचार से मूरख डूबै माँझ।
बहुत पुरुष के भोग से बिस्वा होइ गई बाँझ॥

शब्दार्थ—गलानी= घृणा, उदासीनता। सिवाती= स्वाति। खसम= पति, स्वामी। मांझ= बीच धारा।

भावार्थ—वेश्या बहुत पुरुषों द्वारा भोगी जाती है, इसलिए वह वंध्या रह जाती है। जिसको एक पुरुष से प्रेम नहीं है, अपितु बहुत पुरुषों से लगाव है, और घर-घर अपनी देह देने के लिए घूमती है, उसकी यही दशा होती है। यदि स्त्री मात्र एक पुरुष का सम्बन्ध करके रहती है और अन्य पुरुषों से उदास रहती है तो उसको अपने पति से तुरन्त गर्भ टिक जायेगा। कहानी के अनुसार जैसे चातक केवल स्वाति नक्षत्र का जल चाहता है, वैसे पतिव्रता स्त्री केवल अपने पति का संग चाहती है। इस मनोवृत्ति रूपी स्त्री का केवल एक पुरुष है आत्माराम, किन्तु उसकी उपासना छोड़कर मनुष्य कल्पित देवताओं की सेवा करता है। यही वेश्या का व्यवहार है कि अपना पति छोड़कर दूसरे के पति का साथ करना। पलटू साहेब कहते हैं कि आत्मस्वरूप का विवेक न होने से मनुष्य भव सागर की बीच धारा में डूबता है। बहुत पुरुषों से भोगी जाकर जैसे वेश्या वंध्या रह जाती है, वैसे बहुत देवी-देवताओं की उलझन में पड़ने से साधक आत्मास्थिति से दूर रह जाता है।

कुंडलिया-197

पलटू तन करु देवहरा मन करु सालिगराम॥
मन करु सालिगराम पूजते हाथ पिराने।
धावत तीरथ बरत रैनि दिन गोड़ खियाने॥
माला फेरि न जाय परे अँगुरिन में घट्ठा।
राम बोलि न जाय जीभ में लागै लट्ठा॥
निति उठि चन्दन देत माथ कै लोहू सोखा।
बालभोग के खात मिट्यो ना मन का धोखा॥
जल पषान के पूजते सरा न एकौ काम।
पलटू तन करु देवहरा मन करु सालिगराम॥

शब्दार्थ—देवहरा= देवालय, देव मंदिर। सालिगराम= शालग्राम, गंडकी नदी के किनारे बसा एक ग्राम, वैष्णवों का तीर्थ, जल प्रवाह से घिसी गोल-चिकनी श्याम वर्ण पत्थर की बटिया जिस पर चक्र का चिह्न रहता है जिसे उपवीत कहते हैं और जो विष्णु के रूप में पूजी जाती है। लट्ठा= लासा बंध जाना। लोहू= रक्त। बालभोग= देवताओं को चढ़ाया गया प्रसाद।

भावार्थ—पलटू साहेब कहते हैं कि अपने शरीर को देवमंदिर समझो और पवित्र मन को शालग्राम भगवान। सब समय मन को

पवित्र रखने का काम करो। शालग्राम तथा मूर्तियों को पूजते-पूजते तो हाथ सूख गये। रात-दिन तीर्थ-व्रत में दौड़ते-दौड़ते पैर घिस गये। माला फेरते-फेरते अंगुलियों में घट्ठे पड़ गये, इसलिए मुझसे माला नहीं फेरी जाती। अब राम-राम मुझसे बोला नहीं जाता, क्योंकि राम-राम बोलते जीभ में लासा बंध गया। नित्य माथा पर चंदन लगाते-लगाते मस्तक के चाम का रक्त सूख गया। भगवान का प्रसाद खाते-खाते मन का धोखा नहीं मिटा। जल और पत्थर को पूजने से कल्याण का काम नहीं बना, शांति नहीं मिली। अतएव पलटू साहेब कहते हैं कि शरीर-मंदिर में मन-देवता को पवित्र करने का काम करो।

कुंडलिया-198

सूधी मेरी चाल है सब को लागै टेढ़॥
सबको लागै टेढ़ बूझ बिनु कौन बतावै।
आपु चलै सब टेढ़ टेढ़ हमको गोहरावै॥
हम रहते निहकरम नाहिं करमन की आसा।
तुम्हरे केवल राम आन को नाहीं जानो।
तुम्हरे देवता पित्र भूत की पूजा मानो॥
पलटू उलटा लोग सब नाहक करते खेढ़।
सूधी मेरी चाल है सब को लागै टेढ़॥

शब्दार्थ—निहकरम= कर्मकाण्ड से अलग, निष्काम। खेढ़= झगड़ा।

भावार्थ—मेरे बरताव सीधे हैं, किन्तु वे सबको टेढ़े लगते हैं। यदि वे नहीं समझ रखते तो उनको कौन समझा पावेगा? लोग स्वयं टेढ़े रास्ते पर चलते हैं और मुझे कहते हैं कि ये टेढ़े रास्ते पर हैं। मैं तो कर्मकाण्ड से रहित तथा लोक-परलोक की कामनाओं से रहित रहता हूं। हे रामोपासको! तुम्हारे तो केवल श्रीराम परम उपास्य हैं, अन्य को तुम समझते ही नहीं हो। इसके साथ नाना देवता, मृत पितर तथा भूत-प्रेत की भी तुम पूजा करना मानते हो। पलटू साहेब कहते हैं कि अन्य लोग ही उलटे रास्ते पर चलते हैं। मुझसे व्यर्थ ही झगड़ा करते हैं। मेरा आत्मलीनता का सीधा रास्ता है, किन्तु लोगों को यह टेढ़ा लगता है।

विशेष—इस कुंडलिया में चौथी पंक्ति के बाद वाली पंक्ति नहीं है।

कुंडलिया-199

मैं अपने रँग बावरी जरि जरि मरते लोग॥
जरि जरि मरते लोग सोच नाहक को करते।
पर संपति को देखि मूढ़ बिनु मारे मरते॥
न काहू की जाति पाँति हम बैठन जाई।
लोग करै चौवाव एक को एक बुलाई॥
चलिहौं सूधी चाल राम के मारग माहीं।
देव पितर तजि करम मानौं काहू को नाहीं॥
पलटू हम को देखि कै लोगन के भा रोग।
मैं अपने रँग बावरी जरि जरि मरते लोग॥

शब्दार्थ—चौवाव= बकबक, निन्दा।

भावार्थ—मैं अपनी आत्मस्थिति में मस्त हूं, किन्तु अज्ञानी लोग मुझे देख-देख जल मरते हैं। वे मेरे विषय में व्यर्थ सोचते हैं। दूसरे की संपत्ति को देखकर मूर्ख लोग बिना किसी के मारे मरते हैं। मैं किसी की जाति-पांति में बैठने नहीं जाता हूं, परन्तु लोग एक दूसरे को बुलाकर मेरे विषय में निन्दा करते हैं। मैं तो आत्माराम की स्थिति रूपी सीधी चाल में चलता हूं और उसी में जीवनपर्यन्त चलूंगा। मैं देवता, मृत पितर आदि के नाम पर पूजादि कर्म करना नहीं मानता हूं। पलटू साहेब कहते हैं कि मेरी रहनी को देखकर लोगों के मन में द्वेष का रोग पैदा हो गया है। किन्तु मैं अपनी आत्मस्थिति में मस्त हूं, लोग भले मुझे देखकर ईर्ष्या में जलें-भुनें।

23. जीव हिंसा पाप है

कुंडलिया-200

लहम कुल्लहुम जिसिम का नबी किया फर्मूद॥
नबी किया फर्मूद हदीस की आयत माहीं।
सब में एकै जान और कोउ दूजा नाहीं॥
खून गोस्त है एक मौलवी जिबह न छाजै।
सब में रोसन हुआ नबी का नूर बिराजै॥
क्यों खैंचै तू रूह गुनहगारी में पड़ता।
बुजरुग के फर्मूद बमोजिब नाहीं डेरता॥

पलटू जो बेदरदी सो काफिर मरदूद।
लहम कुल्लहुम जिसिम का नबी किया फर्मूद॥

शब्दार्थ—लहम=मांस। कुल्लहुम=कुल, बिलकुल, पूरा। जिसिम=जिस्म, शरीर। नबी=रसूल, पैगंबर, ईश्वर-दूत, मुहम्मद साहब। फर्मूद=फरमान, आज्ञा। हदीस=मुहम्मद साहेब के वचन और कार्य। आयत=वचन, कुरान का वचन। जिबह=जिब्ह, जिसका वध किया गया हो, वध। नूर=प्रकाश। रूह=आत्मा, जीव। बुजरूग=बुजुर्ग, वृद्ध तथा सम्मानित व्यक्ति। बमोजिब=बमूजिब=अनुसार, मुताबिक। डेरता=डरता, भय करता। काफिर=नास्तिक। मरदूद=रद्द किया हुआ, त्यागा हुआ, एक प्रकार की गाली।

भावार्थ—रसूल हजरत मुहम्मद ने हदीस में वचन कहा तथा आज्ञा दी है कि पूरा मांस किसी प्राणी के शरीर का होता है। सभी चलते-फिरते प्राणी में एक ही प्रकार की जान होती है, अतएव सब जीव अपने आत्मा के समान हैं, कोई दूसरा नहीं है। रक्त और मांस एक ही है। खून करके ही मांस मिलता है, अतएव हे मौलबी साहब! किसी प्राणी को मारना शोभा नहीं देता। जो सब प्राणियों में ज्ञान-प्रकाश है वह नबी का ही बताया नूर है, प्रकाश है। तू क्यों किसी प्राणी को मारकर उसकी खाल खींचता है और पाप कर्म में पड़ता है? बुजुर्गों की आज्ञा के अनुसार तू नहीं चलता है और पाप से भय नहीं करता है। पलटू साहेब कहते हैं कि जो दया छोड़कर कर्म के नाम पर जीव-हत्या करते हैं, वे नास्तिक हैं, उनका जीना बेकार है। नबी ने यह आज्ञा दी है कि सब मांस प्राणियों के शरीर से ही आता है, अतएव प्राणि-हत्या और मांसाहार बहुत गलत है।

कुंडलिया-201

गरदन मारै खसम की लगवारन के हेत॥
लगवारन के हेत पसू औ मेंढ़ा मारै।
पूजै दुरगा देव देवखरी सिर दै मारै॥
माटी देवखरि बाँधि मुए की पूजा लावै।
जीवत जिउ को मारि आनि कै ताहि चढ़ावै॥
सब में है भगवान और ना दूजा कोई।
तेकर यह गति करै भला कहवाँ से होई॥

पलटू जिउ को मारि कै बलि देवतन को देत।
गरदन मारे खसम की लगवारन के हेत॥

शब्दार्थ—खसम= स्वामी, जीव, परमात्मा। लगवारन= उपपतियों,नकली इष्टों, देवी-देवताओं। देवखरी= देवस्थान, जड़-पिंड।

भावार्थ—असली परमात्मा और देवता चलते-फिरते प्राणी हैं, और कल्पित जड़-पिंडियों के देवता व्यर्थ हैं, किन्तु मनुष्य भूलवश असली देवता—प्राणियों को मारता है और झूठे देवता—जड़ पिंडियों की पूजा करता है; जीव-हत्या करके निर्जीव देवताओं को खुश करने का ढोंग करता है। लोग भेड़ आदि अनेक पशुओं को मारकर दुर्गा-देवी पूजते हैं और जड़ देवस्थान पर सिर पटकते हैं। मिट्टी पाटकर देवस्थान बनाते हैं और जड़-पिंडी को पूजते हैं। जीवित प्राणी को मारकर उन जड़ पिंडियों पर चढ़ाते हैं। याद रखो, चलते-फिरते सारे प्राणियों में भगवान बैठा है। उनमें कोई दूसरा नहीं है। सब में बैठे आत्मा रूपी परमात्मा की हत्या करने वाले का भला कैसे होगा? पलटू साहेब कहते हैं कि ये भूले लोग जीव को मारकर निर्जीव देवताओं की पूजा करते हैं। यह तो परमात्मा को मारकर झूठे की सेवा करना है।

24. सदाचारी श्रेष्ठ है, वर्ण नहीं

कुंडलिया-202

हरि को भजै सो बड़ा है जाति न पूछै कोय॥
जाति न पूछै कोय हरि को भक्ति पियारी।
जो कोइ करै सो बड़ा जाति हरि नाहिं निहारी॥
बधिक अजामिल रहे रहे फिर सदन कसाई॥
गनिका जाति रैदास आपु में लिया मिलाई।
लिया गिद्ध को गोदि दिया बैकुंठ पठाई॥
पलटू पारस के छुए लोहा कंचन होय।
हरि को भजै सो बड़ा है जाति न पूछै कोय॥

शब्दार्थ—जाति= मानी हुई जाति, वर्ण।

भावार्थ—हरिभजन करने वाला, आत्मशोधन करके पवित्र रहनी में चलने वाला श्रेष्ठ है। कोई विवेकवान लौकिक जाति नहीं पूछता। हरि को भक्ति प्रिय है। जो कोई भक्ति-पथ पर चले वही बड़ा है। हरि ने किसी की

जाति नहीं देखी। अजामिल तथा सदन कसाई बधिक रहे, गणिका वेश्या रही। रविदास जी नीच कही जाने वाली जाति के थे। जटायु गिद्ध थे जिन्हें श्रीराम ने अपनी गोद में बैठा लिया। इन सबको भगवान ने बैकुंठ भेज दिया, क्योंकि ये भक्ति-पथ के पथिक थे। पलटू साहेब कहते हैं कि लोहा पारस पत्थर में छू जाने से सोना हो जाता है। इसलिए हरि को भजने वाला श्रेष्ठ है। विवेकवान जाति नहीं पूछते।

कुंडलिया-203

साहिब के दरबार में केवल भक्ति पियार॥
केवल भक्ति पियार साहिब भक्ती में राजी।
तजा सकल पकवान लिया दासी सुत भाजी॥
जप तप नेम अचार करै बहुतेरा कोई।
खाये सेवरी के बेर मुए सब ऋषि मुनि रोई।
किया युधिष्ठिर यज्ञ बटोरा सकल समाजा।
मरदा सबका मान सुपच बिनु घंट न बाजा॥
पलटू ऊँची जाति को जनि कोइ करै हंकार।
साहिब के दरबार में केवल भक्ति पियार॥

शब्दार्थ—भाजी= शाक, सब्जी। जनि= मत।

भावार्थ—साहेब के दरबार में केवल भक्ति प्रिय है। साहेब भक्ति में ही प्रसन्न रहते हैं। श्रीकृष्ण महाराज ने दुर्योधन के सारे पकवान छोड़कर दासी-पुत्र विदुर के घर की सब्जी खायी। ऋषि-मुनि जप, तप, नियम, आचार से बहुत चलते थे, किन्तु श्रीराम ने शबरी के बेर-फल खाये और ऋषि-मुनि टगर-टगर ताकते रह गये, किन्तु वहां वे नहीं गये। युधिष्ठिर ने यज्ञ किया और ब्राह्मण तथा ऋषि-मुनि समाज को बटोरा परन्तु सबके अहंकार का मर्दन हो गया। क्योंकि श्वपच भक्त के भोजन किये बिना घंटा नहीं बजा। पलटू साहेब कहते हैं कि मानी हुई ऊंची जाति का कोई अहंकार न करे। साहेब के दरबार में भक्ति ही प्रिय है।

कुंडलिया-204

गनिका गिद्ध अजामिल सदना औ रैदास॥
सदना औ रैदास भली इनकी बनि आई।
निसु दिन रहैं हजूर भक्ति कीन्ही अधिकाई॥

जाति न उत्तम येह इन्हैं सम और न कोई।
ब्रह्मा कोटि कुलीन नीच अब कहिये सोई॥
उनसे बड़ा न कोय और सब उन के नीचे।
उन्हें बराबर नहिं कोऊ तिर्लोक के बीचे॥
अबिनासी की गोद में पलटू करै बिलास।
गनिका गिद्ध अजामिल सदना औ रैदास॥

शब्दार्थ—हजूर= हुजूर, सामने, समीप, निकट।

भावार्थ—गणिका, गिद्ध जटायु, बधिक अजामिल, सदन कसाई, रविदास इन सबकी भक्ति के कारण उच्च गति हुई। जिन्होंने उत्तम भक्ति की, वे रात-दिन उपास्य के सामने रहे। उपर्युक्त भक्तों की मानी हुई जाति उत्तम नहीं थी, परन्तु इनके समान बड़ा कोई नहीं है। ब्रह्मा महान कुलीन थे, किन्तु उनका प्रपौत्र रावण महा नीच कहा जाता है। अतएव भक्तिमान एवं पवित्रात्मा से बड़ा कोई नहीं है, अपितु अन्य सब उनके नीचे हैं। तीनों लोकों में भक्तिमान के बराबर कोई नहीं है। पलटू साहेब कहते हैं कि मैं अविनाशी आत्मा की स्थिति में आनन्दमग्न हूं। इसी प्रकार गणिका, गिद्ध, अजामिल, सदन और रविदास महान हैं।

विशेष—महाकाव्यों और पुराणों के अनुसार यहां ग्रंथकार ने भक्तिमानों की प्रशंसा की है जिसमें विमान पर बैठकर बैकुण्ठ में जाना, श्वपच भक्त के भोजन करने पर घंटा बजना आदि चमत्कारी बातें हैं। ये सब भक्ति का महत्त्व बताने के लिए अतिशयोक्तियां हैं। सार है मनुष्य में भक्ति तथा सदाचार का महत्त्व है, जाति-वर्ण का नहीं।

25. निन्दक उपकारी हैं

कुंडलिया-205

निन्दक जीवै जुगन जुग काम हमारा होय॥
काम हमारा होय बिना कौड़ी को चाकर।
कमर बाँधि के फिरै करै तिहुँ लोक उजागर॥
उसे हमारी सोच पलक भर नाहिं बिसारी।
लगी रहै दिन रात प्रेम से देता गारी॥
संत कँहै दृढ़ करै जगत का भरम छुड़ावै।
निन्दक गुरु हमार नाम से वही मिलावै॥

सुनि के निन्दक मरि गया पलटू दिया है रोय।
निन्दक जीवै जुगन जुग काम हमारा होय॥

शब्दार्थ—संत कँहै= संत को।

भावार्थ—मेरा निंदक युगानुयुग जीता रहे। उससे मेरा कल्याण होता है। मैं उसको एक कौड़ी भी नहीं देता हूं परन्तु वह मेरी सब समय सेवा करता है। वह मेरी निन्दा करने के लिए कमर बांधकर घूमता है और मेरी निन्दा करके मेरा प्रचार करता है। उसे मेरी चिन्ता है। वह मुझे एक पलक भी नहीं भूलता है। वह मेरी निन्दा करने में रात-दिन लगा रहता है। वह मानो मुझे प्रेम से गाली देता है। निन्दक संतों की निन्दा करके उन्हें सहनशीलता में पक्का करता है। संसार के लोग मुझे अच्छा मानते हैं। मेरा निन्दक मेरी निन्दा करके भ्रम दूर करता है, तो इससे मेरा भला होता है। मेरा निन्दक मेरा गुरु है। उसके द्वारा निन्दा करने से मेरा मन संसार से अधिक निर्मोह होता है और सतनाम में तथा उसके अर्थ स्वरूप आत्मस्थिति में मेरी अधिक लगन लगती है। पलटू साहेब कहते हैं कि जब मैं सुना कि मेरा निन्दक मर गया, तो मुझे रुलाई आ गयी। मेरा निन्दक युगानुयुग जीये। उसके निन्दा-कर्म से मेरा कल्याण होता है।

कुंडलिया-206

निन्दक रहै जो कुसल से हम को जोखों नाहिं॥
हम को जोखों नाहिं गाँठि कौ साबुन लावै।
खरचै अपनो दाम हमारी मैल छुड़ावै॥
तन मन धन सब देहि संत की निन्दा कारन।
लेहिं संत तेहि तार बड़े वे अधम-उधारन॥
संत भरोसा बड़ा सदा निन्दक का करते।
निन्दक की अति प्रीति भाव दूसर नहिं धरते॥
पलटू वे परस्वारथी निन्दक नर्क न जाहिं।
निन्दक रहै जो कुसल से हम को जोखों नाहिं॥

शब्दार्थ—जोखों= जोखिम, खतरा।

भावार्थ—यदि मेरा निन्दक कुशल-मंगल से बहुत दिन जीवित रहे तो मुझे कोई खतरा नहीं होगा। वह मानो अपनी जेब से पैसा देकर साबुन लाता है। वह अपना पैसा खर्च करके मेरा मैल धोता है। वह अपने तन, मन और

धन को समर्पित करके संत की निन्दा करता है। संत अपने निन्दक का भी उद्धार कर लेते हैं, क्योंकि वे अधमों के बड़े उद्धारक होते हैं। संत अपने निन्दक का बड़ा भरोसा रखते हैं। संत यही भाव रखते हैं कि मेरे निन्दक का मुझसे बड़ा प्रेम है, तभी वह मेरी निन्दा करके मेरे मल को धोता है। संत अपने निन्दक के प्रति अन्यथा भाव नहीं रखते। पलटू साहेब कहते हैं कि संत अपने मन में यह भाव रखते हैं कि मेरा निन्दक मेरा बड़ा उपकारी है। उसको नरक में न जाना पड़े। उसकी शुभ गति हो। निन्दक सकुशल जीवित रहे तो उससे मुझे कोई खतरा नहीं है।

कुंडलिया-207

निन्दक है परस्वारथी करै भक्त का काम॥
करै भक्त का काम जगत में निन्दा करते।
जो वे होते नाहिं भक्त कहवाँ से तरते॥
आप नरक में जाहिं भक्त का करैं निबेरा।
फिर भक्तन के हेतु करैं चौरासी फेरा॥
करैं भक्त की सोच उन्हें कुछ और न भावै।
देखो उनकी प्रीति लगन जब ऐसी लावै।
पलटू धोबी अस मिल्यौ धोवत है बिनु दाम।
निन्दक है परस्वारथी करै भक्त का काम॥

शब्दार्थ—परस्वारथी= दूसरे का हित करने वाला।

भावार्थ—निन्दक बड़े परोपकारी हैं। वे भक्त-संत की संसार में निन्दा करके उनका बड़ा कल्याण करते हैं। यदि निन्दक संसार में न होते तो संत-भक्तों का कैसे उद्धार होता? निन्दक स्वयं तो नरक में जाते हैं, किन्तु संतों-भक्तों के मन में भवबंधन खोलने के लिए विवेक-शक्ति पैदा करते हैं। आगे और भी निन्दक चौरासी के चक्कर में घूम-घूम करके जब-जब मनुष्य-शरीर पाते हैं तब-तब वे संत-भक्त की निन्दा करके उनकी साधना में बल देते हैं। निन्दक को सदैव संत-भक्त की चिंता रहती है कि उनकी कितनी निन्दा की जाय। उन्हें अन्य बात अच्छी नहीं लगती। जब उनकी लगन संत-निन्दा में इतनी है तो उनका संत-भक्तों के उद्धार में प्रेम देखने योग्य होता है। निन्दक परोपकारी हैं, वे संतों-भक्तों की निन्दा करके उन्हें साधना पथ में बलवान करते हैं।

विशेष—ऊपर तीनों कुंडलियों में श्री पलटू साहेब ने निन्दकों को व्यंग्यात्मक ढंग से लिया है और अपनी तथा संत-भक्तों की प्रतिक्रियाविहीन शांति-रहनी का चित्रण किया है। यह सच है कि जो मन का मोह बहुत काल की साधना से नहीं मिटता है, वह प्रतिकूलता आने पर क्षण में मिट जाता है। साधक, भक्त तथा संत या कोई भी विवेकी नर-नारी अपने निन्दक से घबराता नहीं है और न उसकी अहित कामना करता है।

26. विविध विषय

कुंडलिया-208

बनिया पूरा सोई है जो तौले सत नाम॥
जो तोलै सत नाम छिमा का टाट बिछावै।
प्रेम तराजू करै बाट बिस्वास बनावै॥
बिबेक की करै दुकान ज्ञान का लेना देना।
गादी है संतोष नाम का मारै टेना॥
लादै उलदै भजन बचन फिर मीठे बोलै।
कुंजी लावै सुरत सबद का ताला खोलै॥
पलटू जिसकी बन परी उसी से मेरा काम।
बनिया पूरा सोई है जो तौलै सत नाम॥

शब्दार्थ—टेना= पासंग।

भावार्थ—सच्चा व्यापारी वही है जो सदैव सतनाम को तौलता है—सतनाम का अर्थस्वरूप आत्मशोधन करता है। वह क्षमा का टाट बिछाता है, प्रेम का तराजू और विश्वास का बाट रखकर विवेक की दुकान लगाता है और आत्मज्ञान का लेन-देन करता है। उसकी दुकान की गद्दी संतोष है। सतनाम का पासंग मारता है—सदा सत्य का निर्णय करता है। आत्मशोधन रूपी भजन करना ही उसका माल का लादना और उतारना है। वह सदैव ही मीठे वचन बोलता है। वह मनोवृत्ति रूपी चाबी से निर्णय शब्दों का ताला खोलता है। पलटू साहेब कहते हैं कि जिन्होंने अपना कल्यण कर लिया है मैं उनकी शरण में हूं। अतएव पूर्ण व्यापारी वही है जो सतनाम के अर्थस्वरूप आत्मानुसंधान तथा आत्मस्थिति में रत है।

कुंडलिया-209

भीतर औंटे तत्त्व को उठै सबद की खानि॥
उठै सबद की खानि रहै अंतर लौ लागी।
सुरति देइ उदगारि जोगिनी आपुइ जागी॥
सहज घाट हरि ध्यान ज्ञान से मन परमोधै।
नहिं संग्रह नहिं त्याग अपनी काया सोधै॥
प्रेम भभूत लगाइ धरै धीरज मृगछाला।
तिलक उनमुनी भाल जपत है अजपा माला॥
पलटू ऐसा होय जो सो जोगी परमान।
भीतर औंटे तत्त्व को उठै सबद की खानि॥

शब्दार्थ—औंटे= पकावै। तत्त्व= सत्य, आत्मज्ञान। सुरति= मनोवृत्ति। उदगारि= जाग्रत कर दे। जोगिनी= परिपक्व मनोवृत्ति। परमोधै= बोध दे।

भावार्थ—जब साधक निरन्तर अंतर्मुख साधना से आत्मज्ञान की स्थिति परिपक्व कर लेता है, तब अनुभव की खान फूट पड़ती है। उससे निर्णय शब्दों का निर्झर बह निकलता है। वह साधक आत्मलीनता में ही लगनशील हो जाता है। वह मोह-नींद भंगकर मनोवृत्ति को विवेक में जागृत कर देता है। फिर परिपक्व मनोवृत्ति स्वयं जागृत रहती है। वह सहज समाधि के घाट पर पहुंचकर आत्मलीनता रूपी ध्यान में निमग्न हो जाता है। जब व्यवहार में आता है तब वह आत्मज्ञान द्वारा साक्षी भाव में रहकर मन को उसी का बोध देता है। उसके जीवन में न संग्रह का आग्रह रहता है और न त्याग का। वह निरन्तर अपने शरीर के विकारों को शोधता है। वह प्रेम का भभूत लगाता है, धैर्य का मृगछाला धारण करता है, जगत से उदास रहने का मस्तक में तिलक लगाता और अजपा माला का जप करता है—संकल्पशून्य हो शांत रहता है। पलटू साहेब कहते हैं कि जो उपर्युक्त रहनी में रहता है, वह प्रामाणिक योगी है। वह अंतर्मुख होकर आत्मस्वरूप का अनुसंधान करता है और आत्म-अनुभव का सागर हो जाता है।

कुंडलिया-210

बार बार विनती करै पलटू दास न लेइ॥
पलटू दास न लेइ रहै कर जोरे ठाढ़ी।
सरनागत मैं रहौं सरन बिनु लागै गाढ़ी॥

गोड़ दाबि मैं देउँ चरन धै सेवा करिहौं।
चौका देइहौं लीपि बहुरि मैं पानी भरिहौं॥
पैंड़ा देउँ बुहारि सबन कै जूठ उठावौं।
जनि दुरियावहु मोहिं रहै मैं इहवाँ पावौं॥
मुक्ति रहै द्वारै खड़ी लट से झाड़ू देइ।
बार बार बिनती करै पलटू दास न लेइ॥

शब्दार्थ—गाढ़ी= गाढ़, दुख। पैंड़ा= रास्ता। जनि दुरियावहु= दूर न करो। लट= बाल।

भावार्थ—पलटू साहेब कहते हैं कि मुक्ति मेरे सामने आकर बारंबार विनती करती है और हाथ जोड़कर खड़ी रहती है। वह कहती है कि मैं आपकी शरण में हूं। आपकी शरण के बिना मुझे दुख लगता है। मैं आपके पैर दबाऊंगी। आपके चरण धोकर सेवा करूंगी, चौका लीपूंगी, पानी भरूंगी, आपका रास्ता बुहारूंगी, सबका जूठ उठाऊंगी। मैं आपकी शरण में रहने पाऊं तो मैं सारी सेवा करूंगी। अतएव आप मुझे अपने द्वार से मत खदेड़ें। पलटू साहेब कहते हैं कि मुक्ति हाथ जोड़कर मेरे द्वार पर खड़ी है। वह अपने सिर के बालों से झाड़ू लगाती है और बार-बार विनती करती है कि मुझे अपनी शरण में रख लो, परन्तु मैं उसे अपनी शरण में नहीं लेता हूं।

विशेष—संत पलटू साहेब जो कहना चाहते हैं उसे अपने काव्य में बांध देते हैं। यह उनकी अद्‌भुत प्रतिभा और काव्य शक्ति है। मुक्ति कोई प्राणी नहीं है जो किसी से प्रार्थना करे। मुक्ति है वासनाहीन प्रशांत दशा और वह श्री पलटू साहेब के जीवन में है, तब वे और किस मुक्ति की आशा करें। वे अपनी मुक्ति की मस्तानगी में ही उपर्युक्त बातें कहते हैं जो काव्यात्मक है।

कुंडलिया-211

सुरति सुहागिनि उलटि कै मिली सबद में जाय॥
मिली सबद में जाय कन्त को बसि में कीन्हा।
चलै न सिव कै जोर जाय जब सक्ती लीन्हा॥
फिर सक्ती ना रही मिली जब सिव में जाई।
सिव भी फिर न रहे सक्ति से सीव कहाई॥
अपने मन कै फेर और ना दूजा कोई।
सक्ती सिव है एक नाम कहने को दोई॥
पलटू सक्ती सीव का भेद गया अलगाय।
सुरति सुहागिनि उलटि कै मिली सबद में जाय॥

शब्दार्थ—सुहागिनि= सुहागिन, सधवा, सौभाग्यवती।

भावार्थ—मनोवृत्ति रूपी सौभाग्यवती संसार से लौटकर सद्गुरु के निर्णय वचनों के अनुसार आत्म-पति से जा मिली और उसने आत्मलीन होकर मानो अपने आत्म-पति को अपने वश में कर लिया। शक्ति ने जाकर जब शिव को वश में कर लिया तब शिव का बल नहीं चलता। परन्तु जब शक्ति शिव में मिल गयी तब शक्ति का अलग अस्तित्व नहीं रह गया। फिर शिव भी नहीं रह गया। शक्ति से ही शिव कहलाता है। यह सब अपने मन का चक्कर है। आत्मा के अलावा न कहीं शक्ति है और न शिव है। शक्ति और शिव एक ही बात है, केवल नाम भिन्न हैं जो कहावत मात्र है। पलटू साहेब कहते हैं कि पूर्ण ज्ञान की स्थिति में शक्ति और शिव का भेद व्यर्थ हो गया, जब सौभाग्यवती मनोवृत्ति निर्णय शब्दों के अनुसार आत्मा में मिल गयी।

विशेष—उपर्युक्त कथन में भी अलंकारों का घटाटोप है। सीधी बात है, जब मनोवृत्ति आत्मलीन हो गयी, तब सब काम बन गया। चेतन आत्मा ही शिव है और उसका ज्ञान उसकी शक्ति है। जब ज्ञान तथा आत्मा का अभिन्न बोध हो गया, तब सब काम बन गया।

कुंडलिया-212

कहँ खोजन को जाइये घरहीं लागा रंग॥
घरहीं लागा रंग छुटे तीरथ ब्रत दाना।
जल पषान सब छुटे आपु में उट्ठि समाना॥
काम क्रोध को छोड़ि परम सुख मिला अनन्दा।
लोभ मोह को जारि करम का काटा फंदा॥
लगै न भूख पियास जगत की आसा त्यागा।
सबद मँहै गलतान सुरति का पोहै धागा॥
पहलू दिढ़ ह्वै लगि रहै छुटै नहीं सतसंग।
कहँ खोजन को जाइये घरहीं लागा रंग॥

शब्दार्थ—घरहीं= हृदय में ही। रंग= आनन्द, उच्च दशा। उट्ठि= उठकर, अंतर्मुख होकर। पौहै= पिरोता है, डालता है।

भावार्थ—परमात्मा को खोजने कहां जाया जाय? हृदय में ही वह उच्च तत्त्व मिल गया, वह उत्तम आनन्द दशा आ गयी। अब तीर्थाटन, उपवास,

दान आदि छूट गये। अब पत्थर-पानी का पूजना छूटकर और भौतिक धरातल से उठकर अपने आप में लीन हो गया। अब काम-क्रोधादि मनोविकारों को छोड़कर परम सुख और अखंड आनन्द मिल गया। लोभ-मोह को ज्ञानाग्नि में जलाकर कर्मबंधन की फांसी काट दी। अब सांसारिक भोगों की कामना नहीं रही और जगत ऐश्वर्य की आशा छूट गयी। अब आत्मज्ञानपरक शब्दों एवं आत्मा-अनात्मा के निर्णय में ही मन लीन रहता है। अब शब्दों की मणिकाओं में मनोवृत्ति का सूत पिरोता हूं। द्रष्टा-दृश्य-विवेक के वचनों में मन रमाता हूं। पलटू साहेब कहते हैं कि दृढ़तापूर्वक साधना में लगा रहे और कभी सत्संग का आधार न छूटे। परमात्मा या मुक्ति खोजने के लिए कहां जाया जाय। हृदय में ही उसका साक्षात्कार हो गया।

विशेष—संतजन शब्द-सुरति योग के अर्थ में अपने मन को खोपड़ी में उठते हुए शब्द एवं ध्वनि में लगाते हैं। यह एक आरंभिक क्रियायोग है जो मन को संयत करने का एक साधन है। अंततः शब्द भी जड़ है। शब्द को मैं जानता हूं, किन्तु शब्द मुझे नहीं जानता। अतएव जड़-शब्द से ऊपर उठकर आत्मलीनता ही उच्चतम दशा है।

कुंडलिया-213

मन माया में मिलि गया मारा गया बिबेक॥
मारा गया बिबेक चोर का पहरू भेदी।
दोऊ की मति एक सहर में करैं अहेदी॥
आँधर नगर के बीच भया धमधूसर राजा॥
करै नीच सब काम चलै दस दिसि दरवाजा॥
अधरम आठों गाँठि न्याव बिनु धीगम सूदा।
टकमि दमारि गुलाम आप को भयो असूदा॥
जानि बूझि कूआँ परै पलटू चलै न देख।
मन माया में मिलि गया मारा गया बिबेक॥

शब्दार्थ—अहेदी= आहदी, बादशाही जमाने के वे बलवान सिपाही जो घर बैठे वेतन पाते थे और जब बादशाह को खास काम पड़ता था तब वे उसमें लगते थे। इनकी जुल्म-जबर्दस्ती प्रसिद्ध थी। धमधूसर= मोटा-तगड़ा, विवेकहीन। आठों गाँठि= सब प्रकार। धीगम सूदा= धींगाधींगी, मनमानी। टकमि दमारि= टका, दमड़ी। असूदा= हानिकर, भलाई रहित।

भावार्थ—जब मन दुनिया की माया में डूब जाता है तब विवेक नष्ट हो जाता है। तब तो पहरेदार मानो चोर को धन का रहस्य बताने वाला हो गया। चोर और भेदिया का एक मत हो गया। जैसे शहर में आहदी जोर-जबर्दस्ती करके जुल्म करता है, वैसे माया में डूबा मन अंतःकरण में उपद्रव करता है। यह तो नगर की अंधी जनता का विवेकहीन राजा की तरह हुआ। माया में डूबा मन विवेकहीन होकर सारा नीच काम करता है और दसों इन्द्रियों के दरवाजे से अव्यवस्थित काम होता है। ऐसे जीवन में सब प्रकार से अधर्म होता है और मनमाना व्यवहार चलता है। ऐसे लोग टका-दमड़ी के गुलाम होते हैं और अपने आप अपनी हानि करते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि ऐसे लोग देखकर नहीं चलते, अपितु जान-बूझकर कुएं में गिरते हैं। जब मन में माया का मोह समाया, तब विवेक मर गया।

कुंडलिया-214

देखो जिउ की खोय को फिर फिर गोता खाय॥
फिर फिर गोता खाय तनिक ना लज्जा आवै।
पड़िगा वही सुभाव छुटै न लाख छुटावै॥
निमिख भरे की खुसी जन्म कोटिन दुख पावै।
चौरासी घर जाय आपु में आपु बँधावै॥
स्वान लाख जो खाय दिया चाटै पै चाटै।
छुटै न जिउ की खोय पकरि के पुरजे काटै॥
पलटू भजै न नाम को मूरख नर तन पाय।
देखो जिउ की खोय को फिर फिर गोता खाय॥

शब्दार्थ—खोय= ख़ू, आदत, स्वभाव। निमिख= निमिष, पलक गिरना, पलक गिरने भर का समय, क्षण। दिया= दीपक।

भावार्थ—मनुष्य की गंदी आदत को तो देखो। वह उसमें बारंबार डूबता है। वह थोड़ी भी लज्जा नहीं करता। उसको विषय-वासना का गंदा स्वभाव पड़ गया है। लाखों बार भी छुड़ाने पर वह नहीं छूटता। काम-भोग में माना हुआ सुख क्षण मात्र मिलता है और उसके परिणाम में जीव वासना में बंधकर करोड़ों जन्म दुख पाता है। वह चौरासी के चक्कर में फंसकर स्वयं नाना योनियों में बंधकर दुख पाता है। कुत्ते को चाहे जितना उत्तम व्यंजन खिला दो, किन्तु यदि दीपक मिल जाय तो वह उसे अवश्य चाटने लगेगा। मनुष्य को पकड़कर चाहे उसे काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दो, परन्तु उसकी आदत

नहीं छूटती। पलटू साहेब कहते हैं कि मनुष्य-शरीर पाकर भी मूर्ख सतनाम नहीं भजता। देखो, मनुष्य की गंदी आदत को यह बारंबार विषय-वासनाओं में डूबता है।

विशेष—मनुष्य का विवेक जग जाय, तो वह अपनी गलत आदत छोड़कर सुखी हो जाता है। यहां ग्रंथकार ने उनका चित्रण किया है जो जगना नहीं चाहते हैं।

कुंडलिया-215

मुये पार की बात है फिरै न कोऊ एक॥
फिरै न कोऊ एक मुक्ति धौं कैसी होती।
स्याह जरद या सुरख रंग हीरा या मोती॥
मुक्ति के हाथ न पाँव मुक्ति को सब कोउ मानै।
है परदे की बात ताहि से सब कोउ जानै॥
सब कोउ होय खराब मुक्ति के पाछे जाई।
जानी केहि बिधि जाय मुक्ति कहु किन ने पाई॥
पलटू बातैं मुक्ति की खसर फसर करि देख।
मुये पार की बात है फिरै न कोऊ एक॥

शब्दार्थ—जरद= जर्द, पीला, पीत। सुर्ख= सुर्ख़, लाल। खसर-फसर= उतावली, जल्दीबाजी, भावुकता।

भावार्थ—बात है मरने के बाद की। मरने के बाद कोई एक व्यक्ति नहीं लौटकर आता है कि वह बतावे कि मरने पर मिली हुई मुक्ति भला कैसी होती है! वह काली है कि पीली या लाल रंग की है। वह हीरा की तरह चमकीली है या मोती की तरह। मुक्ति के हाथ-पांव नहीं होते, परन्तु सब मतवादी उसका अधिकारपूर्वक ज्ञान रखने का दंभ भरते हैं। मरने के बाद मिलने वाली मुक्ति परदे के भीतर है, इसलिए उसके सब ज्ञाता बने बैठे हैं। मुक्ति के पीछे पड़कर सब भावुक अपने को भ्रष्ट करते हैं। मरने के बाद किसने मुक्ति पायी है, यह कैसे जाना जाय? पलटू साहेब कहते हैं कि मुक्ति की वास्तविकता लोग उतावली और भावुकता में देखते हैं। मरने के बाद वाली मुक्ति की बात कौन बतावे, क्योंकि मरकर कोई लौटकर आता नहीं।

विशेष—यहां ग्रंथकार मुक्ति का खंडन नहीं करते हैं, अपितु लोकांतर में जाकर स्वर्ग, जन्नत, मुक्तिधाम आदि में बसने की बात करनेवाले परोक्षवादियों पर व्यंग्य करते हैं। जो अपने सम्प्रदायों की भ्रमपूर्ण मान्यताओं

में डालकर लोगों को हिंसात्मक कर्मकांडों में फंसाकर उन्हें भटकाते हैं। लोगों ने कल्पित लोकों में जाकर विषय-भोग को मुक्ति मान रखा है।

पलटू साहेब की वाणी-वाणी में मुक्ति का स्वरूप प्रकट है। उनका निष्काम आत्मलीन व्यक्तित्व ही मुक्त स्वरूप है। जो आज मुक्त है, वही शरीरांत में सदा के लिए मुक्त है। जो आज भटका है, वह मर जाने पर कौन-सी मुक्ति पायेगा?

कुंडलिया-216

चिन्ता रूपी अगिन में जरै सकल संसार॥
जरै सकल संसार जरत निरपति को देखा।
बादसाह उमराव जरत हैं सैयद सेखा॥
सुर नर मुनि सब जरैं जोगी औ जती संन्यासी।
पंडित ज्ञानी चतुर जरै कनफटा उदासी॥
जंगम सेवरा जरै जरै नागा बैरागी।
तपसी दूना जरै बचै नहिं कोऊ भागी॥
पलूट बचते संत जन जेकरे नाम अधार।
चिन्ता रूपी अगिन में जरै सकल संसार॥

शब्दार्थ—उमराव=उमरा, धनिक, सामंत। सैयद=नेता, सरदार, फातिमा से उत्पन्न वंश। सेखा=सेख, शैख, वृद्ध, गुरुजन, विद्वान, खानकाह (आश्रम) का खलीफा, महंत, मुसलमानों में चार जातियों में पहला शैख, सैयद, मुगल, पठान में शैख। जंगम=शिवाचारी। सेवड़ा=जैन-बौद्ध।

भावार्थ—चिंता की आग में संसार के सारे मनुष्य जल रहे हैं। राजा को जलते देखा, बादशाह, धनी सरदार, सैयद, शैख, सुर-नर-मुनि, योगी, यती, संन्यासी, पंडित, ज्ञानी, बुद्धिमान, कनफटा, उदासी, जंगम, सेवड़ा, नागा, वैरागी जलते हैं। तपस्वी दूना जलते हैं। कोई भागकर बचता नहीं है। पलटू साहेब कहते हैं कि वे संतजन चिंता की अग्नि से बचते हैं जिनको सत्यनाम के अर्थस्वरूप आत्मज्ञान का आधार है; अन्यथा चिंता की अग्नि में सारा संसार जल रहा है।

कुंडलिया-217

जाको निरगुन मिला है भूला सरगुन चाल॥
भूला सरगुन चाल बचन ना मुख से आवै।
तसबी और किताब नहीं काजी को भावै॥

पंडित पढ़ै न बेद तीरथ बैरागी त्यागा।
कायथ कलम न लेय राज तजि राजा भागा॥
बेस्वा तजा सिंगार सिद्ध की गयी सिद्धाई।
रागी भूला राग जननि सुत देइ बहाई॥
पलटू भूली गीथिनी कहूँ भात कहुँ दाल।
जाको निरगुन मिला है भूला सरगुन चाल॥

शब्दार्थ—निरगुन= निर्गुण, भौतिक तीनों गुणों—सत, रज तम से परे अपरोक्ष आत्मबोध। सरगुण= सगुण, देवी-देवता, अवतार, स्थूल पूजा। तसबी= तस्बीह, सौ दाने की माला जिससे मुसलमान जप करते हैं। गीथिनी= समझदार स्त्री।

भावार्थ—जिस मनुष्य को यथार्थ सद्गुरु से अपने स्वरूप अपरोक्ष आत्मा का बोध मिल गया है, उसको स्थूल देवी-देवता तथा परोक्ष ईश्वर पाने का टंट-घंट भूल गया। वह विवाद करना छोड़ देता है। काजी तस्बीह और किताब से उदास हो जाता है। पंडित वेद पढ़ना भूल जाता है, वैरागी तीर्थ-व्रत से उदासीन हो जाता है। कायस्थ कलम छोड़ देता है। राजा भी राज्य छोड़कर भाग खड़ा होता है। वेश्या शृंगार छोड़कर अंतर्मुख हो जाती है। सिद्ध नामधारी अपना दिखावा छोड़कर सरल हो जाता है। गाने-बजाने वाले गाना-बजाना छोड़ देते हैं। माता पुत्र का मोह त्याग देती है। पलटू साहेब कहते हैं कि समझदार गृहस्थ स्त्री अपनी गृहस्थी भूल जाती है। उससे कहीं भात छूट गया और कहीं दाल छूट गयी। जिसको आत्मबोध हो गया वह जगत से उदास हो जाता है।

विशेष—पलटू साहेब के कथन में काव्यरस अधिक रहता है। ऊपर का सरल भाव है कि जिसे निजस्वरूप का बोध हो जाता है वह बहिर्मुखता से हटकर अंतर्मुख हो जाता है। वह समझ जाता है कि सुख, आनन्द, परमात्मा, मोक्ष, निर्वाण बाहर नहीं है, किन्तु मन की पूर्ण शांति है।

कुंडलिया-218

अमृत को सागर भर्‌यो देखे प्यास न जाय॥
देखे प्यास न जाय पिये बिनु कौन बतावै।
कल्प बृच्छ को देखि खाये बिनु भूख न जावै॥
और की दौलत देखि दरिद्दर नाहिं नसाई।
अंधा पावै आँखि साच वाकी बैदाई॥

लोहा कंचन होय पारस की करै सरहना।
क्या मलया की सिफत काठ को काठै रहना॥
सतगुरु तुम्हरे बचन को पलटू ना पतियाय।
अमृत को सागर भर्‌यो देखे प्यास न जाय॥

शब्दार्थ—सिफत= सिफ़त, विशेषता, गुण, लक्षण।

भावार्थ—अमृत का सागर भरा हो, परंतु उसको देखने मात्र से प्यास नहीं मिटेगी। बिना उसको पीये, उसका अनुभव कौन बतायेगा? कल्पवृक्ष को केवल देखकर फल खाये बिना भूख नहीं जायेगी। दूसरे के धन को देखकर अपनी दरिद्रता नहीं मिटती। वैद्य की विशेषता है जब अंधे की आंखों में रोशनी आ जाय। जब पारस पत्थर लोहा को सोना बना दे तब उसकी प्रशंसा है। मलय चंदन की विशेषता क्या हुई जब उसके पास रहने वाले पेड़-पौधे सुगंधरहित काठ-के-काठ ही रह गये। पलटू साहेब कहते हैं कि हे सद्‌गुरु! आपकी बात पर मैं तब तक विश्वास नहीं कर सकता जब तक मुझे पूर्ण शांति नहीं मिल जाती। अमृत का सागर भले ही भरा हो, परन्तु उसको देखने मात्र से प्यास नहीं जाती है।

विशेष—सद्‌गुरु से आत्मज्ञान का उपदेश पाकर जब साधक विषयों से विरक्त हो अंतर्मुख होता है, तब उसे निर्भय शांति मिलती है।

कुंडलिया-219

जैसे नद्दी एक है बहुतेरे हैं घाट॥
बहुतेरे हैं घाट भेद भक्तन में नाना।
जो जेहि संगत परा ताहि के हाथ बिकाना॥
चाहै जैसी करै भक्ति सब नामहिं केरी।
जाकी जैसी बूझ मारग सो तैसी हेरी॥
फेर खाय इक गये एक ठौ गये सिताबी।
आखिर पहुँचे राह दिना दस भई खराबी॥
पलटू एकै टेक ना जेतिक भेष तै बाट।
जैसी नद्दी एक है बहुतेरे हैं घाट॥

शब्दार्थ—नद्दी= नदी। फेर= चक्कर, भटकाव। सिताबी= शिताबी, शीघ्रता। टेक= अवलंब, आश्रय, पक्ष। जेतिक= जितने। बाट= सम्प्रदाय, मजहब, पंथ।

भावार्थ—जैसे नदी एक है किन्तु उसके घाट बहुत हैं, वैसे लक्ष्य सबका दुखों से छूटना है, परन्तु उसके लिए बहुत सम्प्रदाय, मजहब एवं पंथ के भक्त हैं जिनमें अगणित भेद हैं। जो भक्त जिस सम्प्रदाय की संगत में पड़ गया, वह उसी के हाथों बिक गया। चाहे जैसी भक्ति लोग करें, सब विविध नामों की उपासना करते हैं। जिसकी जैसी समझ है, वह उसी प्रकार का रास्ता अपनाता है। एक साधक भ्रम में पड़कर चक्कर काट रहा है और दूसरा सही रास्ता पा गया और शीघ्र आत्मशांति पा गया। जो भ्रम में पड़ा वह पता नहीं कब सही रास्ता पावे और अपने बोध में पहुंचे। उसके समय की बरबादी हुई। पलटू साहेब कहते हैं कि नाना मत के उपासकों का एक ही उपासना आश्रय नहीं है, अपितु जितने मत हैं उतने पथ हैं। कल्याण तो सब चाहते हैं, रास्ते भिन्न-भिन्न हैं।

विशेष—प्रत्यक्ष, परोक्ष तथा अपरोक्ष तीन विषय हैं। प्रत्यक्ष जगत विषय है, परोक्ष ईश्वर-देवादि कल्पना है और अपरोक्ष आत्मबोध है। अपरोक्ष बोध से ही पूर्ण कल्याण होगा।

कुंडलिया-220

साध बचन साचा सदा जो दिल साचा होय॥
जो दिल साचा होय रहै ना दुबिधा भागै।
जो चाहै सो मिलै बात में बिलँब ना लागै॥
मन बचन कर्म लगाय संत की सेवा लावै।
उकठा काठ बियास साच जो दिल में आवै॥
जिनको है बिस्वास तेही को बचन फुरानी।
ह्वैगा उनका काम संत की महिमा जानी॥
पलटू गाँठि में बाँधिये खाली पड़ै न कोय।
साध बचन साचा सदा जो दिल साचा होय॥

शब्दार्थ—साध वचन= सच्चा वचन, अपरोक्ष आत्मबोध। उकठा= सूखा। बियास= विकसित होता है। फुरानी= सत्य हुई।

भावार्थ—साधु का दिया हुआ आत्मबोध सदैव सत्य है। यदि स्वयं उसे सच्चे दिल से ग्रहण करे, तो उसके मन में यह दुविधा नहीं रहेगी कि सुख-शांति एवं परमात्मा बाहर हैं। वह बाहरी कल्पना छोड़कर आत्मनिष्ठ हो जायेगा। मन जो चाहता है निर्भय सुख-शांति, वह आत्मबोध और आत्मशोध से मिल जायेगा। उसमें विलंब नहीं होगा। अतएव साधक को चाहिए कि बस

मन, वचन और शरीर को समर्पित कर विवेकवान संतों की सेवा करे। यदि दिल में सच्ची लगन है तो सूखते वृक्ष को पानी मिल जाने पर जैसे वह हरा हो जाता है, वैसे निराश साधक सच्चे बोधवान की संगत मिल जाने पर अपना कल्याण कर लेता है। जिसको आत्मविश्वास है कि मैं मन-इन्द्रियों को जीतकर अपना कल्याण कर लूंगा, उसी के दिल में संतों के उपदेश सफल होते हैं। उनका कल्याण हो जाता है क्योंकि उन्होंने सच्चे संत और उनके उपदेश को समझ लिया है। पलटू साहेब कहते हैं कि जिन्होंने संतों के उपदेश अपने मन में दृढ़ कर लिया है उनका परिश्रम व्यर्थ नहीं जाता। विवेकवान संतों का आत्मबोध उपदेश सच्चा होता है, यदि साधक उसे सच्चाई से ग्रहण करे तो उसका कल्याण निश्चित है।

कुंडलिया-221

महीं भुलाना फिरत हौं कि जगतै गया भुलाय॥
जगतै गया भुलाय देखि सब हँसते हैं हम कँह।
उनकी करनी देखि हँसत हैं हमहूँ उन कँह॥
बाय जोगी को जगत जगत को जोगी बाई।
दोऊ को झौंसे आनि कहाँ अब तीसर पाई॥
एक साहु सौ चोर चोर को साहु बनावै।
जगत भगत से बैर आपनी दूनौ गावै॥
पलटू तीसर है नहीं साखी भरै जो आय।
महीं भुलाना फिरत हौं कि जगतै गया भुलाय॥

शब्दार्थ—महीं= मैं ही। बाय-बाई= वायु, वातव्याधि, अग्निज्वाला। झौंसे= झुलसावे, जलावे।

भावार्थ—मैं ही भूला फिरता हूं कि जगत के लोग भूले हैं? संसार के लोग मुझे देखकर हंसते हैं। संसार के लोगों की करनी देखकर मैं भी उन पर हंसता हूं। योगी के लिए जगत के लोग ज्वाला हैं और जगत के लिए योगी ज्वाला है। दोनों दोनों को भला-बुरा कहते हैं। तीसरा साक्षी कहां से मिले? एक सत्यपरायण है और सौ चोर हैं। वे सौ चोर सत्यपरायण को चोर सिद्ध करते हैं। इस प्रकार जगत और भगत से वैर मचा है। दोनों अपनी-अपनी बात कहते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि तीसरा कोई नहीं है जो साक्षी बनकर इनके बीच सही-गलत का निर्णय कर सके। मैं ही भूला फिरता हूं कि जगत के लोग भूले हैं?

कुंडलिया–222

जगत भगत से बैर है चारों जुग परमान॥
चारों जुग परमान बैर ज्यों मूस बिलाई।
नेवर भुवंगम बैर कँवल हिम कर अधिकाई॥
हस्ती केहरि बैर बैर है दूध खटाई।
भैंस घोड़ से बैर चोर पहरू से भाई॥
पाप पुन्य से बैर अगिन औ बैरी पानी।
संतन यही बिचार जगत की बात न मानी॥
पलटू नाहक भूँकता जोगी देखे स्वान।
जगत भगत से बैर है चारों जुग परमान॥

शब्दार्थ—नेवर= नेवला। कँवल=कमल। हिम= पाला, बर्फ। केहरि= सिंह।

भावार्थ—यह प्रमाण है कि जगत और भगत से चारों युगों से वैर चला आ रहा है। जैसे चूहे से बिल्ली का, सर्प से नेवले का, कमल से पाला का, हस्ती से सिंह का, दूध से खटाई का, घोड़े से भैंसे का, पहरेदार से चोर का, पाप से पुण्य का और अग्नि से पानी का वैर है। वैसे संत से असंत का वैर है। संतों का यह विचार है कि वे संसारियों की मायावी बातें नहीं मानते। पलटू साहेब कहते हैं कि संत को देखकर श्वान व्यर्थ ही भूंकता है। जगत और भगत से चारों युगों से प्रामाणिक वैर चला आया है।

विशेष—यहां वैर का तात्पर्य शत्रुता नहीं है, किन्तु विचारों का विरोध है। संयमी और असंयमी भी एक दूसरे को भटका हुआ कहते हैं। एक अंतर्मुख होने में लाभ मानता है और दूसरा भोगों में उलझना लाभ मानता है।

कुंडलिया–223

लेहु परोसिनि झोपड़ा नित उठि बाढ़त रार॥
नित उठि बाढ़त रार काहिको सरबरि कीजै।
तजिये ऐसा संग देस चलि दूसर लीजै॥
जीवन है दिन चारि काहे को कीजै रोसा।
तजिये सब जंजाल नाम कै करौ भरोसा॥
भीख माँगि बरु खाय खटपटी नीक न लागै।
भरी गोन गुड़ तजै तहाँ से साँझै भागै॥

पलटू ऐसन बूझि कै डारि दिहा सिर भार।
लेहु परोसिन झोपड़ा नित उठि बाढ़त रार॥

शब्दार्थ—रार= झगड़ा। सरबरि= बराबरी, झगड़ा, वाग्युद्ध। रोसा= क्रोध। खटपटी= विवादी, झगड़ालू। गोन= टाट का बड़ा थैला। डारि दिहा= गिरा दिया, त्याग दिया।

भावार्थ—हे पड़ोसी ! अपना मकान लो। तुम्हारे साथ रहकर नित्य सबेरे से ही झगड़ा बढ़ता है। मैं किससे विवाद करूं? कुसंग त्यागकर दूसरे देश में चला जाना अच्छा है। इस चार दिन के जीवन में क्यों किसी पर गुस्सा करें। संसार-जाल त्यागकर सत्स्वरूप आत्मज्ञान में संतुष्ट रहना है। मुझे भीख मांगकर खाने का अवसर पड़े तो अच्छा है, किन्तु विवाद में रहना अच्छा नहीं लगता। जहां विवाद है वहां के गुड़ भरे बोरे को छोड़कर शाम को ही भाग जाना अच्छा है—विवादयुक्त ऐश्वर्य की जगह से शांति-इच्छुक दूर रहता है। पलटू साहेब कहते हैं कि इस प्रकार समझकर मैंने अपने सिर का बोझा उतार दिया है। हे पड़ोसी ! तुम अपना घर लो, मैं यहां से जाता हूं। कौन यहां रहकर नित्य झगड़े में पड़े।

विशेष—कुसंग से अलग रहना चाहिए। कलह-प्रिय मनुष्य का सम्बन्ध न करे। यदि हो गया हो तो समझ लेने पर छोड़ दे।

कुंडलिया-224

सिध चौरासी नाथ नौ बीचै सभै भुलान॥
बीचै सभै भुलान भक्ति की मारग छूटी।
हीरा दिहिन है डारि लिहिन इक कौड़ी फूटी।
राँड़ माँड़ में खुसी जक्त इतनै में राजी।
लोक बड़ाई तुच्छ नरक में अटकी बाजी॥
झूठ समाधि लगाय फिरै मन अंतै भटका।
उहाँ न पहुँचा कोय बीच में सब कोइ अटका॥
पलटू अठएँ लोक में पड़ा दुपट्टा तान।
सिध चौरासी नाथ नौ बीचै सभै भुलान॥

शब्दार्थ—सिध चौरासी= चौरासी सिद्ध। नाथ नौ= नौ नाथ। रांड़= विधवा, वेश्या। भांड़= चमक-दमक। बाजी= दावं। अठएं लोक= आंख, नाक, कान, जीभ, चाम—पांच ज्ञानेन्द्रियां तथा मन और बुद्धि, इन सातों से पार आठवां आत्मलोक स्वरूपस्थिति।

भावार्थ—चौरासी सिद्ध तथा नौ नाथ आदि सब बीच में ही भूलकर अटक गये हैं। इनका भक्ति-पथ छूट गया है। ये आत्मस्थिति रूपी हीरा त्याग दिये और हठयोग रूपी फूटी कौड़ी बटोर लिये। संसार के लोग तो स्त्री-मोह और सांसारिक चमक-दमक में ही प्रसन्न हैं। परन्तु विषय-वासना तथा लोक-बड़ाई तुच्छ है। इनमें उलझ जाना अपने कल्याण के दावं को भौतिक क्षणिक उपलब्धियां रूपी नरक में गवां देना है। दिखावा के लिए समाधि लगाने पर मन संसार में ही भटकता है। ऐसे लोगों में कोई स्वरूपस्थिति में नहीं पहुंचता है, अपितु बीच में ही उलझ जाते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि मैं तो इन्द्रिय-मन से परे स्वरूपस्थिति रूपी आत्मलोक में सहज समाधि रूपी दुपट्टा तानकर सो रहा हूं। ये चौरासी सिद्ध तथा नौ नाथ आदि बीच में ही उलझ गये।

कुंडलिया-225

हंस चुगैं ना घोंघी सिंह चरैं न घास॥
सिंह चरैं न घास मारि कुंजर को खाते।
जो मुरदा ह्वै जाय ताहि के निकट न जाते॥
वे ना खाहि असुद्ध रीत कुल की चलि आई।
खाये बिनु मरि जाहिं दाग न सकहि लगाई॥
संत भजन सिरताज धरन धारी सो धारी।
नई बात जो करैं मिलत है उनको गारी॥
भीख न माँगैं संत जन कहि गये पलटू दास।
हंस चुगैं ना घोंघी सिंह चरैं ना घास॥

शब्दार्थ—धरन=धारण, निश्चय ।

भावार्थ—कहावत के अनुसार हंस घोंघी नहीं चुगते अपितु मोती चुगते हैं और सिंह घास नहीं चरते हैं, वे हाथी को मारकर खाते हैं। सिंह मुरदा के निकट नहीं जाते, अपितु स्वयं मारकर खाते हैं। उनके कुल की रीति यही है। वे अशुद्ध नहीं खाते। दूसरे का मारा उनके लिए अशुद्ध है। वे खाये बिना भूखे भले ही मर जायं, परंतु वे अपनी नीति में कलंक का दाग नहीं लगाते। संत आत्मशोधन में सर्वोच्च होते हैं। उन्होंने जो धारणा बना ली, वह बना ली। यदि वे अपनी सही धारणा के विपरीत काम करेंगे तो उनको गाली मिलेगी। पलटू साहेब कहते हैं कि संत भिक्षा नहीं मांगते। हंस घोंघी नहीं चुगते और सिंह घास नहीं चरते हैं।

कुंडलिया-226

कृस्न कन्हैया लाल है वह गोकुल के घाट॥
वह गोकुल के घाट जाइ के गोता मारै।
जीवन आसा त्यागि बूड़ि के ढूँढ़ निकारै॥
मान बड़ाई छोड़ि चित्त हरि चरनन लावै।
कुंज गली के बीच जाय तब पिय को पावै॥
देखै पिय को रूप सुन्दर बहु स्याम सलोना।
बरै तेल की टेम आगि में बरता सोना॥
कहि पलटू परसाद यह पावै प्रेम की बाट।
कृस्न कन्हैया लाल है वह गोकुल के घाट॥

शब्दार्थ—सलोना= सुन्दर। टेम= ज्योति।

भावार्थ—अंतर्मुखता गोकुल का घाट या कुंजगली है और आत्मा कन्हैया लाल कृष्ण है। जब साधक अंतर्मुखता में गोता लगाता है तब जीने की आशा त्यागकर तथा अंतर्मुखता में डूबकर आत्म-अनुभव-रत्न निकाल लेता है। वह मान-बड़ाई छोड़कर अपना मन आत्मज्ञान में लगाता है। अन्तर्मुखता की कुंजगली में आत्मा रूपी परमात्मा का साक्षात्कार करता है। उस दशा में साधना में डूबी मनोवृत्ति आत्मा-पति का श्याम-सलोना सुन्दर रूप देखती है। जैसे तेल की बत्ती जलती है, वैसे वह ज्योतित आत्मज्ञान की स्थिति है। जैसे आग में पड़कर सोना शुद्ध हो जाता है वैसे अंतर्मुख होकर मनोवृत्ति शुद्ध हो जाती है। पलटू साहेब कहते हैं कि यह स्थिति आत्मानुराग के घाट पर मिलती है। आत्मा कृष्ण कन्हैया लाल है और उसका अंतर्मुखता रूपी गोकुल के घाट पर सक्षात्कार होता है।

विशेष—किसी सगुण के रूपक में निर्गुण की कही हुई बात ऐसी ही होती है। श्री कृष्ण श्याम सुन्दर सलोने हैं। आत्मा का श्याम सुन्दर सलोना होना उसका शुद्ध ज्ञान स्वरूप है जो रूपरहित है। निर्गुण आत्मा रूपी हरि के चरण नहीं होते। वस्तुतः आत्मलीनता ही हरिचरण में निवास है।

कुंडलिया-227

कौड़ी गाँठि न राखई हमा-नियामत खाय॥
हमा-नियामत खाय नहीं कुछ जग की आसा।
छत्तिस व्यंजन रहै सबर से हाजिर खासा॥

जेकरे है सत नाम नाम की चेरी माया।
जोरू कहवाँ जाय खसम जब कैद में आया॥
माया आवै चली रैनि दिन मैं दुरियावों।
सतगुरु दास कहाय नहीं मैं माँगन जावों॥
राजा औ उमराव हाथ सब बाँधे आवैं।
द्वारे से फिरि जायँ नहीं फिर मुजरा पावैं॥
जंगल में मंगल करै पलटू बेपरवाय।
कौड़ी गाँठि न राखई हमा-नियामत खाय॥

शब्दार्थ—हमा= पूरा, सब। नियामत= दुर्लभ पदार्थ, उत्तम पदार्थ। सबर= सब्र, संतोष। खासा= शुद्ध। खसम= पति, आत्मा। उमराव= धनी। मुजरा= आदर।

भावार्थ—संत अपने पास कौड़ी भी नहीं रखते, किन्तु वे नित्य पूरे उत्तम पदार्थों का व्यंजन खाते हैं, वह है चित्त की प्रसन्नता। वे संसार के भोगों की आशा नहीं करते। वे संतोष से रहते हैं तो मानो उनके पास छत्तीसों प्रकार के व्यंजन रहते हैं। जिसको सत्स्वरूप आत्मा का ज्ञान है, माया उसकी गुलाम होकर रहती है। जो अपने आत्मा को वश में कर लिया, माया अलग कहां जायेगी। वह तो उसकी चेरी बनकर रहेगी। संत कहते हैं कि रात-दिन माया को दूर करता हूं, परन्तु वह मेरे पास चली आती है। मैं सद्गुरु का भक्त कहलाता हूं, अतएव मैं किसी से कुछ मांगने नहीं जाता हूं। राजा और धनी लोग हाथ जोड़े मेरे पास आते हैं। जब वे मुझसे आदर नहीं पाते हैं तो मेरे द्वार से निराश लौट जाते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि मैं सांसारिकता से निष्फिक्र हूं। इसलिए जंगल में मंगल—त्याग में आनन्द है। मैं अपने पास कौड़ी भी नहीं रखता हूं, किन्तु पूरा दुर्लभ पदार्थ खाता हूं, वह है प्रसन्नता।

कुंडलिया-228

जब देखौ तब सादी नौबत आठौ पहर॥
नौबत आठौ पहर गैब की निसु दिन झरती।
पचरँग जोड़ा खुसी दुरबेस की सादी चढ़ती॥
आफताब भा सूर रोसनी दिल में आई।
फिरै गैब का छत्र जिकर का मुस्क लगाई॥
अन्दर झूलै फील खाब में खतरा नाहीं।
सबर है पीठी पलँग सेहरा नाम इलाही॥

पलटू जलवा नूर का ज्यों दरियाव में लहर।
जब देखौ तब सादी नौबत आठा पहर॥

शब्दार्थ—सादी= शादी, खुशी, आनन्दोत्सव, विवाह; यहां अर्थ है आनन्दोत्सव। नौबत= मंगलसूचक बाजा। गैब= परोक्ष, अदृश्य। पचरँग जोड़ा= पंच ज्ञान इन्द्रियां तथा पांच कर्म इन्द्रियां। दुरवेस= दरवेश, फकीर, संत। आफताब= आफ़ताब, सूर्य। सूर= अंधा। जिकर= जिक्र, चर्चा, सत्संग। मुस्क= मुश्क, कस्तूरी। फील= हाथी। खाब= ख़्वाब, नींद लेना, सोना, स्वप्न। सबर= सब्र, संतोष। पीठी= पीठिका, पीठ टेकने का आधार। सेहरा= फूलों की माला। इलाही= इलाह, ईश्वर। जलवा= जल्वा, शोभा। नूर= ज्योति, प्रकाश। दरियाव= दरिया, नदी, समुद्र।

भावार्थ—जीवन में हर क्षण आनन्द का उत्सव है और चौबीसों घंटे मांगलिक बाजा अदृश्य से झर रहा है। पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां जगत-वासना छोड़कर प्रसन्नता का कारण हो गयी हैं और फकीर के जीवन में हर समय शाश्वत आनन्द का ज्वार चढ़ता है। जब हृदय में आत्मज्ञान की अखंड ज्योति प्रज्वलित हुई तब सूर्य अंधकार जैसा लगने लगा—सूर्य की ज्योति से आत्मज्ञान की ज्योति उच्च है। मेरे ऊपर अदृश्य आत्मज्ञान का छत्र लगा है और सत्संग की कस्तूरी लगी है जो निरंतर सुगंधी दे रही है। हृदय भीतर मस्तानगी का हाथी झूम रहा है। अब निश्चिंतता की नींद में खतरा नहीं है। संतोष की पलंग और पीठासन पर विराजमान हूं और अंतरात्मा रूपी परमात्मा के स्मरण की माला शोभायमान है। पलटू साहेब कहते हैं कि ज्योतित आत्मस्मरण की शोभा वैसी ही है जैसे समुद्र में उसकी तरंगें। अब तो निरंतर आनन्द-उत्सव है और सब समय मंगल वादन है।

विशेष—संत पलटू साहेब के काव्यात्मक कथन में सार यही है कि जगत की मिथ्या चमक-दमक से लौटकर जब अंतर्मुख हुआ तो परम शांति का अपार ऐश्वर्य मिल गया, क्योंकि हमारा परम सुख एवं परमात्मा आत्मा ही है। जब उसमें निरंतर स्थिति हो गयी, तब निर्भय और शाश्वत शांति मिल गयी।

कुंडलिया-229

रन का चढ़ना सहज है मुसकिल करना जोग॥
मुसकिल करना जोग चित्त को उलटि लगावै।
बिषय बासना तजै प्रान ब्रह्मांड चढ़ावै॥

साधै वायू प्रान कुण्डली करै उथपना।
अष्ट कँवल दल उलटि कँवल दल द्वादस लखना॥
इँगला पिंगला सोधि बंक के नाल चढ़ावै।
चार कला को तोड़ि चक्र षट जाय बिधावै॥
पलटू जो संजम करै करै रूप से भोग।
रन का चढ़ना सहज है मुसकिल करना जोग॥

शब्दार्थ—रन= रण, युद्ध। जोग= योग। उथपना= उर्ध्वमुख। इंगला= नाक की बाईं नाड़ी। पिंगला= नाक की दाईं नाड़ी। बंक के नाल=बंकनाल, आग फूंकने की पाइप जिससे सोनार आग फूंकता है। चक्र षट्= छह चक्र—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहद, विशुद्धि तथा आज्ञा चक्र। रूप= स्वस्वरूप।

भावार्थ—युद्ध में चढ़ जाना सरल है, परन्तु योग करना कठिन है। योग-साधना में अपने मन को विषयों से मोड़कर अंतर्मुख करना होता है। इसके लिए विषय-वासना का त्यागकर प्राण को ब्रह्माण्ड में चढ़ाना होता है। इसमें प्राणवायु को प्राणायाम-क्रिया द्वारा शोधकर कुंडलिनी को उर्ध्वमुख करना होता है। आठ चक्रों के कमलदल को बेधकर द्वादस कमल दल में पहुंचना होता है। नाक की बाईं-दाईं सांस को प्राणायाम से शोधकर सुषुम्णा रूपी बंकनाल से ब्रह्माण्ड में चढ़ाना होता है। मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार की कला को मोड़कर छह चक्रों को बेधना होता है। पलटू साहेब कहते हैं कि जो अपने चित्त में संयम करके अंतर्मुख होता है, वह स्वस्वरूप आत्मानुभव का भोग करता है। युद्ध में चढ़ना सहज है, किन्तु योग करना कठिन है।

विशेष—ऊपर के कथन में हठयोग के अंग—कुंडलिनी, अष्ट कंवल, इंगला, पिंगला, बंकनाल, षटचक्र आदि की बातें आयी हैं। आत्मज्ञान की साधना में इन उलझी हुई तथा काल्पनिक बातों की आवश्यकता नहीं है, किन्तु विषय-वासना त्यागकर अंतर्मुख होना है। साक्षीभाव में रहकर संकल्पों का त्याग करते रहना और अपने आप शांत रहना ही सच्चा योग है।

कुंडलिया-230

आगि लागि मसि जरि गई कागद जरै न कोय॥
कागद जरै न कोय कागद है बहुत पुराना।
अक्खर आवै जाय अखर को नाहिं ठिकाना॥

वो भी जरै बनाय अखर का लिखनेहारा।
बाँचै सो जरि जाय जरै जो करै बिचारा॥
कोटिन अक्खर बाद अन्त कागद भी जरता।
कागद जरे के बाद रहै कागद का करता॥
पलटू जब कागद जरै वा दिन मेरा होय।
आगि लागि मसि जरि गई कागद जरै न कोय॥

शब्दार्थ—मसि= स्याही, अक्षर, अनेक संस्कार। कागद= कागज, मन, अंत:करण। अक्खर= अक्षर, वर्ण, संस्कार।

भावार्थ—मन कागज है। संस्कार अक्षर हैं। काल की आग से संस्कार लुप्त हो जाते हैं, किन्तु मन बचा रहता है। यह मन-कागज अनादिकालीन है। संस्कार रूपी अक्षर आते-जाते रहते हैं। इनका कोई स्थायित्व नहीं है। संस्कार रूपी अक्षरों का निर्माता अहंकार भी परिवर्तित हो जाता है। संस्कार रूपी अक्षरों को बांचनेवाला चित्त भी बदल जाता है और जो उस पर विचार करने वाली बुद्धि है, वह भी बदल जाती है। करोड़ों संस्कारों के आने-जाने के बाद जब जीव को आत्मज्ञान होता है तब मन रूपी कागज भी ज्ञानाग्नि में जल जाता है। तब मन का कर्ता जीव शेष रह जाता है। पलटू साहेब कहते हैं कि जब मन रूपी कागज ज्ञानाग्नि में जल जाता है वही मेरा उत्तम दिन है। जब मन मर गया तब मोक्ष हो गया। काल-चक्र की आग में संस्कार तो बदल जाते हैं, किन्तु मन नहीं मरता। जब ज्ञानाग्नि में मन जल गया तब जीव का मोक्ष हो गया।

कुंडलिया-231

तबक चारदह अन्दर है अस्थल बे दरियाव॥
अस्थल बे दरियाव अर्श कुर्सी खुद दीदन।
तूबा दरखत अज हद शीरीं मेवा खुर्दन॥
नूर तजल्ली रूह लाहूत रसीदा नादिर।
रौशन-जमीर बेचूँ सीना-साफ काजी कादिर॥
हूहू गुफ्तन फ़ना रूह को सोई बातिन।
पाक अल्लाह मकान तहाँ को भी वो साकिन॥
पलटू आरिफ़ से कहै तू भी चाहो जाव।
तबक़ चारदह अन्दर है अस्थल बे दरियाव॥

शब्दार्थ—तबक= तबक़, लोक, तल। चार दह= चार दस, चौदह। अस्थल= स्थान, पृथ्वी। बे दरियाव= बिना पानी का। अर्स= अर्श, आठवां या सबसे ऊंचा स्वर्ग जहां खुदा रहता है। कुर्सी= आसन। खुद दीदन= अपने देखने योग्य, स्वानुभव की वस्तु। तूबा= स्वर्ग का एक वृक्ष जिसके फल बहुत मीठे माने जाते हैं। दरखत= दरख़्त, पेड़, वृक्ष। अज= से। हद= सीमा। शीरीं= मीठा। खुर्दन= छोटा-छोटा। नूर= प्रकाश, ज्योति। तज्जली= प्रकाश, रोशनी। रूह= जीव, आत्मा। लाहूत= संसार। रसीदा= पहुंचा हुआ, पूर्ण। नादिर= अनोखा, विलक्षण। रौशन= ज्योतित, प्रकाशमान। जमीर= ज़मीर, मन, अंतःकरण, विवेक। बेचूँ= उपमारहित, अद्वितीय। सीना साफ= शुद्ध मन। काजी= क़ाज़ी, न्याय करने वाला। कादिर= क़ादिर, सर्वशक्तिमान। हूहू= हू, ईश्वर का संक्षिप्त नाम। गुफ्तन= गुफ्त, कथन। फना= फ़ना, नाश, मृत्यु। बातिन= भीतर का, अंतःकरण। पाक= स्वच्छ, निर्मल। अल्लाह= आदरणीय और पूज्य—अल= आदरणीय, इलाह= पूज्य। साकिन= एक स्थान पर स्थिर रहनेवाला, निवासी। आरिफ = आरिफ़, जानने वाला, ज्ञानी; संतोष करने वाला; साधु, संत।

भावार्थ—आकाश में माना गया चौदहवां तबक वस्तुतः हमारे भीतर है। चौदहवें स्वर्ग स्थान में बिना पानी के धरती है। शुद्ध हृदय ही स्वर्ग है, जहां आत्मा रूपी परमात्मा का आसन है जो स्वानुभूति का विषय है। वहीं विवेक रूपी वृक्ष है जिसके फल मीठे होते हैं। वहां शांति रूपी मेवे मिलते हैं। भीतरी संसार-आत्मलोक में आत्मज्ञान का ज्योतित प्रकाश है। पहुंचा हुआ साधक उसका अनोखा मीठा फल खाता है। ज्योतित विवेक उपमारहित है। जिसका हृदय पवित्र है, वही काज़ी और आत्मसमर्थ है जो नाशवान पदार्थों का मोह छोड़कर आत्मा रूपी परमात्मा की चर्चा तथा धारणा करता है। वह अपने भीतर रूह का, आत्मा का अनुभव करता है। आत्मस्थिति ही अल्लाह का पवित्र स्थान है जहां ज्ञानी स्थिरभाव से रहता है। पलटू साहेब कहते हैं कि मैं ज्ञानी महात्मा से भी कहता हूं कि आपका भी विचार हो तो उस भीतरी स्वर्ग में जाओ, जहां आत्मा रूपी परमात्मा विराजता है। ध्यान रहे, चौदहवां स्वर्ग स्थान हमारे भीतर ही है जो पानी के बिना धरती है।

विशेष—बिना पानी की धरती का अर्थ है बिना भौतिक पदार्थ के आत्मस्थिति। चेतन आत्मा प्रपंचशून्य शुद्ध असंग तत्त्व है।

कुंडलिया-232

बस्ती माहिं चमार की बाम्हन करत बेगार॥
बाम्हन करत बेगार लोग सब गैर-बिचारी।
मूरख है परधान देहि ज्ञानी को गारी॥
अद्वैता को मेटि द्वैत कै करते थापन।
दौलत के सम्बन्ध अमल वे करते आपन॥
ज्ञानि महरसी सन्त ताहि की निन्दा करते॥
अज्ञानी के मध्य सिफत वे अपनी धरते॥
पलटू पीतर कनक को कोउ न करै बिचार।
बस्ती माहिं चमर की बाम्हन करत बेगार॥

शब्दार्थ—अद्वैत= असंग आत्मज्ञान। अमल= अधिकार। महरसी= महर्षि। सिफत= सिफ़त, विशेषता।

भावार्थ—चमारों की बस्ती में ब्राह्मण बेगारी करता है। लोग बिना विचार के हो गये हैं। गांव का प्रधान मूर्ख है, वह ज्ञानी को गाली देता है। असंग एवं निराधार आत्मज्ञान का तिरस्कार करके नाना ईश्वर तथा देवताओं की स्थापना कर रहे हैं। जहां भी धन-संपत्ति देखते हैं उस पर अपना अधिकार जमाते हैं। ज्ञानी, महर्षि तथा संत की निन्दा करते हैं और अज्ञानियों के बीच में अपनी विशेषता की डींग हांकते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि सबके अपने भीतर आत्मा रूपी सोना है, परन्तु उस पर कोई विचार नहीं करता।

विशेष—सबकी देह चाम से बनी है। इसलिए सबकी देह चमार है और सबके भीतर बैठा आत्मा ब्रह्म है, इसलिए सबका आत्मा ब्राह्मण है। अतएव देहासक्त चमार है और देहासक्ति से पार होकर आत्मलीन व्यक्ति ब्राह्मण है।

कुंडलिया-233

कुत्ता हाँड़ी फँसि मुवा दोस परोसि क देय॥
दोस परोसि क देय आपनौ हठ नहिं मानै।
न्योत रही लगवार खसम से परदा तानै॥
कपड़ा की सुधि नाहिं नंगी ह्वै पड़ी उतानी।
कोऊ मने जो करै बोलती करकस बानी॥

माया कै लग भूत खसम कौ नाहिं डेराती।
घर की सम्पति छाड़ि और की जोगवै थाती॥
पलटू कूसंगति पड़ी पिउ कै नाम न लेय।
कुत्ता हाँड़ी फँसि मुवा दोस परोसि क देय॥

शब्दार्थ—लगवार=पर-पुरुष। खसम=पति।

भावार्थ—जैसे कुत्ता खाद्य खाने के लोभ से किसी की हंडी में मुंह डालकर फंसकर मर जाय, वैसे लोग विषयासक्तिवश स्वयं उलझकर मरते हैं, और दोष पड़ोसी को देते हैं। लोग अपने अहंकारजनित हठ को नहीं छोड़ते। कोई स्त्री अपने पति से भेद रखकर पर-पुरुषों को निमंत्रित कर रही है। उसे अपने शरीर की सुधि नहीं है, उतानी नंगी पड़ी है। यदि कोई उसे गलत रास्ते से रोकता है तो उससे कटु भाषण करती है। उसे माया का भूत लगा है। वह अपने पति की मर्यादा नहीं रखती। जैसे कोई अपने घर की संपत्ति की रक्षा त्यागकर दूसरे की रखी हुई थाती की रक्षा में लगा हो; पलटू साहेब कहते हैं कि इसी प्रकार मनुष्य कुसंगत में पड़कर आत्मा रूपी परमात्मा की न चर्चा करता है और न उसमें स्थित होता है। इस प्रकार मनुष्य भटककर मरता है। यह कुत्ते का हंडी में फंसकर मरने न्याय अपना स्वयं पतन करना है और दोष दूसरे को देना कि ईश्वर ने हमें भटका रखा है।

कुंडलिया-234

होनी रही सो ह्वै गई रोइ मरै संसार॥
रोइ मरै संसार काज कुछ उन से नाहीं।
गये हाथ से निबुकि तेही से सब पछिताहीं॥
भये काग से हंस काग सब निन्दा करते।
लोहा से भये कनक सोच सब लोहा मरते॥
ज्ञानी अब हम भये रोवैं सब मूरख संगी।
तिल से भये फुलेल तेल सब मार तिलंगी॥
पलटू उतरे पार हम भाड़ झोकि सब भार।
होनी रही सो ह्वै गई रोइ मरै संसार॥

शब्दार्थ—निबुकि=निकल। फुलेल=सुगंधित तेल। तिलंगी=तेलंगाना देश का निवासी, यहां अर्थ है तेलवाले, भाव है अज्ञानी लोग।

भावार्थ—जो होनहार था वह हो गया, भले संसार के लोग इस बात को लेकर रो-रोककर मरते हों। मुझे उनसे कोई प्रयोजन नहीं है। वे सब इसलिए पश्चाताप करते हैं कि यह तो हमारे हाथ से छूटकर निकल गया। मैं काग से हंस हो गया हूं। इसी से सारे काग मेरी निन्दा करते हैं। मैं लोहा से सोना हो गया, तो सब लोहा चिंता करते हैं। मैं अब आत्मज्ञानी हो गया हूं तो मेरे मूर्ख साथी सब रो रहे हैं। मैं साधारण तेल से सुगंधित तेल हो गया, तो अज्ञानी लोग मुझे मारने दौड़ते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि मैं सारे माया-मोह के बोझा को ज्ञानाग्नि के भाड़ में झोंककर भवसागर से पार हो गया हूं। जो होनी थी वह हो गयी, संसारी इसको लेकर रो-रोकर मरते हैं, तो यह उनकी बेसमझी है।

कुंडलिया-235

सिव सक्ती के मिलन में मोकौ भयौ अनन्द॥
मोकौ भयौ अनन्द मिल्यौ पानी में पानी।
दोऊ से भा सूत नहीं मिलि कै अलगानी॥
मुलुक भयौ सलतन्त मिल्यौ हाकिम कौ राजा॥
रैयत करै अराम खोलि कै दस दरवाजा॥
छूटी सकल बियाधि मिटी इन्द्रिन की दुतिया।
को अब करै उपाधि चोर से मिलि गई कुतिया॥
पलटू सतगुरु साहिब काटौ मेरौ बन्द।
सिव सक्ती के मिलन में मोकौ भयौअनन्द॥

शब्दार्थ—सिव=शिव, चेतन। सक्ती=शक्ति, चेतना। सलतन्त=स्वतंत्र, शांति। रैयत=प्रजा।

भावार्थ—चेतन और चेतना एकमेक हो गये, इसलिए मैं आनन्दमग्न हो गया। जैसे पानी में पानी मिल जाय तो उसको अलग नहीं किया जा सकता, वैसे जब मनोवृत्ति आत्मलीन हो जाती है, तब सूत्रबद्ध की तरह वह उससे अलग नहीं होती, क्योंकि उससे बड़ी अथवा उसके समान अन्य उपलब्धि नहीं है। अब आत्मदेश में शांति हो गयी क्योंकि मन-हाकिम आत्मा-राजा से मिल गया। अब प्रजा दसों दरवाजा खोलकर विश्राम करती है—जीव इस दस द्वारे के खुले भवन-देह में विश्राम करता है। सब मनोव्याधि छूट गयी। अब इन्द्रिय-विषयरूपी द्वैत छूटकर आत्मलीनता हो गयी। अब विषय-भोग के प्रपंच में कौन पड़े। जैसे चोरों से पहरेदार कुतिया

के मिल जाने पर चोरों को चोरी करना सरल हो जाता है, वैसे विषयी मन से बुद्धि के मिल जाने पर विषयों में बह जाने में सरल हो जाता है। पलटू साहेब कहते हैं कि हे सद्गुरु साहेब! मेरी बुद्धि को जागरूक कीजिए और मेरे विषयासक्ति रूपी भवबंधन को काटिये। शिव-शक्ति—चेतन-चेतना के मिलन में आनन्द हो जाता है।

कुंडलिया-236

ऐसा ब्राह्मन मिलै जो ताके परछौं पाँय॥
ताके परछौं पाँय ब्रह्म अपने को पावै।
भर्म जनेऊ तोरि प्रेम तिरसूत बनावै॥
सब कर्मन को करै कर्म से रहता न्यारा।
दुतिया देइ बहाय ब्रह्म का करै बिचारा॥
ज्ञान दिवस में सयन मोह रजनी में जागै।
पारब्रह्म भगवान ताहि घर भिच्छा माँगै॥
चेतन देइ जगाय ब्रह्म की गाँठि को खोलै।
करै गायत्री गुप्त सब्द ब्रह्मांड में बोलै॥
पलटू तजै अठारह सहस बरन ह्वै जाय।
ऐसा ब्राह्मन मिलै जो ताके परछौं पाँय॥

शब्दार्थ—परछौं= धोऊं, आरती करूं, वंदना करूं।

भावार्थ—यदि मुझे ऐसा ब्राह्मण मिल जाय तो मैं उसके चरणों की वंदना-आरती करूं। वह अपने आप को ब्रह्म समझे, भ्रम का जनेऊ तोड़कर प्रेम के तीन अक्षर के सूत का जनेऊ पहने—सबसे प्रेम करे। टट्टी साफ करने, खेत जोतने से लेकर जीवन के सभी आवश्यक कर्म करते हुए उनके अहंकार तथा कर्मफल की कामना से रहित रहे; अन्य देवी-देवताओं, भगवान-भवानी को फेंककर केवल आत्मस्वरूपी ब्रह्म का विचार करे; आत्मज्ञान रूपी दिन में विश्राम करे; मोह-रात्रि में जागता रहे—मोह रहित रहे; परब्रह्म भगवान आत्मा ही है, अतएव वहीं से भिक्षा मांगे—आत्मा में ही संतुष्ट हो; अपने चेतन आत्मा को पूर्ण जाग्रत करे—असंगभाव में मग्न रहे; अपने आत्मा रूपी ब्रह्म के विषय में जो संशय-ग्रंथि है उसे खोल दे—निःसंशय आत्मबोध में दृढ़ रहे—आत्मा को ब्रह्म समझे; आत्मचिंतन रूपी गुप्त गायत्री का जप करे, अपने मन-मस्तिष्क रूपी ब्रह्माण्ड में ब्रह्म शब्द का

ही उच्चारण करे, पलटू साहेब कहते हैं कि तथाकथित ब्राह्मण के अठारह भेद को त्यागकर स्वयं सहस्त्रवर्ण का हो जाय—सब मनुष्यों के समान अपने को माने, मैं ऐसे ब्राह्मण का पैर पूजूंगा।

कुंडलिया-237

सब बैरागी बटुरि कै पलटुहि किया अजात॥
पलटुहि किया अजात प्रभुता देखि न जाई।
बनिया काल्हिक भक्त प्रगट भा सब दुतियाई॥
हम सब बड़े महन्त ताहि को कोऊ न जानै।
बनिया करै पखंड ताहि को सब कोऊ मानै।
ऐसी इर्षा जानि कोऊ न आवै खाई।
बनिया ढोल बजाय रसोई दिया लुटाई॥
मालपुवा चारिउ बरन बाँधि लेत कछु खात।
सब बैरागी बटुरि कै पलटुहि कियाअजात॥

शब्दार्थ—बटुरि कै= इकट्ठा-एकजुट होकर। काल्हिक= कल का। दुतियाई= अलग कर दिया।

भावार्थ—सब वैष्णव वैरागी एकजुट होकर पलटू को अजात—टाट बाहर कर दिया। उनसे पलटू दास का महत्त्व सहन नहीं हुआ। वे कहने लगे कि यह बनिया कल का भक्त बहुत प्रसिद्ध हो गया। इसे टाट बाहर करो। हम सब बड़े-बड़े वैष्णव महंत हैं किंतु हमें कोई नहीं जानता। यह पलटू बनिया सबका खंडन करने का पाखंड करता है और इसी को सब बड़ा मानते हैं। इस प्रकार मानकर सब वैरागी ईर्ष्या में पड़ गये और उनमें से कोई मेरे भंडारा-भोज में खाने नहीं आया। तो पलटू बनिया ने मुनादी कराकर सारा भोजन जनता में बांट दिया। फलतः चारों वर्ण के लोग मेरे रसोईघर से मालपुआ आदि भोजन बांध-बांधकर ले जाते और कोई तो वहीं बैठकर खा लेते। इस प्रकार सब वैरागी इकट्ठे होकर पलटू को अजात घोषित कर दिये।

विशेष—पलटू साहेब मेल-मिलाप की भी बात करते थे, किन्तु मानवतापरक तथा आत्मज्ञानपरक उनके मुख्य विचार थे। इसलिए वैरागी असंतुष्ट थे। साथ-साथ ईर्ष्या-द्वेष तो सनातन रोग है।

कुंडलिया-238

हींग लगाइस भात में भूल गई है नार॥
भूल गई है नार आन कै आनै कीन्हा।
कातिस मोटा सूत कातन को चाही झीना॥
लहँगा पाछे जरै चूल्ह में पानी नावा।
हँसिया को ब्याह गीत खुरपा कै गावा॥
देय महावर आँख गोड़ में काजर लावै।
ऐसी भोली नारि ताहि कौ को समुझावै॥
पलटू वाहि अबूझ है अंत खायगी मार।
हींग लगाइस भात में भूल गई है नार॥

शब्दार्थ—नार= नारी, स्त्री। महावर= पैर में लगाने का रंग। काजर= काजल।

भावार्थ—नारी भूल गयी। उसने दाल में छौंकने की हींग भात में छौंक दिया। वह करना चाहिए कुछ, तो करती है कुछ दूसरा ही। उसे महीन सूत कातना चाहिए, तो उसने मोटा कात दिया। उसका पहनावा लहंगा पीछे जल रहा है, और उसे बुझाने के लिए चूल्हे में पानी डालती है। वह हंसिया के ब्याह गीत को खुरपा के ब्याह में गाती है। वह पैरों में लगाने का महावर आंखों में लगाती है और आंखों में लगाने वाला काजल पैरों में लगाती है। ऐसी भोली स्त्री को कौन समझावे? इसी प्रकार जो मनुष्य अपने कल्याणदायी जीवन को दुनिया के राग-रंग और खुराफात में लगाता है, पलटू साहेब कहते हैं कि उसे अंतकाल में मानसिक पीड़ा होगी, मन द्वारा वह रगड़ा जायेगा।

कुंडलिया-239

घरिया औटै तत्त्व की परै नाम टकसार॥
परै नाम टकसार द्वादस सन बहुत करकरा।
ज्ञान चोख से चोख रैनि दिन पड़ै धरधरा॥
चौकस करै बिबेक सरन जो जौ भरि आवै।
ऐसा सिक्का होय कोई न बट्टा लावै॥
देवै ठासा बेहद परै सनवाती सीका।
चारि खूँट में चलै जियत इक होय रती का॥

पलटू बानी परा कँह लेहैं संत बिचार।
घरिया औटै तत्व की परै नाम टकसार॥

शब्दार्थ—घरिया=घड़िया, सोनार का कुल्हिया या फारिया जिसमें सोना-चांदी गलाते हैं। औटना=पकाना। तत्व=तत्त्व, सत्य, सार, आत्मतत्त्व। टकसार=टकसाल, सिक्के ढलने की जगह, प्रामाणिक। द्वादस सन=विगत बारहवीं शताब्दी के चांदी-सोने के प्रसिद्ध खरे सिक्के। करकरा=खरा, सच्चा। धरधरा=धड़ाधड़, प्रवाहपूर्ण। चौकस=सच्चा, शुद्ध, सही। जौ भरि=जौ के दाने के बराबर। बट्टा=वह रकम जो रुपये, नोट, हुंडी आदि भुनाने, बदलने या बेचने पर उसके मूल्य में से काट ली जाय, दस्तूरी, दलाली, कमी, घाटा, नुकसान। ठासा=ठोस, पक्का। सनवाती=सनअत, कारीगरी, शिल्प, कौशल। सीका=सिक्का। रती=रत्ती, ढाई जौ या आठ चावल का मान, घुंघुची, गुंजा; सौंदर्य, शोभा। परा=मूलाधार में रहने वाली नाद रूपी वाणी, सरल भाव अंतरात्मा की आवाज।

भावार्थ—ज्ञानी संत आत्मज्ञान को विचार की घरिया में डालकर औटते हैं और उसे सतनाम के टकसाल में ढालते हैं। उनके ज्ञान के सिक्के विगत बारहवीं शताब्दी के सोने-चांदी के खरे सिक्के जैसे खरे रहते हैं। उनका ज्ञान चोखा से चोखा एवं सच्चा होता है। वह रात-दिन प्रवाहपूर्ण चलता है। यदि साधक थोड़ा सिर झुकाकर सद्गुरु की शरण में आ जाय तो उसका विवेक ज्वलंत हो जायेगा। ऐसे आत्मज्ञानी के सिक्के में कभी थोड़ा भी घाटा नहीं होता—मन दुखी नहीं होता। कुशल ज्ञानी का वह ज्ञान-सिक्का बेहद ठोस होता है। वह चारों दिशाओं में चलता है। वह जीवनकाल में शांति का सौंदर्य लाता है। पलटू साहेब कहते हैं कि अंतरात्मा की आवाज को संत पहचानते हैं और उस पर विचार करते हैं।

कुंडलिया-240

सतगुरु के परताप से पकरा पाँचों चोर॥
पकरा पाँचों चोर नगर में अदल चलाया।
तिर्गुन दिया निकारि आनि कै भक्ति बसाया॥
लोभ मोह को पकरि ताहि की गरदन मारी।
तृस्ना औ हंकार पेट दियो इनको फारी।
दुर्मति दई निकारि सुमति का चाबुक दीन्हा।
चढ़े सिपाही संत अमल कायागढ़ कीन्हा॥

पलटू संजम मैं किया परा मुलुक में सोर।
सतगुरु के परताप से पकरा पाँचों चोर॥

शब्दार्थ—पांचों चोर=काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय; पांच ज्ञानेन्द्रियां—आंख, नाक, कान, जीभ तथा त्वचा। नगर=हृदय, शरीर। अदल=न्याय। तिरगुन=त्रिगुण, सत, रज, तम। अमल=अधिकार। संजम=संयम, आत्म-नियंत्रण।

भावार्थ—सद्गुरु के ज्ञान प्रताप से पांचों चोरों को पकड़ लिया और शरीर-नगर में गुरुज्ञान का न्याय चलाया। तीनों गुणों को शोध कर उनका दमन कर लिया और जीवन में भक्ति को बसा लिया। लोभ-मोह को पकड़कर मार डाला और तृष्णा तथा अहंकार को जड़ मूल से नष्ट कर दिया। सुबुद्धि के चाबुक से मारकर दुर्बुद्धि को निकाल दिया। इस प्रकार संत-सिपाही ने कायागढ़ की लड़ाई में चढ़कर उस पर अपना अधिकार जमा लिया। पलटू साहेब कहते हैं कि मैंने आत्म-नियंत्रण किया तो इसका देश में हल्ला हो गया। इस प्रकार सद्गुरु की कृपा से पांचों चोरों को पकड़कर शरीर-नगर पर अधिकार कर लिया।

कुंडलिया-241

दूसर जनमत मारिये की बरु रहिये बाँझ॥
की बरु रहिये बाँझ कोख में दाग लगावै।
जामै पेड़ मदार ताहि में क्या फल आवै॥
जो जनमै हरि भक्त जगत में सोभा पावै।
कुल में फूलै कमल पुत्रवंती कहवावै॥
कौसिल्या देवकी बड़ी अब कहिये सोई।
हरिजन में हरि रहै भार जिन लीन्हा दोई॥
पलटू सोई पुत्रवती भक्त रहै जेहि माँझ।
दूसर जनमत मारिये की बरु रहिये बाँझ॥

शब्दार्थ—जनमत=जन्म लेते ही। बांझ=वंध्या। कोख=पेट, जन्म देने की शक्ति। जामै=उगे। मांझ=पेट में।

भावार्थ—संतान भक्त हो तो अच्छा है, दुष्ट संतान को जन्म लेते ही मार देना चाहिए, अथवा वंध्या रहना अच्छा है। कोख में दाग लगानेवाली दुष्ट

संतान तो मदार का पेड़ उगने के समान है, जिसमें क्या फल मिलेगा? यदि संतान हरिभक्त होकर जन्म ले तो वह संसार में शोभा पायेगा। वह वंश परम्परा में कमल की तरह खिलेगा। ऐसी ही माता पुत्रवती कहलाने योग्य है। देखो, कौसल्या, देवकी आदि को बड़ी भाग्यशालिनी कहना चाहिए। जिन्होंने श्रीराम तथा श्रीकृष्ण जैसे उत्तम पुत्र पैदा किये। लोक-परलोक सुधारने का बोझा लेने वाला भगवान भक्त ही रहता है। पलटू साहेब कहते हैं कि वह नारी पुत्रवती कहलाने योग्य है जिसके पेट में भक्त आया हो। अभक्त तो जन्मते ही मार देने योग्य है अथवा माता का वंध्या रहना अच्छा है।

विशेष—पलटू साहेब दयालु संत थे। वे किसी बच्चे को मारने की आज्ञा नहीं दे सकते। यह पता भी नहीं चल सकता कि जन्मा हुआ बच्चा आगे संत होगा या असंत। वस्तुतः यह काव्य है, इसलिए काव्यात्मक बात का अक्षरशः पालन नहीं होता है। उक्त बात का सार इतना ही है कि साधु-हृदय की संतान ही संतान है, दुष्ट संतान संतान ही नहीं है।

कुंडलिया-242

आगि लगो वहि देस में जहँवाँ राजा चोर॥
जहँवाँ राजा चोर प्रजा कैसे सुख पावै।
पाँच पचीस लगाइ रैनि दिन सदा मुसावै॥
आठौ पहर उपाधि रहै नाना बिधि लागी॥
काम क्रोध हंकार सकै न रैयत भागी॥
लोभ मोह की दिनै गले बिच नावै फाँसी।
लोकलाज मरजाद चलावै तिरगुन गाँसी॥
पलटू रैयत क्या करै चलै न एकौ जोर।
आगि लगो वहि देस में जहँवाँ राजा चोर॥

शब्दार्थ—मुसावै= चोरी करावे। रैयत= प्रजा। गांसी= बाण।

भावार्थ—उस देश में आग लग जाय, जहां राजा ही चोर है। वहां प्रजा कैसे सुख पायेगी? मन राजा बना बैठा है और वही भोगों का चोर है। मन राजा पांच-पचीस नाना दुर्गुणों को लगाकर रात-दिन मनुष्य के हृदय में चोरी करवाता है। ऐसे जीवन में चौबीसों घंटे नाना प्रकार के उपद्रव लगे रहते हैं। काम, क्रोध, अहंकार आदि ऐसे डाकू हैं कि इनसे भागकर मनुष्य बच नहीं पाता है। यह मन मानव तन रूपी दिन में लोभ-मोहादि की फांसी मनुष्य के

गले में लगाता है। यह मन लोक-लाज और जाति-पांति की मर्यादा तथा त्रिगुणात्मक कर्मकांड के तीर चलाता है। पलटू साहेब कहते हैं कि मनुष्य प्रजा बेचारी क्या करे। इन चोरों के सामने उसका एक भी बल नहीं चलता है। अतएव ऐसे देश में आग लग जाय जहां राजा ही चोर है।

विशेष—यहां मन की प्रबलता पर कथन है। वस्तुतः मन जीव की असावधानी से ही प्रबल बना है। मन कोई स्वतंत्र द्रव्य या जानवर नहीं है, अपितु जीव की बनायी मान्यता मात्र है। जीव जब अपने बल को सत्संग से समझ लेगा तब वह मन को मारकर—उसे अच्छा बनाकर निरंतर परमानन्द में विराजेगा।

कुंडलिया-243

यह अचरज हम देखिया कानी काजर देइ॥
कानी काजर देइ खसम के मन ना मानै।
निसि दिन करै सिंगार भेद या बिरला जानै॥
नख सिख खोटी मोटि पहिरि कै बैठी गहना।
मूरख देखन जाय देखि कै करै सरहना॥
बोलै मीठी बोल सबन को बेगि रिझावै।
नाहिं खसम से भेंट बैठि कै बात बनावै॥
पलटू या संसार में झूठ कहै सो लेय।
यह अचरज हम देखिया कानी काजर देय॥

शब्दार्थ—कानी= एक आंखवाली स्त्री, तात्पर्य में अविवेकी भक्त। खसम= पति, परमात्मा।

भावार्थ—मैंने एक ऐसी आश्चर्यपूर्ण घटना देखी कि कानी स्त्री काजल लगा रही है, परन्तु वह अपने पति से प्रसन्न नहीं रहती है। वह पर-पुरुष को रिझाने के लिए रात-दिन शृंगार करती है, किन्तु उसकी यह व्यभिचार-वृत्ति का भेद कोई बिरला जानता है। वह एड़ी से चोटी तक मोटी खोटी—बहुत बदचलन स्त्री है परन्तु नाना आभूषण पहनकर दिखाऊ शृंगार करके बैठी है। मूरख उसको देखने जाते हैं और देखकर उसकी प्रशंसा करते हैं। वह मीठी बोली बोलकर लोगों को तुरन्त प्रसन्न कर लेती है। उसे पति से मुलाकात नहीं है, किन्तु उसके विषय में वह बैठी-बैठी बड़ी लम्बी-चौड़ी बातें बनाती है।

पलटू साहेब कहते हैं कि इस संसार में जो झूठी बातें करता है, उसी की बातें मूर्ख लोग मानते हैं। मैंने एक आश्चर्य देखा कि कानी स्त्री काजल लगा रही है।

विशेष—अलग से ईश्वर को पाने की आशा रखने वाले और साथ-साथ उसका दिखावा करने वाले बनावटी भक्त कानी स्त्री हैं, क्योंकि वे आत्मज्ञान-विहीन हैं। वे काजल लगाते हैं, ज्ञान का दिखावा करते हैं। वे अपने आत्मारूपी परमात्मा को जानते-मानते नहीं हैं। वे ईश्वर-भक्ति का बड़ा शृंगार करते हैं, बड़ा दिखाऊ वेष बनाते हैं। वे एड़ी से चोटी तक धोखेबाज होते हैं, परन्तु ईश्वर-भक्ति का बड़ा शृंगार करते हैं, सिद्ध बनते हैं, अपने को परमात्मा-प्राप्त बताते हैं, अवतार तक बनते हैं। मूर्ख लोग उनके दर्शन करने जाते हैं और उनकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। वे परोक्ष ईश्वर की मीठी-मीठी बातें करके लोगों को भावुक बना लेते हैं और उन्हें अपने वश में कर लेते हैं। उन्हें ईश्वर से कभी मुलाकात नहीं है, किन्तु बैठकर बात बनाते हैं कि मैं ईश्वर तक पहुंचा हूं, तुम्हें ईश्वर से मुलाकात करवा सकता हूं। पलटू साहेब कहते हैं कि इस संसार में ईश्वर के विषय में झूठी बातें बनाने वालों पर मूर्ख विश्वास करते हैं। आश्चर्य है कि कानी काजल लगा रही है, अविवेकी ईश्वर का दिखावा कर रहे हैं।

कुंडलिया-244

मुसलमान रब्बी मेरी हिन्दू भया खरीफ॥
हिन्दू भया खरीफ दोऊ है फसिल हमारी।
इनको चाहै लेइ काटि कै बारी बारी॥
साल भरे में मिली यही हमको जागीरी।
चाकर भये हजूरी कौन अब करै तगीरी॥
दूनों को समुझाइ ज्ञान का दफतर खोलै।
सब कायल होइ जाय अमल दै कोऊ न बोलै॥
दोऊ दीन के बीच में पलटू दास हरीफ।
मुसलमान रब्बी मेरी हिन्दू भया खरीफ॥

शब्दार्थ—रब्बी=रबी, वसंत ऋतु; वह फसल जो वसंत ऋतु में काटी जाती है। खरीफ=खरीफ़, कार्तिक मास की फसल। फसिल=फ़सल, फ़स्ल, ऋतु, मौसम; काल, समय; खेत की उपज, पैदावार; सस्य, धान्य; किसी पौधे का फल, अन्न। हजूरी=हुजूरी, सामीप्य, निकटता; बादशाही दरबार।

तगीरी=तगीर, स्थिति, परिवर्तन। कायल=मान लेने वाला। अमल=अधिकार। हरीफ=हरीफ़, समान व्यवसाय करने वाला, सम व्यवसायी, हमपेशा।

भावार्थ—मुसलमान मेरी रबी की फसल है और हिन्दू खरीफ की फसल है। ये दोनों मेरी फसल हैं, धान्य हैं। मैं इन दोनों फसलों को मनचाहा बारी-बारी काटता हूं। मेरी यही साल भर की जागीर है—सरकार से मिला धन है। हिन्दू-मुसलमान दोनों मेरे समीपी हो गये हैं। अब इनमें कौन परिवर्तन करे, क्यों करे? मैं ज्ञान का दफ्तर खोलकर इन दोनों को समझाता हूं। हिन्दू-मुसलमान दोनों मेरी बातों को मान लेते हैं। कोई अधिकारपूर्वक मेरे विरोध में नहीं बोलता है। पलटू साहेब कहते हैं कि मैं हिन्दू-मुसलमानों के बीच में समान व्यवसायी हूं। मुसलमान मेरे रबी—बासंती सस्य हैं और हिन्दू खरीफ—शारदी सस्य हैं।

विशेष—उदार पलटू साहेब के रास्ते पर ही भारत के सभी लोगों को चलना चाहिए। विश्व के लिए यही सुखद है। भिन्न सम्प्रदाय एवं मजहब को लेकर प्रेम में अंतर नहीं होना चाहिए। मानव मात्र मेरे प्यारे हैं और जीव मात्र करुणा पात्र हैं।

कुंडलिया-245

नाचन को ढँग नाहिं है कहती आँगन टेढ़॥
कहती आँगन टेढ़ जक्त की लाज लजाई।
लम्बा घूँघट काढ़ि डेरै फिर नाचन आई॥
जाति बरन मरजाद छुटी ना लोक बड़ाई।
करै खसम को चाह खसम का सहजै पाई॥
अपनी बात उड़ाइ आपु से जैसे भूसा।
झौंसे पेड़ बनाया पाछे से फड़िहै फरसा॥
पलटू पावै खसम को रहै संत की खेढ़।
नाचन को ढँग नाहिं है कहती आँगन टेढ़॥

शब्दार्थ—डेरै=डरता है, भय करता है। खसम=पति, परमात्मा। का=क्या? भूसा=सारहीन, हलका। झौंसे=जला डाले। फरसा=कुल्हाड़ी, कुल्हाड़ा। खेढ़=जमात, समाज।

भावार्थ—नाचने का ढंग नहीं है और कहती है कि आंगन टेढ़ा है इसलिए नाचते नहीं बनता है। साधना करने की समझ नहीं है और कहते हैं कि देश-काल ठीक नहीं है। मन से भयभीत हैं, लम्बा घूंघट काढ़कर नाचने आते हैं। जाति, वर्ण और लोक की मर्यादा-बड़ाई छोड़ नहीं पाते हैं। परमात्मा पाने की चाह करते हैं। क्या वह सहज ही मिल जाता है? ध्यान रहे, जो परमात्मा चाहे, वह अपनी मान-बड़ाई स्वयं भूसे की तरह उड़ा दे और लोकमर्यादा तथा जाति-पांति के पौधे को ज्ञान की आग में फूंक दे, अन्यथा आगे उसे कुल्हाड़ी से काटना पड़ेगा। पलटू साहेब कहते हैं कि परमात्मा को तब पावेगा जब वह संतों के समाज में रहे। नाचने का ढंग नहीं है और कहते हैं कि आंगन टेढ़ा है।

विशेष—परमात्मा आत्मा है। विवेकवान संतों के सत्संग में उसका बोध होता है। जो सब प्रकार लोक-लाज और अहंकार को छोड़कर सत्संग-साधना में लगता है वह अपने भीतर आत्मा रूपी परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है।

कुंडलिया-246

पलटू खोजै पूरबे घर में है जगन्नाथ॥
घर में है जगन्नाथ सकल घट ब्यापक सोई।
पसु पंछी चर अचर और न दूजा कोई॥
पूरन प्रगटे ब्रह्म देह धरि सब में आये।
दिया कर्म को आड़ भेद यह बिरलन पाये॥
उपजै बिनसै देह जीव सो मरता नाहीं।
कहन सुनन को जुदा रहत है सब घट माहीं॥
चलते चलते पग थका एकौ लगा न हाथ।
पलटू खोजै पूरबे घर में ह जगन्नाथ॥

शब्दार्थ—घर में= देह में । जगन्नाथ= ईश्वर। आड़= परदा, भेद।

भावार्थ—पलटू साहेब कहते हैं कि जगन्नाथ को पाने के लिए लोग यहां से पूर्व तरफ समुद्र तट के पास जाते हैं। वस्तुतः अपनी देह में ही वह विद्यमान है। वही तो सबकी देहों में बैठा है। पशु-पक्षी, चलने वाले या एक जगह पड़े सभी प्राणियों में वही तो परमात्मा है, दूसरा कोई नहीं है। पूर्ण ब्रह्म ही देह धरकर सब प्राणियों में विद्यमान है। सबके कर्म भिन्न होने से बाह्य व्यक्तित्व में विषमता है। इस तथ्य को बिरला समझता है। देह बनती है और

मिट जाती है, किन्तु जीव नहीं नष्ट होता। वह अमर है। कहने-सुनने के लिए अलग-अलग नाम हैं—पशु, पक्षी, कृमि, मनुष्य आदि किन्तु सब देहों में वही चेतन ब्रह्म विराजता है। पलटू साहेब कहते हैं कि बाहर परमात्मा को खोजने के लिए चलते-चलते पैर थक गये, परन्तु परमात्मा की प्राप्ति नहीं हुई। लोग जगन्नाथ को पूर्व समुद्र तट पर खोजने जाते हैं, किन्तु वह तो हृदय में है।

विशेष—ब्रह्म का अर्थ है श्रेष्ठ। व्यापक महिमापरक शब्द है। कोई एक अखंड तत्त्व सब जगह फैला नहीं है। यदि ऐसा होता तो स्फूर्ण, चलन, गति संसार ही न होता। अतएव व्यापक का मतलब बहुतायत, शक्तिशाली आदि ही होना चाहिए। सरल भाव है कि परमात्मा भटकने से नहीं मिलता है। सब घट में बैठा जीव ही ब्रह्म है। अपने मन को बाहर से फेरकर अपने आप में स्थित होना ही ब्रह्म की प्राप्ति है।

कुंडलिया-247

आन को सेंदुर देखि कै तू का फोरै लिलार॥
तू का फोरै लिलार नारि तू बड़ी अनारी।
तू ना देवै जाय देखि क्या जरै हमारी॥
तेरे करम में नाहिं देखि क्या सरबर करती।
चलि जा अपनी राह सोच में नाहक परती॥
जेकँहै चाहै पीव ताहि को करै सोहागिनि।
समुझ अपनी चूक नारि तू बड़ी अभागिनि॥
पलटू सेवै साधु को तब रीझै करतार।
आन को सेंदुर देखि कै तू का फोरै लिलार॥

शब्दार्थ—आन= अन्य, दूसरा। लिलार= मस्तक, माथा। सरबर= सरबरि= बराबरी, होड़। जेकँहै= जिसको। सोहागिन= सुहागिन, सधवा, पतिवाली।

भावार्थ—दूसरे के माथे पर सेंदुर देखकर तू अपना मस्तक क्यों फोड़ती है? हे नारी! तू बड़ी मूढ़ है। तू स्वयं चलकर अपने पति को प्रेम नहीं देती है। हमारे सौभाग्य को देखकर क्यों जलती है। तेरे अपने कर्म में जो नहीं है, उसकी इच्छा करके दूसरी सुहागिन स्त्री को देखकर उसकी बराबरी क्यों करती है? तू अपने मार्ग में चली जा। तू व्यर्थ चिंता में पड़ती है। पति जिसको चाहेगा उस नारि को सुहागिन करेगा। हे नारी! अपनी भूल को

समझ। तू बड़ी अभागन है। पलटू साहेब कहते हैं कि जब संतों की सेवा करे तब कर्ता प्रसन्न होगा। दूसरे के मस्तक पर सेंदुर देखकर तू अपने माथा को क्यों फोड़ती है?

विशेष—मनोवृत्ति नारी है, आत्मा पति है। शांतात्माओं को देखकर मनुष्य की मनोवृत्ति चाहती है कि मैं भी शांति का सुख भोगूं। परन्तु जब वह आत्मा में समर्पित नहीं होती है अथवा आत्मा स्वयं मनोवृत्ति को नहीं आत्मसात करता है, तो शांति दशा कैसे आयेगी? जब विवेकवान संतों की सेवा करे तब उनके उपदेश तथा प्रभाव में आकर आत्मा मनोवृत्ति को आत्मसात करके कल्याण दशा आती है। मनोवृत्ति का कर्ता आत्मा ही है। उसकी दृष्टि अंतर्मुख होने से ही परमपद मिलेगा।

कुंडलिया-248

पलटू पारस नाम का मनै रसायन होय॥
मनै रसायन होय करै या तन की सीसी।
संपुट दै गुरु ज्ञान बिस्वास दवाई पीसी॥
दसौ दिसा से मूँदि जोग की भाठी बारै।
तेहि पर देहि चढ़ाय ब्रह्म की अग्नि से जरै॥
ईंधन लावै ध्यान प्रेम रस करै तयारी।
सबद सुरति के बीच तहाँ मन राखै मारी॥
जड़ि बूटी के खोजते गई सिध्याई खोय।
पलटू पारस नाम का मनै रसायन होय॥

शब्दार्थ—पारस= एक कल्पित पत्थर जिसमें लोहा छू जाने पर सोना हो जाता है। रसायन= पदार्थों का तत्त्वगत ज्ञान; जरा-व्याधिनाशक औषधि। संपुट= औषधि पकाने के लिए गीली मिट्टी से लपेटकर बनाया गया पात्र।

भावार्थ—पलटू साहेब कहते हैं कि पारस पत्थर तो नाम मात्र है। वह संसार में कहीं नहीं है। यह स्ववश किया हुआ मन ही जरा-व्याधि नाशक औषध है। उसको रखने के लिए यह शरीर ही शीशी है। इस दवाई को बनाने के लिए गुरुज्ञान का संपुट दिया और आत्मविश्वास की दवाई पीसी गयी। शरीर के दसों इन्द्रियों का दमन रूपी मुंह बंद करके उसे मनोनिग्रह रूपी योग की भट्ठी पर चढ़ाकर ब्रह्मज्ञान की अग्नि जलायी। उसमें ध्यान का ईंधन लगाया। औषध का तैयार रस प्रेम है। प्रेम साधना का फल है। मन मारकर

सुरति शब्द में लीन करके रखे। उपर्युक्त साधनात्मक औषधि न बनाकर बाहरी जड़ी-बूटी खोजकर वैद्यकी का काम करनेवाले साधु की आत्म-स्थिति खो जाती है। पलटू साहब कहते हैं कि पारस तो नाम मात्र है। शमित मन ही रसायन औषध है जिससे भवव्याधि नष्ट होती है।

विशेष—"सबद सुरति के बीच में तहाँ मन राखै मारी।" शब्द में सुरति लगाकर केवल शब्द सुने। इसी में मन को शांत कर दे। शरीर में नस-नाड़ियां दौड़ी हैं। उनमें रक्त वहन करता है। यह पूरा शरीर महान यंत्र है। इसके भीतर की गति से ध्वनि उठती है जिसे कान बन्द कर सुना जाता है। इससे मन एकाग्र होता है। यही शब्द सुरति योग में मन मारना है। यह एक आरम्भिक साधना है। शब्द को जीव सुनता है। जीव शब्द को जानता है, शब्द जीव को नहीं जानता है। शब्द जड़ है, जीव चेतन है। अतएव अंतिम साधना है मन का साक्षी बनकर संकल्प-रहित हो जाना। यही आत्मस्थिति की प्राप्ति है।

कुंडलिया-249

कहत फिरत हम जोगी पक्का दुइ सेर खाय॥
पक्का दुइ सेर खाय कहै मैं बड़का जोगी।
सोवै टाँग पसारि देखत कै बड़ा बिरोगी॥
हृष्ट पुष्ट होइ रहै लड़न को नाहीं माँदा।
काम क्रोध और मोह करत हैं बाद बिबादा॥
पलटू ऐसा देखि कै मुँह ना राखी लाय।
कहत फिरत हम जोगी पक्का दुइ सेर खाय॥

शब्दार्थ—मांदा= आलस्य।

भावार्थ—लोग कहते फिरते हैं कि हम योगी हैं, किन्तु पक्का दो सेर भोजन करते हैं। कहते हैं कि हम बड़े योगी हैं। अधिक खाकर पैर पसारकर अधिक सोना पड़ेगा ही। उनके ऊपर का दिखावा विरह-वियोग का है। शरीर से मोटे-तगड़े होकर रहते हैं। दूसरों से लड़ाई-झगड़ा करने में आलस्य नहीं करते। उनके जीवन में काम, क्रोध, मोह आदि हैं और जगह-जगह वाद-विवाद करते रहते हैं। पलटू साहेब कहते हैं कि ऐसी रहनी देखकर मैं ऐसे लोगों से बातचीत भी नहीं करता हूं। ये कहते-फिरते हैं कि हम योगी हैं और पक्का दो सेर खाते हैं।

कुंडलिया-250

जल पषान को छोड़ि कै पूजौ आतम देव॥
पूजौ आतम देव खाय औ बोलै भाई।
छाती दैकै पाँव पथर की मुरत बनाई॥
ताहि धोय अन्हवाय बिंजन लै भोग लगाई।
साच्छात भगवान द्वार से भूखा जाई॥
काह लिये बैराग झूँठ कै बाँधे बाना।
भाव भक्ति की मरम है कोइ बिरले जाना॥
पलटू दोउ कर जोरि कै गुरु संतन को सेव।
जल पषान को छोड़ि कै पूजौ आतम देव॥

शब्दार्थ—अन्हवाय= नहलाकर। बिंजन= व्यंजन, भोजन।

भावार्थ—हे लोगो ! जल-पाषाण की पूजा छोड़कर प्राणी रूपी आत्मदेव की पूजा करो, क्योंकि हे भाई ! वे खाते और बोलते हैं। पत्थर की मूर्ति की छाती पर पैर रखकर कारीगर गढ़-गढ़कर उसे बनाता है। उसी मूर्ति को धोकर तथा स्नान कराकर थाली में व्यंजन लेकर उसको भोग लगाते हैं। प्रत्यक्ष चलते-फिरते भगवान अतिथि तथा संत द्वार से भूखे जा रहे हैं। वैराग्य का वेष लेने से क्या फल हुआ? चेतन-पूजा छोड़कर जड़-पूजा में लगे रहे, तो वे झूठे ही भक्त-साधु का बाना बांधे हैं। भाव-भक्ति का रहस्य कोई बिरला जानता है। पलटू साहेब कहते हैं कि हे कल्याणार्थियो ! दोनों हाथ जोड़कर तथा विनम्र होकर गुरु-संतों की सेवा करो। इस प्रकार जल-पाषाण को छोड़कर बोलता देवता आत्मदेव की पूजा करो।